आर्ष ग्रन्थावली

महाभारत

(मध्यम भाग)

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।
सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥
अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥ ४ ॥
यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥ ५ ॥
तपत्यादित्यवच्चैषां चक्षूंषि च मनांसि च ।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥
बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

अब मैं राजा के धर्म कहूंगा, कि राजा को कैसे वर्त्तना चाहिए, कैसे उसकी सृष्टि हुई, और किसतरह उसको परम सिद्धि (पूरी

कामयाबी) होती है ॥ १ ॥ यथाविधि वैदिक (अभिषेक) संस्कार * को प्राप्त हुए क्षत्रिय को इस सब (चर अचर) की न्यायानुसार रक्षा करनी चाहिए ॥ २ ॥ क्योंकि जब बिना राजा के यह दुनिया (प्रबल पुरुषों के) भय से सब ओर से डोल गई; तब इस सब की रक्षा के लिए प्रभु ने राजा को उत्पन्न किया। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर के सनातन अंशों को लेकर ॥ ३, ४ ॥ जिस लिए इन देवपतियों के अंशों से राजा बनाया गया है, इसलिए तेज † से सब लोगों को मात करता है ॥ ५ ॥ सूर्य की तरह इनके नेत्रों और हृदयों को तपाता है, और कोई भी जगत में (आंख उठाकर) इसकी ओर देख नहीं सक्ता ॥ ६ ॥ वह अपने प्रभाव (बढ़ी हुई शक्ति) से अग्नि है और वायु है, वह सूर्य है, सोम है, धर्मराज है, कुबेर है, वरुण है, और महेन्द्र है ॥ ७ ॥ राजा बाल भी हो, तो भी उसका अपमान न करे यह मानकर कि (हमारी तरह) मनुष्य है, क्योंकि मनुष्य के रूप से यह एक भारी देवता स्थित है ॥ ८ ॥

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसार्पिणम् ।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसञ्चयम् ॥ ९ ॥
कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्वतः ।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥
यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ।

* (उपनयन) संस्कार (मेधा०, गोवि०, नारा०, कुल्लू) (उपनयनादि) संस्कार (राघ०) † तेज का अर्थ टीकाकारों ने वीर्य लिया है, पर यहां तेज का प्रसिद्ध अर्थ ही ठीक प्रतीत होता है जैसे कि अगले श्लोकमें प्रकट कियाहै, 'उसकी ओर कोई देख नहीं सक्ता,

मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि ॥ ११ ॥
तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्स विनश्यत्यसंशयम् ।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥
तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥
तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥
तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥ १५ ॥
तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥

अग्नि उस एक ही पुरुष को जलाती है, जो असावधानी से उसके पास आता है, पर राजा की अग्नि (क्रोध) सारे कुल को जला देती है, समेत पशुओं के और धन के ढेर के ॥ ९ ॥ प्रयोजन शक्ति देश और काल को पूरे तौर पर जानकर कार्य की सिद्धि के लिये वह बार २ अनेकरूप बनाता है (कभी मित्र, कभी शत्रु कभी उदासीन) ॥ १० ॥ जिसके प्रसाद में बड़ी लक्ष्मी *बसती है, पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु बसता है, क्योंकि वह सब के तेज से बना है ॥ ११ ॥ जो कोई भूल से उसके साथ

* पद्मा=जिसके हाथ में कमल है, (नारा० नन्द०) कमल में रहनेवाली (राघ०) पद्मा और श्री दोनों पर्यायवाचक शब्द इकट्ठे कहने से बड़ी लक्ष्मी अर्थ अभिप्रेत है (मेधा०, गोवि०, कुल्लू)

द्वेष करता है, वह निःसन्देह नष्ट होता है; क्योंकि उसके नाश के लिये राजा जल्दी मन को लगाता है ॥ १२ ॥ इसलिए राजा जो धर्म (व्यवस्था=मर्यादा) इष्टों के विषय में और जो अनिष्ट (धर्म) अनिष्टों के विषय में बांधे, उस धर्म को न हिलाए * ॥ १३ ॥ उस (राजा) के निमित्त ईश्वर ने दण्ड को रचा, जो उसका पुत्र है, धर्म स्वरूप है, सब भूतों का रक्षक है, ब्रह्म के तेज से बना है † ॥ १४ ॥ उसके भय से सब स्थावर जंगम भूत भोग के लिए समर्थ होते हैं ‡ और अपने धर्म (मर्यादा) से नहीं हिलते हैं ॥ १५ ॥ (अपराध का) देश और काल, और (अपराधी की) शक्ति और जानकारी को पूरा २ देखकर, अन्याय से वर्तनेवाले मनुष्यों पर यथायोग्य दण्ड चलाए § ॥१६॥

सराजापुरुषो दण्डः स नेता शासिता चसः ।
चतुर्णामाश्रमाणांच धर्मस्य प्रातिभूःस्मृतः॥ १७ ॥
दण्डःशास्ति प्रजाः सर्वा दण्डएवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥

---

*यह मर्यादा लौकिक विषयों में जाननी चाहिए,मेले उत्सवों के मनाने रोकने आदि के विषय में राजा जो आज्ञा दे उसे पालना चाहिए † याज्ञ० १ । ३५३ ‡ भोग के लिए समर्थ होते हैं, दण्ड न हो, तो जिसकी लाठी तिसकी भैंस होजाए, बलवाले दुर्बलों के धन स्त्री आदि छीन लें, उनसे आगे अधिक बलवाले छीन लें । स्थावर भी जो फल पुष्प शाली हैं, उनको उजाड़ने के लिए भी काट डालें, वा अपने खाने के लिए भी तोड़ डालें, § स्थावर भी समय पर फल फूल देते हैं, मनुष्य भी अपने स्वत्व पर रहते हैं, ॥ वासि० १९ । ९ गौत० १२ । याज्ञ० १ । ३६७ विष्णु० ३ । ९१ ।

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥
यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः ।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः ॥ २० ॥
अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा ।
स्वाम्यञ्च न स्यात् कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तेताधरोत्तरम् ॥ २१ ॥

दण्ड (वास्तव) राजा है, (उसके होते ही राजशक्ति है) वह पुरुष है, (उसके सामने सब स्त्रियोंकी तरह दुर्बल हैं), वह (कारोबार का) चलानेवाला है, वह शासन करनेवाला है, और चारों आश्रमों के धर्म का प्रतिभू (ज़ामिन) माना गया है ॥ १७ ॥ दण्ड सारी प्रजाओं पर शासन करता है, दण्ड रक्षा करता है, दण्ड सोए हुओं में जागता है, दण्ड को बुद्धिमान् धर्म जानते हैं, ॥ १८ ॥ ठीक २ विचार करके धारण किया दण्ड सारी प्रजाओं को प्रसन्न करता है, बिन सोचे चलाया हुआ सब ओर नाश करता है * ॥ १९ ॥ यदि राजा अप्रमत्त होकर दण्ड के योग्यों पर दण्ड न चलाए, तो अधिक बलवाले दुर्बलों को शूल पर मछलियों की तरह पकाखावें ॥ २० ॥ पुरोडाश को कौआ खाजाए, हवि को कुत्ता खाजाए † (किसी की) किसी पर मलकीयत न हो सब ऊपर तले होजाए ॥ २१ ॥

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥ २२ ॥

* याज्ञ० १ । ३५५ † सब का वीं कुत्तीं जाय=निष्फल जाय ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः ।
तेऽपि भोगायकल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥२३॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥२४॥

सारा लोक दण्ड से जीता हुआ है, (स्वभाव से) शुचि पुरुष दुर्लभ है, दण्ड के भय से सारा जगत् भोग के लिये समर्थ होता है ॥ २२ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी नाग यह भी दण्ड से पीड़ित हुए भोग के लिए समर्थ होते हैं ॥ २३ ॥ दण्ड की भूल से (न देने से वा उलट पलट देने से) सब वर्ण बिगड़ जाएं सारी मर्यादाएं टूट जाएं, और सब लोगों में बेचैनी होजाए॥२४॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥२५॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ २७ ॥
दण्डोहि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाऽकृतात्मभिः ।
धर्माद्विचालितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥२८॥

जहां काला, लाल नेत्रोंवाला दण्ड (चुन २) पापियों को ताड़ता हुआ विचरता है, वहां प्रजाएं व्याकुल नहीं होतीं, यदि (दण्ड

का) चलानेवाला ठीक देखता है * ॥ २५॥ उसका चलानेवाला राजा को कहते हैं, जो सत्यवादी है, ठीक समझकर काम करता है, बुद्धिमान् है, धर्म, काम और अर्थ का तत्त्व जानता है †॥२६॥ जो राजा उस (दण्ड) को अच्छे प्रकार चलाता है, वह त्रिवर्ग (धर्म,अर्थ,काम) से बढ़ता है, और जो लालची, विषम ‡ क्षुद्रात्मा है; वह दण्ड से ही मारा जाता है ॥ २७ ॥ दण्ड बड़ा भारी तेज है, जो अजितेन्द्रिय से धारण नहीं किया जासक्ता, किन्तु धर्म से फिसले राजा को ही उसके बान्धवों समेत नष्ट कर देता है॥२८

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ।
अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥३०॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥
स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु ।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः॥३२॥

उस के पीछे दुर्ग (किला) देश, चर, अचर सहित लोक और अन्तरिक्ष में होनेवाले मुनि और देवताओं को पीड़ा देता है ॥ २९ ॥ वह (राजा) दण्ड को न्याय से नहीं चला सक्ता, (निर्णय करने में) जिसके सहायक

* विष्णु० ३ । ९६ † गौत० ११ । २ ‡ विषम=एक दृष्टि से न देखनेवाला, अर्थात् विषम दण्ड देनेवाला;क्रोधी(गोवि०कुल्लू०राघ०)

कोई नहीं, वा जो अनजान है, वा लोभी है, वा बुद्धि को मांझे हुए नहीं है; वा विषयों में फंसा है * ॥ ३० ॥ किन्तु दण्ड को वह चला सक्ता है, जो शुद्ध † है, अपने वचन का पालन करता है ‡ शास्त्र के अनुसार चलता है, अच्छे साथियों वाला है, बुद्धिमान् है ॥ ३१ ॥ अपने राज्य में न्याय से वर्तनेवाला, शत्रुओं पर तीक्ष्ण दण्डवाला हो, मित्रों में सरल हो और ब्राह्मणों में क्षमा युक्त हो, उनके तीव्र शब्दों को सहारे § ॥ ३२ ॥

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः ।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥३३॥
अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः ।
संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ३४ ॥

जो राजा इसप्रकार वर्तता है, वह चाहे शिल और उञ्छ से भी जीविका करता हो, (कुछ भी कोश उसके पास न हो) तौ भी इसका यश लोक में इसतरह फैलता है, जैसे पानी पर तैल की बूंद ¶ ॥ ३३ ॥ इससे उलटा चलनेवाले अजितेन्द्रिय राजा का यश लोक में सिमटता है, जैसे घी की बूंद पानी में ॥

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥३५॥
तेन यद्यत्सभृत्येन कर्त्तव्यं रक्षता प्रजाः ।
तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

---

* ३०—३१ गौत० ११।४ याज्ञ० १।३०८—३०२, ३५४ † शुद्ध= ईमानदार, लोभ में न आनेवाला ‡ सत्यसन्ध निरा सचाई का तर्फदार (मेधा०) § याज्ञ० १।१३३ विष्णु० ३।९६ ¶ विष्णु० ३।९७

अपने२ पद के अनुसार अपने२ धर्म में लगे हुए सारे वर्णों और आश्रमों का राजा रक्षक के तौर पर रचा गया है ॥३५॥ प्रजा की रक्षा करने के हेतु उसको और उसके नौकरों को जो२ कुछ करना चाहिए, वह २ मैं तुम्हें क्रमशः ठीक २ कहूंगा ॥३६॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः ।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥ ३७ ॥
वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदाविदः शुचीन् ।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥
तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः ।
विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्याति कर्हिचित्॥३९॥
बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः ।
वनस्थाअपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥ ४० ॥
वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः ।
सुदाः पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेवच ॥ ४१ ॥
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेवच ।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यंचैवगाधिजः ॥ ४२ ॥

राजा (प्रतिदिन) प्रातःकाल उठकर वेद विद्या में बढ़े हुए (नीति शास्त्र के) जानने वाले ब्राह्मणों को पूजे और उनके शासन में ठहरे * ॥३७॥ वृद्ध ब्राह्मण जो वेदवेत्ता और शुद्ध (छल,कपट, बहानों से शून्य) हैं उनका सदा सेवन करे; क्योंकि

* ३७-३८ विष्णु० ३। ७६-७७

वृद्धों का सेवन करनेवाला राक्षसों से भी पूजा जाता है॥३८॥विनीत (सुसभ्य,सुशील)होकर भी उनसे विनय सीखे,क्योंकि विनीतस्वभाव वाला राजा कभी नष्ट नहीं होता है॥३९॥ (हाथी,घोड़े,कोश आदि) बड़े सामानवाले भी अनेक राजे विनय के न होने से नष्ट हुए हैं,और बन में रहने वाले (राज्य का कोई सामान न रखने वाले) भी विनय से राज्यों को प्राप्त हुए हैं ॥ ४० ॥ विनय के न होने से वेन नष्ट हुआ है, तथा राजा नहुष, राजा पिजवन का पुत्र सुदास्, सुमुख और निमि † ॥ ४१ ॥ पृथु और मनु विनय से राज्य को प्राप्त हुए हैं, कुबेर धन के ऐश्वर्य को, और गाधि का पुत्र (विश्वामित्र) ब्राह्मणपन को (प्राप्त हुआ है) ॥४२॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकींचात्मविद्यां वार्तारम्भांश्चलोकतः॥४३॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हिशक्नोति वशेस्थापयितुं प्रजाः॥४४॥
दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानिच ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

वेद के जाननेवालों से वेद विद्या को, तथा सनातन दण्ड नीति (ईशन करने की विद्या =(Science of Government), तर्क विद्या, और आत्म-विद्या को (इन २ के जाननेवालों से) और वृत्ति के (रोज़गार, खेती, पशुपालन, व्योपार, कला आदि

* विनीत = विनयवाला विनय = काम, क्रोध, लोभ, मद, मान, हर्ष=खुशी को सम्भाल न सकना,इन छः शत्रुओं के पराधीन न होना
† वेन मान मद से, नहुष मद क्रोध से, सुदास् मद क्रोध से, सुमुख लोभ से,निमि हर्ष से(नारा० इनकी कथाएं महाभारतसे जानो(मेधा०

का निर्माण इत्यादि) कामों को (योग्यता प्राप्त=तजरुबाकार) लोगों से सीखे * ॥ ४३ ॥ इन्द्रियों के जय में दिन रात यत्न करे, क्योंकि (केवल) जितेन्द्रिय (पुरुष) प्रजाओं को वश में रख सकता है ॥ ४४ ॥ दस काम से उत्पन्न होने वाले और आठ क्रोध से उत्पन्न होने वाले (इन १८) व्यसनों को यत्न से त्यागे जिनका अन्त दुःख है, (चाहे आरम्भ में सुख भी दें) † ॥ ४५॥

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४६ ॥
मृगयाऽक्षोदिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्याच कामजोदशकोगणः ॥४७॥
पैशुन्यं साहसं मोह ईर्ष्याऽसूयऽर्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥४८॥

क्योंकि काम से उत्पन्न होनेवाले व्यसनों में फंसा हुआ राजा अर्थ और धर्म से हीन होजाता है, और क्रोध से उत्पन्न हुओं में फंसा हुआ अपने आप से ही हीन होजाता है (अपना जीवन खो बैठता है) ॥ ४६ ॥ शिकार, जुआ, दिन को सोना, परनिन्दा, स्त्रियें, मद, राग रंग, वृथा घूमना, यह दस काम (सुख की इच्छा) से उत्पन्न होनेवाला गण है ॥ ४७ ॥ चुगली, साहस (भलों को भी बांधना आदि) द्रोह (बहाने से मरवा डालना आदि) ईर्ष्या, (दूसरों के गुणों को न सहारना) असूया (दूसरों के गुणों में दोष लगाना) अर्थ का दूषण (अन्याय से किसी की मल्कीयत जब्त कर लेना वा देने योग्य धन का न देना) वाणी की कठोरता और दण्ड की कठोरता, यह आठ क्रोध से उत्पन्न होनेवाले व्यसन हैं॥

* गौतं० ११ । ३. याज्ञ० १ । ३१० † ४५–४८ विष्णु० ३ । ५०-५१ ।

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ४९ ॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ५१ ॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

इन दोनों का भी—सब विद्वान् जिसको मूल बतलाते हैं, उस लोभको यत्न से छोड़े, यह दोनों समुदाय उससे उत्पन्न होते हैं॥४९ (मद्य-) पान, जुआ स्त्रियें और शिकार यथाक्रम इस चौके को कामजगण में भी बड़ा हानिकारक जाने॥५०॥कड़ा दण्ड देना, वाणी की कठोरता और अर्थदूषण (धन का छीन लेना वा देने योग्य न देना) यह त्रिक क्रोधज गण में भी हानिकारक है ॥ ५१ ॥ यह सात का समुदाय जो सब जगह प्रबल होता है, इस में से भी आत्मवान् राजा पहले २ को बहुत भारी समझे ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥५३॥
मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् ।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥
अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥५५॥

व्यसन और मृत्यु में से व्यसन अधिक हानि कारक है, व्यसनी नीचे २ जाता है, और विना व्यसन मरा स्वर्ग को जाता है ॥५३॥ मन्त्री सात वा आठ बनाए, जो मूल से आए हों (अपने बड़ों से राजकीय नौकर हों) शास्त्र के जानने वाले हों, शूरवीर हों, जिनके विचार कई वार सफल हो चुके हैं, अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हैं, और परीक्षित हैं (कि कोई धोखा नहीं देते हैं, पूरे ईमानदार वफ़ादार हैं) ॥५४॥ चाहे काम आसान भी हो,वह भी अकेले से कठिन होजाता है, क्या फिर राज्य विशेष साथी के विना जो कि बड़े फल वाला है (अतएव बहुत बडा काम है) ॥

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥
तेषां स्व स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥५७॥

उनके साथ प्रति दिन सोचे मामूली सन्धि विग्रह (मेल और लड़ाई) स्थान*, समुदय †, (अपनी और राज्य की) रक्षा, और हाथ आए में शांति फैलाना ॥५६॥ पहले उन सबके अलग २ अभिप्राय को और फिर मिले हुओं के (मंत्र कर निश्चित हुए सब के एक) अभिप्राय को जान कर अपनी भलाई करे ॥ ५७ ॥

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

* स्थान चार हैं, सेना, कोश, पुर, राष्ट्र (गोवि० कुल्लू०नारा० राघ) अथवा स्थान अपने देश से न फिसलना (मेधा०) आसन= ठहरना,(नन्द०) †समुदय=धन का आगम और वृद्धि (Revenue)

नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणिनिक्षिपेत् ।
तेन सार्धंविनिश्चित्य ततः कर्मसमारभेत ॥५९॥
अन्यानपिप्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थ समाहर्तॄ नमात्यन्सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥
निर्वर्तेतास्ययावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ।
तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥६१॥

पर उन में से जो सब से उत्तम, विद्वान् ब्राह्मण है उसके साथ राजा छः गुण से सम्बन्ध रखने वाला उत्तम मन्त्र विचारे* ॥५८॥ सदा उस पर भरोसा करके सारे काम सौंपदे, उसके साथ निश्चय करके हरएक काम आरम्भ करे ॥ ५९ ॥ (मन्त्र के सहायक कह दिये, अब काम करने के सहायक बतलाते हैं) और भी अधिकारी बनावे, जो शुद्ध बुद्धिमान्, पक्के †, भली भान्ति धन के इकट्ठा करने वाले और अच्छी तरह परीक्षा किये गए हैं ॥ ६० ॥ इसके काम की आवश्यकता जितनों से पूरी होसके, उतने अधिकारी बनावे, जो आलस्य रहित, उत्साह वाले, और काम करने में निपुण हों ॥

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान् कुलोद्गतान् ।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥

उन में से जो चतुर, कुलीन, शुचि, पर साथ ही शूरवीर हैं, उन को धन (इकट्ठा) करने में लगए (अर्थात) खानों में और कार-

* याज्ञ० १।३११ † नारा० अवस्थितान्, के स्थान ' कुलोद्गतान् ' पाठान्तर भी बतलाता है ।

खानों में,पर जो भीरु हैं,उनको घरके भीतरी काम में लगाए*॥६२॥
और दूत का उसको अधिकार दे, जो सारे शास्त्रोंमें निपुण हो,इंगित (इशारा) आकार (चेहरे की शकल) और चेष्टा (शरीर की हरकत) का जानने वाला हो, शुचि उत्साही और कुलीन हो॥६३॥

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ।
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥६४॥
अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रं च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥६५॥
दूतएव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा नवा ॥६६॥
सविद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः ।
आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥

राजा का दूत वह अच्छा होता है,जो अनुरक्त † हो, शुचि,निपुण, अच्छी स्मृति वाला, (जो काम उस के हाथ में है, उसके) देश और काल को जानने वाला,सुन्दर शरीर,निर्भय और अच्छा बोलने वाला हो॥६४॥सेना अमात्य (जो सेना के काम में नियुक्त है उस अमात्य) के अधीन होती है, (और प्रजा का) बस में रखना सेना के अधीन होता है, कोष और राष्ट्र राजा के अधीन होते हैं, सन्धि और उलट (युद्ध) दूत के अधीन होते हैं ॥६५॥ क्योंकि दूत ही राजाओं को मिलाता है, और मिले हुओं को फोड़ता है, दूत वह कर्म करता है, जिस से (राजे आपस में) फूट जाते हैं वा

* विष्णु ३।१८,२१ † अनुरक्त=अनुराग वाला(Loyal) (मेधा-गोविं०

नहीं * (मिल जाते हैं) ॥६६॥ वह (दूत) इस (परराज) के जो कारोबार हैं, उनके विषय में उसके आकार, इंगित और चेष्टा को जाने, और उसके विश्वासियों के इंगित और चेष्टाओं से जो कुछ वह भृत्यों के विषय में करना चाहता है, उसे जाने॥६७॥

बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

परराज जो करना चाहता है, वह सब (दूत द्वारा) ठीक २ जान कर ऐसा प्रयत्न करे, जैसे वह अपनेको पीड़ा न दे सके॥६८॥

जांगलं सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् ।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥ ६९ ॥

धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गंवार्क्षमेव वा ।
गिरिदुर्गं नृदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ।
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः ।

राघ०) लोगोंका प्यारा (कुल्लू०) ‡'भिद्यन्ते येन वा नवा' के स्थान नन्द० 'भिद्यन्ते येन मानवा.' और गोवि० 'भिद्यन्तेयेनबान्धवा:' पढता है, इसके जन वा बान्धव उससे फट जाते हैं। 'निगूढेंगितचेष्टितै:' का अर्थ नारा० और गोवि ' अपने इंगित और चेष्टाओं को छिपा कर उसके आकारादि को जाने ' नन्द० के अनुसार ' ऐसे पुरुषों द्वारा जाने जिनके इंगित और चेष्टित गुप्त रहे ' ॥ भृत्य = अपने नौकर चाकर जो किसी बात से क्षुब्ध हैं, वा लोभी हैं, वा अपमानित हैं। राघ० गोवि-और नन्द० यह अभिप्राय लेते हैं, कि वह दूत ऐसा काम करे, जिससे अपने ऊपर वा अपने राजा के ऊपर कोई हानि न पड़े।

त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवंगमनरामराः ॥ ७२ ॥
यथादुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः ।
तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दश सहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

ऐसे देश में वास करे जो जांगल* है, जहां अनाज बहुत है, जहां आर्य बहुत हैं, जो गंदा नहीं (जहां रोगादि नहीं होते) सुहावना है, जहां चारों ओर के अधीन सरदार आज्ञाकारी हैं, जहां (अपनी और प्रजा की) जीविका अच्छी हो सकी है † ॥६९॥ मरु (थल) का दुर्ग, वा जल का दुर्ग वा वृक्षों का दुर्ग वा मनुष्यों का दुर्ग वा पहाड़ों के दुर्ग का आश्रय लेकर पुर में बसे ‡ ॥७०॥ सारे प्रयत्न से पहाड़ के दुर्ग का आश्रय ले, क्योंकि बहु गुणों वाला होने से पहाड़ का दुर्ग इन सब में बढ़िया है ॥७१॥ इन (छः प्रकार के दुर्गों) में से पहले तीनों का आश्रय मृग, बिलों में रहने वाले (चूहे आदि) और जलचर लेते हैं, अगले तीनों का आश्रय क्रम से वानर मनुष्य और देवता लेते हैं ॥ ७२ ॥ जैसे यह जब अपने दुर्ग के आश्रित हों, तो शत्रु इनको क्लेश नहीं दे सक्ते हैं, तैसे (इन) दुर्गों का आश्रय लिये राजा को शत्रु नहीं मार सक्ते हैं ॥७३॥ कोट (पनाह, फसील) पर खड़ा एक धनुर्धारी सौ के साथ युद्ध कर सक्ता है, और सौ दस हज़ार के साथ इसलिये दुर्ग बनाया जाता है ॥ ७४ ॥

तस्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥७५॥

---

* जांगल का पूरा लक्षण—जहां जल घास थोड़ा हो, वायु बहुत हो धूप बहुत हो, बहुत अनाज आदि से युक्त हो (गोवि० राघ० कुल्लू०)
† याज्ञ १।३२० विष्णु ३ । ४५ ‡ विष्णु ३ । ६ ॥

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥७७॥
पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥७८॥
यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥७९॥

वह (दुर्ग) शस्त्रों से, धन से, बोझ ढोने वाले पशुओं से, ब्राह्मणों से, कारीगरों से, यन्त्रों (कलों) से भारे और जल पूर्ण हो ॥ ७५ ॥ उसके मध्य में बहुत खुला अपना घर बनाए जो सब ओर से रक्षित हो, सब ऋतुओं (में रहने) के योग्य हो * शुभ हो, जल और वृक्षों से युक्त हो † ॥ ७६ ॥ उस में रहता हुआ स्त्री विवाहे, जो अपने वर्ण की हो, अच्छे लक्षणों वाली हो, बड़ी कुल में उत्पन्न हुई हो, मनोहर हो, सुरूपा हो, गुणों वाली हो ॥ ७७ ॥ पुरोहित बनावे और ऋत्विजों को चुने, और वह इस के गृह्य और श्रौत कर्म करें‡॥७८॥राजा पूरी दक्षिणा वाले अनेक प्रकार के यज्ञ करे, और धर्म के अर्थ ब्राह्मणों को भोग (भोग्यवस्तुएं) और धन देवे § ॥७९॥

---

* सब ऋतुओं के फल फूल आदि से युक्त (मेधा०गो०वि०कुल्लू०राघ०)
† आप २।२१।२—३ ‡ वासि० १९।३—६ गौत० ११।१२—१८ बौधा० १।१८।७—८ याज्ञ० १।३१२—३१३ विष्णु० ३।७०
§ आप २।२६।१ याज्ञ १।३१४ विष्णु ३।८१, ८४॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम् ।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥ ८० ॥
अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८१॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥ ८२ ॥
न तं स्तेना नचामित्रा हरन्ति न च नश्यति ।
तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयोनिधिः ॥८३॥
न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यतिकर्हिचित् ।
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥ ८४ ॥

वार्षिक कर (Revenue) राज्य से विश्वासी पुरुषों द्वारा उगाहे; लोक में शास्त्र पर चले * और प्रजाजनों में पिता तुल्य वर्ते † ॥ ८० ॥ अनेक प्रकार के अध्यक्ष (Supervisors) बनाए जो उस२ (काम की अपनी २ शाखा) में निपुण हों, वह इस के कार्य कर्त्ता पुरुषों के सारे कार्यों को देखें ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण जो गुरु कुल से वापिस आए हैं, उनकी पूजा करे, क्योंकि ब्राह्मण में रखी (निधि) राजाओं की अनखुट्ट निधि कही है ‡ ॥ ८२ ॥ न उसको चोर वा शत्रु हरते हैं, और न नष्ट होती है, इसलिये राजा को एक अनखुट्ट निधि ब्राह्मणों में रखनी चाहिये ॥८३॥ हवि जो ब्राह्मण के मुख में होमी है, वह न कभी वह जाती है, न बिगड़ती है § न कभी नष्ट होती है, अतएव दूसरे अग्निहोत्रों से बढ़कर है

---

* अर्थात् शास्त्र में कहे से अधिक कर वा अधिक काम न ले

† याज्ञ १ । ३२१ ‡ याज्ञ १ । ३१४ § न सूख जाती है (कुल्लू०) दुःख नहीं उत्पन्न करती है (राघ० यही अर्थ वासि० ३ । ७ पर

समममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥
पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च ।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥८६॥

दान जो अब्राह्मण को (दिया) है, वह बराबर होता है * नाम मात्र के ब्राह्मण को दिया दुगुना फल देता है, अच्छे पढ़े † को दिया लक्ष गुणा देता है, वेद के पार पहुंचे को दिया अनन्त फल देता है ॥ ८५ ॥ पात्र के गुणों के अनुसार और (दाता की) श्रद्धा के अनुसार दान का फल थोड़ा वा बहुत परलोक में होता है

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः ।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥
संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम् ।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८८॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥८९॥

प्रजा का पालन करते राजा को बराबर का बढ़कर वा दुर्बल (कोई शत्रु युद्ध का) आह्वान दे, तो क्षात्र धर्म को

कृष्ण पण्डित ने लिया है) * मेधा० न च्यवते=नहीं गिरती है, पाठ पढता है, नारा० इस पाठ को मुख्यता देता है † उस वस्तु के देने का जितना फल शास्त्र बतलाता है, उतना (गोवि० कुल्लू० राघ०) दया के बराबर (नारा०) ‡ मेधा० नारा० प्राधीते के स्थान आचार्ये पढते हैं * * गीता० ५ । २० ॥

स्मरण करता हुआ युद्ध से न हटे * ॥८७॥ संग्राम से न लौटना, प्रजा का पालन और ब्राह्मणों की सेवा, यह राजा के लिये कल्याण के सर्वोत्तम साधन हैं ॥ ८८॥ वह राजे, जो संग्राम में परस्पर एक दूसरे को मारना चाहते हुए पराङ्मुख न होकर पूरी शक्ति के साथ लड़ते हैं, वह स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ८९ ॥

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून् ।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥ ९० ॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीतिवादिनम् ॥९१॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥
नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम् ।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥
यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः ।
भर्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥

रण में जब लड़ रहा है, तो धोखे के शस्त्रों से † शत्रुओं को न मारे, न नोकदार (फलों वाले) ‡ न विष लिबड़ों, न अग्नि से जलते फाले वालों से § ॥ ९० ॥ (रण में) स्थल पर चढ़े ¶

---

* गौत० १०।१६ आप २।२६।२ बौधा० १।१८।९ याज्ञ १।३२२—३२३ विष्णु ३।४३—४५ ॥

† लकड़ी आदि के अन्दर छिपे हुए, ‡ वा यम आदि ‡ जिनका निकालना अन्दर से दूसरे मांस को भी चीरता आए § बौधा० १।१८।१० ¶ लड़ाई छोड़कर अलग ऊंचे स्थल पर जा खड़ा है, (नारा०) आप रथ पर हों, तो भूमि पर खड़े को न मारे, (मेधा०, कु०, राघ०)

को न मारे, न नपुंसक को, न जिसने हाथ जोड़ दिये हैं न जिस के बाल बिखर गए हैं, न जो बैठ गया है, न उसको जो 'मैं तेरा हूं' कह रहा है (शरणागत) है, * ॥ ९१ ॥ न सोए हुए को, न जिसका कवच टूट-गया है, न नंगे † को, न शस्त्र हीन को, न उसको जो आप न लड़ता हुआ केवल देख रहा है, न दूसरे के साथ जुटे को ॥ ९२ ॥ न जिसके शस्त्र टूट गए हैं, न जो (पुत्रादि के मरने से) पीड़ित है, न जो बहुत परिक्षत (ज़ख्मी) हुआ है, न डरे हुए को, न लौटे हुए को (मारे), उत्तमों के धर्म को स्मरण करता हुआ (अर्थात् सच्चे योद्धा इनको नहीं मारते हैं) ॥ ९३ ॥ जो (क्षत्रिय) संग्राम में डरकर भागता हुआ शत्रुओं से मारा जाता है, वह अपने स्वामी के सारे पाप को प्राप्त होता है, जो कुछ उसका है, ‡ ॥ ९४ ॥ और इस लौटकर मारे गए का जो कुछ परलोक के लिये कमाया पुण्य है, उस सारे को स्वामी लेलेता है ॥ ९५ ॥

रथाश्वं हास्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः ।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥९६॥
राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥९७॥
एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ।
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून् ॥९८॥

* ९१-९३ गौत० १० । १८ आप० २ । १०-११ बौधा० १ । १८ । ११ याज्ञ० १ । ३२५ † नंगे से तात्पर्य लड़ाई में जिसकी टोपी आदि उतर गई है, वा 'भग्नं' पाठ है, तो मन से भांज खागया है, मैं नहीं लड़ता हूं, कह रहा है, (मेधा०) ‡ ९४-९५ याज्ञ० १ । ३२४ ।

रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन अनाज, पशु, स्त्रियें (खाने पीने के) सब पदार्थ (गुड़ लवण आदि) और चांदी सोने से भिन्न धातें इनमें से जो जिसको जीतता है, वह उसकी है * ॥ ९६ ॥ (सिपाही अपनी) लूटका उत्तम भाग राजा को देवें, यह वैदिक श्रुति † है, और राजा ने भी जो अलग (अकेले आप) नहीं जीता है, वह सब योधों को बांट देना चाहिए ॥९७॥ यह योधाओं का निर्दोष सनातन धर्म बतलाया है, इस धर्म से क्षत्रिय को गिरना नहीं चाहिए, जब वह रण में शत्रुओं को मारता है ॥९८॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥
एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थ प्रयोजनम् ।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥१०० ॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं दानेन निक्षिपेत् ॥१०१॥

जो अभी नहीं पाया है, उसके पाने की इच्छा करे, जो पालिया है, उसकी यत्न से रक्षा करे, सुरक्षित को बढ़ाए और बढ़े हुए को योग्यों में बांट देवे ‡ ॥ ९९ ॥ यह चार प्रकार का पुरुषार्थ का साधन समझे, सावधान होकर इसको सदा अनुष्ठान करे ॥ १०० ॥ जो अभी नहीं पाया है, उसको अपनी दण्डशक्ति (सेनाबल) से पाने की इच्छा करे, और जो पालिया है, उसको पूरे ध्यान से रक्षा करे सुरक्षित को वृद्धि के साधनों (जल, स्थल व्यापार, नहरों आदि) से बढ़ाए, और बढ़े हुए को योग्यों पर बांट दे।

---

* ९६--९७ गौत० १०। २०-२३ † देखो ऐतरेय ब्राह्मण ३। २१
‡ वासि० २६। ६ याज्ञ० १। ३१६॥

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ।
नित्यं संवृत-सर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ १०२॥
नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ।
तस्मात्सर्वाणिभूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ १०३ ॥
अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया ।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥१०४॥
नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ।
गूहेत्कूर्मइवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ १०५ ॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ १०६ ॥

उसका दण्ड * सदा तय्यार रहे, पुरुषार्थ सदा प्रकट हो, मन्त्र सारे सदा गुप्त रहें, और सदा शत्रु के छिद्रों का खोजी हो ॥१०२॥ जिसका दण्ड सदा तय्यार है, सारा जगत् उस से डरता है, इसलिए सब जीवों को दण्ड से ही अधीन करे ॥१०३॥ माया (छल कपट) के बिना ही वर्ते, माया से कभी न वर्ते, अपने आप को सदा ढांपे रखकर † शत्रु से चलाई माया को जाने (अपने पक्ष की पूरी रक्षा करता हुआ शत्रुओं की माया को गुप्तचरों द्वारा जानता रहे, जिससे कि वह इसके अपने अधिकारियों वा प्रियजनों में फूट न उत्पन्न कर सकें) ॥ १०४ ॥ इस के छिद्र को शत्रु न जाने, पर आप शत्रु के छिद्र को जाने, कछुए की तरह

* दुष्टों को डांटने के लिए, (नारा० नन्द०) दण्ड = सेना (मेधा० गोवि० कुल्लू०) † मेधा० 'स्वसंवृत्तः' के स्थान 'अतन्द्रितः'

(राज्य के) अंगों (मन्त्री आदि) को ढांपे रक्खे, और अपने छिद्र का बचाव करे ॥ १०५ ॥ बगले की तरह अपने प्रयोजनों में ध्यान रक्खे * शेर की तरह पराक्रम दिखलाए † भेड़िये की तरह झपट लेजाए ‡ और ससे (खरगोश) की तरह निकलजाए §॥

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ १०७ ॥
यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ॥ १०८ ॥
सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥१०९॥
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ११० ॥
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१११

इसप्रकार विजय में लगे हुए राजा के जो विरोधी हों, उन सब को साम आदि (चार) उपायों से वस में लाए ॥ १०७ ॥

सावधान रहकर पढ़ता है, * इस देश को लेना है इस शत्रु को नीचा दिखाना है, इत्यादि † जैसे शेर मत्त हाथी पर बेधड़क जा कूदता है, और मार डालता है, इसतरह निडर हो झपट २ कर प्रबल शत्रुओं को भी नीचे गिराए ‡ भेडिया जैसे रखवालों के होते हुए भी जरा भी प्रमाद होने पर झपटकर पशु को लेजाता है, इसतरह अवसर पाते ही झपटकर छीन ले, § जैसे ससा अनेक शिकारियों को व्यामोह देकर निकलजाता है, इसतरह आवश्यकता के समय निकल जाए ॥

यदि वह पहले तीन उपायों से न ठहरें, तो केवल दण्ड (शक्ति) से दबाकर धीरे २ उनको वश में लाए ॥ १०८ ॥ साम आदि चार उपायों में से पण्डितजन सदा साम और दण्ड को ही राज्य की वृद्धि के लिये सराहते हैं (साम में अपना कुछ क्षय नहीं होता और दण्ड में अपनी हानि तो होती है,पर कार्यसिद्धि अधिक होती है) ॥१०९॥ जैसे चोना * घास को निकाल फेंकता है, और अनाज को रख लेता है, वैसे राजा राष्ट्र की रक्षा करे, और विरोधियों (चोर आदि) को मारे॥ ११०॥ जो राजा भूल से उतावली के साथ अपनी प्रजा को सताता है, वह जल्दी बान्धवों समेत राज्य से और जीवित से फिसल पड़ता है ॥ १११ ॥

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा ।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्तेराष्ट्रकर्षणात॥११२॥
राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥११३॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥११४॥

जैसे शरीर को सताने से प्राणधारियों के प्राण नष्ट होते हैं, वैसे प्रजा के सताने से राजाओं के भी प्राण नष्ट होते हैं, (प्रजा की रक्षा अपने शरीर के तुल्य करनी चाहिये) ॥ ११२ ॥ राष्ट्र के शासन में सदा यह (अगला) नियम वर्ते, क्योंकि जो राजा अपने राष्ट्र पर अच्छा शासन करता है, वह आसानी से बढ़ता है ॥ ११३ ॥ दो, तीन, पांच वा बहुत से गाओं † के मध्य में किसी (विश्वासी

---

* खेत में इकट्ठे उगे अनाज और घास में से घास को चुन २ कर बाहर निकालने वाला † ग्राम शतानाम्=सौ गाओं के मध्य में। यहां शत=सौ बहुतों के अभिप्राय में है,पूरे सौ से नियम नहीं अर्थात् जितने गाओं में एक थाना रखने से काम ठीक चले । पर प्रायः टीकाकारों ने सौ गाओं ही अर्थ किया है। नारा०शतानाम् बहुवचन से सौ या दो सौ चार सौ आदि भी लेता है॥

अधिकारी) के अधिकार में राष्ट्र के शासन (चोरादि से रक्षा और कर आदि के उगाहने) के लिए एक स्थानक (थाना) बनाए ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ ११५ ॥

ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैःस्वयम् ।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥११६॥

विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ ११७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥११८॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पंच कुलानि च ।
ग्रामं ग्राम शताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥११९॥

एक गाओं का अधिपति बनाए, ऐसे ही (उन दसों पर) दस ग्राम का अधिपति, बीस का अधिपति, सौ का अधिपति और सहस्र का अधिपति * ॥ ११५ ॥ ग्राम का अधिपति अपने ग्राम में उत्पन्न हुए दोषों का स्वयं क्रमवार दस ग्राम के अधिपति को पता दे, † दस का अधिपति बीस के अधिपति को ॥ ११६ ॥ बीस का अधिपति वह सब सौ के अधिपति को निवेदन करे, सौ का अधिपति सहस्र पति को स्वयं निवेदन करे ॥ ११७ ॥ ग्राम वासियों ने जो अन्न पान लकड़ी आदि

* ११५–१२४ आप० २। २६। ४–१ याज्ञ० १ । ३३७ विष्णु० ३। ७–१५ † जो आप सुलझा लिए हैं, उनका भी, और जो अभी नहीं सुलझे, या उससे सुलझने कठिन हैं, उनका भी

* प्रतिदिन राजा को देने होते हैं, उनको ग्राम का अधिपति (वृत्ति के लिए) लेवे ॥ ११८॥ दस का अधिपति कुल † को भोगे, बीस का अधिपति पांच कुलों को, सौ ग्राम का अध्यक्ष एक ग्राम को, सहस्र का अधिपति पुर को (भोगे) ॥ ११९ ॥

तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैवहि ।
राज्ञोऽन्यःसचिवः स्निग्धस्तानिपश्येदतन्द्रितः॥१२०
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ १२१ ॥
स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ १२२ ॥
राज्ञोहि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्योरक्षेदिमाः प्रजाः॥१२३॥
ये कार्यिभ्योर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषांसर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ १२४ ॥

इन (अधिकारियों) के जो ग्रामसम्बन्धी कार्य हैं, और उनके अलग कार्य ‡ हैं, उनको राजा का एक और मन्त्री देखे, (जो राजा प्रजा दोनों का) हितैषी हो और (अपने काम में) आलस्य से रहित हो ॥ १२० ॥ और नगर २ में एक ऐसा ऊंचे दर्जे का पुरुष जो उग्ररूप (रोब दाबवाला) नक्षत्रों में ग्रह

*न कि वार्षिक कर आदि † कुल पारिभाषिक शब्द है ग्राम का एक भाग जोकि किन्हीं प्रान्तोंमें घट्ट और किन्हीं में उष्ट प्रसिद्ध है, (मेधा० जितनी भूमि बारह बैलों से जोती जासकती है, (गोवि०, कुल्लू०, नारा०; राघ०) जितनी एक किसान का भाग है, (नन्द) ॥

‡ उनके आपस के झगड़े (नारा०) § ग्रह=प्रधान ग्रह शुक्रादि (कुल्लू०, राघ०) मंगल (मेधा०) चन्द्र (नन्द०) सूर्य (गोवि०)

की तरह (तेजस्वी) हो उनको सारे कार्यों का निरीक्षक नियत करे ॥ १२१ ॥ वह स्वयं सदा उन सब (अधिपतियों) का वारी से दौरा करे, और उन पर छोड़े गुप्तचरों से अपने २ प्रान्तों में उनके बर्ताव की पूरी जांच करे ॥ १२२ ॥ क्योंकि राजा के नौकर जो (लोगों की) रक्षा के लिए नियत किये गए हैं, वह प्रायः दूसरों का धन लेने वाले ठग बन जाते हैं, उन से इन प्रजाओं की रक्षा करे ॥ १२३ ॥ उनका सारा धन लेकर राजा उनको देश से बाहर निकाल दे, जो पापी हृदय वाले कार्य वालों से (रिश्वत के तौर पर) धन लेवें ॥ १२४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ।
प्रत्यहं कल्पयेद् वृत्तिं स्थानं कर्मानुरूपतः ॥ १२५ ॥
पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम् ।
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥ १२६ ॥

(राजकीय) सेवा में युक्त स्त्रियों (दासियों) और नौकरों चाकरों की उनके दर्जे और काम के योग्य प्रतिदिन की जीविका नियत करे ॥ १२५ ॥ निचले (संमार्जन=झाड़ने आदि के काम में नियुक्त) दास को एक पण* और छः महीने पीछे पोशाक और हर महीने अनाज का एक द्रोण † देना चाहिए । और ऊंचे भृत्य को छः पण ‡ देवे ॥ १२६ ॥

---

* पण देखो आगे ८ । १३६ † द्रोण=छः आढक=१०२४ मुट्ठी ‡ छः पण प्रतिदिन, इसीप्रकार छः पोशाक छः महीने पीछे और छः द्रोण प्रतिमास अनाज । इसी रीति पर मध्यम को निकृष्ट से सब कुछ तिगुना ॥

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥१२७॥
यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम् ।
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥१२८॥
यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकःकरः ॥१२९॥

खरीद और बिक्री (का भाव), मार्ग (की दूरी), खुराक (का खर्च), छोटे २ खर्च, और योगक्षेम * देखकर व्यापारियों पर कर लगाए ॥ १२७ ॥ राजा यह सोचकर सदा देश में कर नियत करे, कि जिससे राजा और उन कर्मों के कर्त्ता दोनों फल से युक्त हो ॥ १२८ ॥ जैसे जोक, बछड़ा और भौरा थोड़ी २ खुराक खाते हैं, वैसे राजाको थोड़ा २ वार्षिक कर लेना चाहिए ॥

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादशएवच ॥१३०॥
आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥१३१॥
पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ।
मृण्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममस्य च ॥१३२॥

पशु और सोने का पचासवां भाग (लाभ से) राजा को लेना चाहिए, अनाज का आठवां छठा वा बारहवां भाग †

* मार्ग वा स्थान पर चोर डांकुओं से रखवाली और और टूटने फूटने से रखवाली के खर्च ।

† वासि० १९ । २६-२७ गौत० १० । २४-२७ आप० २ । २६

॥१३०॥ वृक्ष, मांस, शहद, घी, गन्ध, ओषधि, रस (लवण आदि) पुष्प, मूल, फल, पत्र, शाक, घास, चमड़ा बैत की बनी वस्तु, मट्टी के बर्तन और पत्थर की बनी हरएक वस्तु का छटा भाग लेवे ॥

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ।
न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥१३३

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ।
तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति ॥ १३४ ॥

(भूख से) मरता हुआ भी राजा श्रोत्रियसे कर न लेवे, और न ही इस के देश में श्रोत्रिय भूख से पीड़ित हो * ॥ १३३ ॥ क्योंकि जिस राजा के देश में श्रोत्रियसे भूख से पीड़ित होता है, उसका राष्ट्र भी जल्दी भूख से पीड़ित होता है ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वाऽस्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ।
संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १३५ ॥

संरक्ष्यमाणो राज्ञाऽयं कुरुते धर्ममन्वहम् ।
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ १३६ ॥

इसका शास्त्र ज्ञान और आचरण (की पवित्रता) जानकर धर्म युक्त वृत्ति नियत करे सब ओर इसकी रक्षा करे, जैसे पिता औरस-पुत्र की (रक्षा करता है) † ॥ १३५ ॥ राजा से रक्षा किया हुआ (ऐसा ब्राह्मण) प्रतिदिन जो धर्म करता है, उससे राजा की आयु, धन और राष्ट्र बढ़ता है ॥ १३६ ॥

---

९ बौधा० १।१८।१, १३, १५ विष्णु० ३।२२-२५, २९-३० कई अनाजों पर थोड़ा कइयों पर बहुत बड़ा परिश्रम करना होता है। वा किसी जगह वर्षा पर्याप्त होती है, किसी जगह थोड़ी होती हैं,

* वासि० १९।२३ गौत० १०।९ आप० २।२६।१०, २५।११ विष्णु० ३।२६, ७९ † १३५-१३६ याज्ञ० ३।४४।

यत्किञ्चिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ।
व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ १३७ ॥
कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः ।
एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥१३८॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिन्दन् ह्यात्मनोमूलमात्मानं तांश्चपीडयेत् ॥१३९
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥ १४० ॥
अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ।
स्थापयेदासने तस्मिन्खिन्नः कार्येक्षणेनृणाम्॥१४१॥
एवं सर्वं विधायेदमितिकर्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १४२ ॥
विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥१४३॥
क्षात्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ताहि राजा धर्मेण युज्यते ॥१४४॥

(शाक पत्रादि के) व्यवहार से जीवन करते हुए साधारण पुरुष से राजा यत् किञ्चित् भी नाम मात्र कर दिलाए ॥१३७॥ शिकलीगर, कारीगर, (लोहार आदि) और मज़दूरी पर जीविका करनेवाले शूद्र, इनसे राजा महीना २ एक २ कर्म (कर के

तौर पर) कराले * ॥१३८॥ न अपना मूल काटे (कर न लेने से) और न दूसरों का [प्रजाजनों] का अतितृष्णा से, क्योंकि अपना मूल [वा प्रजा का मूल] काटता हुआ अपने आपको और उनको पीड़ा देता है ॥ १३९ ॥ राजा (हरएक) कार्य को देखकर तीक्ष्ण और मृदु होवे, तीक्ष्ण और मृदु राजा सब का प्यारा होता है ॥ १४० ॥ जब (राजा प्रजाजनों के) कार्य देखने में थक जाए तो, धर्म के जाननेवाले, बुद्धिमान् † जितेन्द्रिय, कुलीन मुख्य मन्त्री को उस आसन (न्यायासन) पर बिठलाए ‡ ॥१४१॥ इसप्रकार अपने (शासन के) सारे कार्य का विधान करके उद्योगी और अप्रमत्त होकर इन प्रजाओं की रक्षा करे § ॥ १४२ ॥ जिसके राष्ट्र से (अपनी सहायता के लिए) चिल्लाती हुई प्रजाएं डाकुओं से छीनी जाती हैं, और राजा और उसके भृत्य (चुप चाप) देखते रहते हैं, वह (राजा) मरा हुआ है, जीता नहीं है॥१४३॥ क्षत्रिय का परम धर्म प्रजा का पालन ही है बतलाए फल (प्रजा की पूरी रक्षा करके मर्यादाका कर) भोगने वाला राजा धर्म से युक्त होता है ॥ १४४ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्यप्रविशेत्सशुभांसभाम्॥१४५॥
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाः सर्वाःमन्त्रयेत्सहमन्त्रिभिः॥१४६॥

---

* वासि० १९।२८ गौत० १०।३१ विष्णु० ३।३२ † 'प्राज्ञं' के स्थान मेधा० शान्तं पढ़ता है ‡ याज्ञ० २। १-२ विष्णु० ३।७३ -७४ § १४२-१४४ वासि० १९। १ गौत० १०। ७-८ आप० २। १०६ बौधा० १।१८।१ याज्ञ० १। ३३४-३३५ विष्णु० ३।१

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥१४७॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः१४८
जडमूकान्धबधिरांस्तिर्यग्योनान्वयोतिगान् ।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यंगान्मन्त्रकालेऽपसारयेत्॥१४९॥
भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तिर्यग्योनास्तथैव च ।
स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्राहृतोभवेत ॥ १५० ॥

रात के पिछले पहर उठकर, शौच करके, एकाग्र हो, होम करके, और ब्राह्मणों को पूज करके शुभ सभा में प्रवेश करे ॥ १४५ ॥ वहां स्थित हुआ (दर्शन के लिए आई) सारी प्रजाओं को मधुर संभाषण करके विसर्जन करे सारी प्रजाओं को विसर्जन करके मन्त्रियों के साथ विचार करे ॥ १४६ ॥ पर्वत की पीठ पर वा प्रासाद(महल)पर चढ़कर एकान्त हो,अथवा एकान्त*जंगल में बेमालूम मन्त्र विचारे † ॥१४७ ॥ जिसके मन्त्र को दूसरे लोग मिल करके नहीं जान पाते, वह राजा सारी पृथिवी को भोगता है, चाहे कोश से हीन भी हो ॥ १४८ ॥ मूढ, गूंगे, अन्धे, बहिरे तिर्यग्योनि वाले (तोते, मैना, आदि) स्त्री, म्लेच्छ, रोगी और अंगहीन को मन्त्र काल में अलग कर दे ॥ १४९ ॥ (ऐसे) हीन पुरुष तथा तिर्यग्योनि वाले और विशेषतः स्त्रियें मन्त्र को फोड़ देती है,इसलिए इसमें (इनके अलग रखने में) यत्नवाला हो ॥१५०

* निःशलाके = जहां तिनका नहीं, अर्थात् अपने सिवाय और कोई नहीं, † १४७—१४८ याज्ञ० ३४३ ।

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः।
चिन्तयेद्धर्मकामार्थान् सार्धं तैरेकएव वा ॥१५१॥
परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।
कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५२॥
दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च।
अन्तःपुर प्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥१५३॥
कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥१५४॥

दोपहर के समय वा आधीरात के समय जब मन और शरीर में कोई थकावट न हो, तब उन (मन्त्रियों) के साथ वा आप अकेला अपने धर्म, धन, और भोगों का विचारकरे॥१५१॥ यह जो (प्रायः) आपस में विरुद्ध होते हैं, इनका (विरोध हटा कर) इकट्ठा कमाना, कन्याओं का (योग्य वर को) देना, और (राज-) कुमारों की रक्षा (दोषों से और दुष्ट संगों से बचाना और शिक्षा दिलाने) का (चिन्तन करे)॥ १५२ ॥ (दूसरे राज्यों में) दूत का भेजना, (प्रारब्ध) कार्य की समाप्ति, अन्तःपुर (की स्त्रियों) की प्रवृत्ति, और अपने गुप्तचरों की चेष्टाओं को (अन्य) गुप्तचरों द्वारा) (जाने)॥ १५३ ॥ आठ प्रकार का कर्म *

* आठ प्रकार का कर्म कामन्दकी नीति के अनुसार—खेती, व्यापार, दुर्ग बनाने, पुल बनाने, हाथियों का बांधना, खानों का खुदवाना, जंगलों की लकड़ी का व्यापार और सेना की छावनियें डालनी॥ आठ प्रकार का कर्म उशना के अनुसार, कर आदि का लेना, भृत्य आदि को मासिक वा पारितोषिक आदि देना, देश वृद्धि के कार्यों

समग्र पांच का समुदाय,¶ अनुराग और अपराग ‡ और मण्डल § की प्रवृत्ति को ठीक २ विचारे ॥ १५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ।
उदासीन-प्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥१५५॥
एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः ।

में लोगों को प्रेरणा, हानिकारकों से रोकना, अपने कामों की कठिनाइयों को सुलझाना, व्यवहार का देखना, दुष्टों को दण्ड देना, शुद्धि ॥ टीकाकारों में से नन्द ने कामन्दक के अनुसार लिखा है, गोवि०, कुल्लू०, राघ०, नारा०, राम० ने उशना के अनुसार लिखा है; मेधा० ने यह दोनों मत बतला दिए हैं, और तीसरा मत यह भी बतलाया है, नए काम का आरम्भ, आरब्ध का पूरा करना, पूरा किए को और उन्नत करना, कर्म का फल उठाना, साम, दान, दण्ड और भेद ¶ पांच का समुदाय—इसमें टीकाकारों ने दो मत दिखलाए हैं—एक तो यह कि यह पांच प्रकार के गुप्तचर हैं, कापटिक=बनावटी विद्यार्थी, जो विद्यार्थी होने के हेतु बिना रोक टोक सब से मिल सकें। उदास्थित=बनावटी साधु, गृहपति=किसान, वैदेहिक=व्यापारी, तापस=तपस्वी। यह सब प्रगल्भ पुरुष हों, जो अपना मेल जोल बढा सकें। और सब प्रकार के विचारों से मन्त्री को सूचित करते रहें। अथवा दूसरा अभिप्राय पांच के समुदाय से यह लिया है, कर्मों के आरम्भ का उपाय, उसके चलाने के काम करनेवाले पुरुषों और धन की सम्पदा, रुकावटों का इलाज, देश काल का विभाग, और कार्य की सिद्धि ‡ अपनी प्रजा का अपने में अनुराग और उससे उलट अपराग। इसी प्रकार दूसरे राजों की प्रजा का अनुराग अपराग भी जाने § बारह प्रकार का मण्डल (जो आगे १५५—१५६ में कहेंगे, इसकी प्रवृत्ति—अर्थात् उनमें से कौन राजा किसी दूसरे राजा के साथ सन्धि विग्रह आदि क्या करना चाहता है।

अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताःस्मृताः ॥
अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः ।
प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ १५७ ॥

मध्यम (राजा) की प्रवृत्ति, विजिगीषु की चेष्टा, उदासीन की प्रवृत्ति और प्रयत्न के साथ शत्रु की (प्रवृत्ति को जाने) *॥१.५५॥ यह चार प्रकृतियें संक्षेप से मण्डल का मूल हैं, और आठ और कही हैं, यह सब बारह (प्रकृतियें) कही हैं † ॥ १५६ ॥ इनमें से फिर एक २ के साथ पांच २ और कही हैं—मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग,

* १५५—१५९ याज्ञ० १ । ३४४ विष्णु० ३ । ३८ अपना राज्य और अपने पडोस और पडोसियों के पडोस के जो राज्य हैं, इन सब के राजाओं का एक नाम राजमण्डल है । हरएक राजा का यह कर्त्तव्य है, कि वह निरा अपने राज्य से ही अभिज्ञ न हो, किन्तु सारे राजमण्डल से पूरा २ अभिज्ञ हो । यह राजमण्डल मानों एक शरीर है, इसके अंग इसकी प्रकृतियां कहलाती हैं । यह प्रकृतियां संक्षेप से कहें, तो चार प्रकार की हैं, विस्तार से कहें, तो १२ प्रकार की है, पूरे विस्तार से कहें, तो ७२ प्रकार की है । जो क्रमशः १५५, १५६, १५७ श्लोकों में कही हैं । इनमें से मुख्य चार यह हैं-विजिगीषु, शत्रु, मध्यम, और उदासीन । विजिगीषु=बुद्धि और उत्साह से भरा हुआ, जो अधिक देश पाने के लिए उमंगों से भरा है, कोई अवसर व्यर्थ जाने नहीं देता है । शत्रु तीन प्रकार का होता है । सहज, कृत्रिम और भूम्यनन्तर । सहज=स्वाभाविक—वडों से जिस के साथ वैर आरहा है । कृत्रिम=जिसकी शत्रुता का कोई विशेष कारण हुआ है । भूम्यनन्तर=जिसके साथ अपनी सीमा टकराती है । मध्यम, जो विजिगीषु और उसके शत्रु के मध्य में है, जो यूं तो किसी के भी दबाने में असमर्थ है, पर जब वह दोनों आपस में लड़ रहे हों, तो दबा सक्ता है । उदासीन जो न शत्रु है, न मित्र, (देखो कामन्दकी नीतिसार ८ । १८ और आगे १५८) † यह आठ कामन्द

कोश, और सेना। इसप्रकार यह सब (१२ असली और हरएक के साथ की पांच २ (अर्थात् ६० मिलाकर) बहत्तर कही है ॥

अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ।
अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ १५८ ॥
तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः ।
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ १५९ ॥
सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिंतयेत्सदा ॥ १६० ॥
आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ १६१ ॥
संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ १६२ ॥

अपने पड़ोसी (जिसकी राज्य–सीमा अपनी राज्य-सीमा से टकराती है) को शत्रु (के तौर पर) समझे, और (ऐसे) शत्रु के साथी को भी (शत्रु समझे)अपने शत्रु के पड़ोसी(मिलती

की नीतिसार ८। १६—१७ के अनुसार इसप्रकार हैं। (क) विजिगीषु के लिये, शत्रु की भूमि के अगली ओर (१) मित्र (२) शत्रु का मित्र,(३) मित्र का मित्र, (४) शत्रु के मित्र का मित्र, (ख) पिछली ओर (१) पार्ष्णिग्राह (=एडी पकड़ने वाला अर्थात् आप अगले देश पर चढाई करे, तो पीछे उसके देश पर चढाई करने वाला। (२) आक्रन्द (पार्ष्णिग्राह पर हमला करनेवाला) (३) पार्ष्णिग्रहासार (पार्ष्णिग्राह का सहायक) आक्रन्दासार (आक्रन्द का सहायक)॥

सीमा वाले) को अपना मित्र (समझे) इन दोनों (शत्रु मित्र) से जो परे (अलग) है उसे उदासीन (न शत्रु न मित्र) समझे ॥ १५८ ॥ इन सब को यथा सम्भव मिले हुए वा अलग २ (प्रयोग किए) साम आदि (चार) उपायों से वश में लावे, अथवा केवल बहादुरी और नीति से ॥ १५९ ॥ सन्धि (मेल) विग्रह (युद्ध) यान (चढ़ाई) आसन (ठहरे रहना) द्वैधी भाव (विभक्त होना=अलग २ होजाना) और संश्रय (किसी का सहारा लेना) इन छः गुणों को सदा चिन्तन करे * ॥ १६० ॥ और कार्य (की सिद्धि) का पूरा ध्यान करके आसन, यान, सन्धि, विग्रह, द्वैध और संश्रय का प्रयोग करे ॥ १६१ ॥ राजा, सन्धि और विग्रह दो प्रकार का जाने, यान और आसन भी दो प्रकार के, और दो ही प्रकार का संश्रय माना है ॥ १६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तदात्वायतिसंयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥१६३॥
स्वयं कृतश्च कार्यार्थमकाले कालएव वा ।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहःस्मृतः ॥१६४॥
एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यान मुच्यते ॥१६५॥

उस समय वा भविष्यत के लाभ के लिए दो प्रकार की सन्धि जाननी चाहिए, कुछ दूर चढ़ाई करने से हुई, वा उलट अपने स्थान पर बैठे रहने (से हुई)† ॥१६३॥ विग्रह दो प्रकार का

* १६०—१६१ याज्ञ० १।३४५—३४६ विष्णु० ३।२९ † दूसरे के साथ मिलकर शत्रु पर चढाई करना वा एक ओर से आप और दूसरी ओर से अपने साथी का चढाई करना यह दो प्रकार की सन्धि है,

माना गया है, जो (लड़ाई के) समय * पर वा विना समय के किया गया है, एक अपने कार्य के लिये स्वयं किया, दूसरा (जब किसी ने) मित्रका अपकार किया हो, (तो बदला लेने के लिए) ॥ १६४ ॥ अकस्मात् असावश्यक कार्य पड़ने पर † अकेले का वा मित्र के साथ मिलकर (शत्रु पर) चढ़ना दो प्रकार का यान कहलाता है ॥ १६५ ॥

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात् पूर्वकृतेन वा ।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥१६६॥
बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥१६७॥
अर्थसम्पादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः ।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥१६८॥

दो प्रकार का आसन माना गया है, एक तो दैव से वा पूर्व कर्म ‡ से जब दुर्बल हो तब, दूसरा मित्र के अनुरोध से ॥ १६६ ॥ कार्य सिद्धि के लिए सेना की और स्वामी की अलग अलग स्थिति करनी यह छः गुण के जाननेवालों से दो प्रकार का द्वैध कहा गया है § ॥ १६७ ॥ दो प्रकार का संश्रय माना

(कुल्लू०) * लड़ाई का समय देखो १८२ † शत्रु का व्यसन देखकर

‡ दैव से=अतिवृष्टि आदि वा मरी आदि से राष्ट्र दुर्बल हो, पूर्व कर्म=अपने किसी किए पहिले काम से, वा शत्रु के किए काम से दुर्बल हुआ हो § अर्थात् सेनापति समेत सेना का शत्रु को रोकने के लिए सामने डट जाना, और राजा का चुने सिपाहियों के साथ एक साथ दूसरी ओर से हमला आकरना एक द्वैध-राजाका सामने डटजाना और सेनापति का दूसरी ओर से हमला आकरना दूसरा द्वैध (नारा०) सेनापति का सेना समेत सामने डटना, और राजा का किले में रहना, एक द्वैध इससे विपरीत स्थिति दूसरा द्वैध है ।

गया है, एक तो जब शत्रु से पीड़ित होरहा है; तब अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये, दूसरा (यह अमुक राजा के आश्रित है ऐसा) भलों में प्रसिद्ध करने के लिए (जिससे कि उस पर कोई हमला न करे)॥१६८॥

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदासन्धिंसमाश्रयेत् ॥१६९॥
यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदाकुर्वीत विग्रहम् ॥१७०॥
यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥१७१॥

जब राजा भविष्यत् में निःसन्देह अपनी अधिकता और उस समय (युद्ध) में थोड़ी क्षति समझे, तब सन्धि कर लेवे ॥ १६९ ॥ जब अपनी (मन्त्री आदि) सारी प्रकृतियों को उत्साहित * जाने, और अपने आपको बहुत ऊंचा (सारी शक्तियों से उन्नत) समझे, तब विग्रह करे ॥ १७० ॥ जब उत्साह से अपनी सेना को हृष्ट पुष्ट और शत्रु की (सेना को) उलटा समझे, तब शत्रु पर चढ़ाई करे

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥१७२॥
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥१७३॥

* छपे पुस्तकों में 'प्रकृष्टाः' पाठ है। पर जो अर्थ टीकाकारों ने लिये हैं, उससे 'प्रकृष्टाः' नहीं, 'प्रहृष्टाः' होना चाहिए; सो वैसा

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥१७४॥
निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च ।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १७५ ॥
यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ।
सयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत ॥ १७६ ॥

पर जब वाहन (भार ढोने वाले पशु) और (सेना-) बल से दुर्बल हुआ २ हो, तो धीरे २ शत्रुओं को तसल्ली देता हुआ ठहरा रहे (आसन वर्ते) ॥ १७२ ॥ जब राजा शत्रु को सर्वथा बलवत्तर समझे, तब सेना को दो भाग में करके अपना कार्य साधे ॥१७३॥ जब दूसरी शक्तियों का आसानी से आक्रमण करने योग्य हो जाए, तब जल्दी किसी धार्मिक बलवाले राजा का आश्रय ले ले ॥ १७४॥ जोकि अपनी प्रकृतियों का और शत्रु की सेना का निग्रह कर सके, उसको सदा सारे यत्नों से गुरु की तरह सेवन करे ॥१७५॥ यदि वहां भी दोष देखे, जिसका कारण सहारा लेना हुआ है, तो निःशंक होकर वहां भी वह युद्ध ही करे॥१७६

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥१७७॥
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ।

' ही रक्खा है † गोवि० के अनुसार यह पाठ ' सयुद्धं ' है । मेधा० कुल्लू०, राघ०, नन्द के अनुसार 'सुयुद्धं' है । पर पहले पाठ में अर्थ अधिक स्पष्ट है, इस लिये वह रक्खा है ॥

अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥१७८॥

नीति का जाननेवाला राजा सारे (चारों) उपायों से ऐसा यत्न करे, कि जिससे इसके मित्र उदासीन और शत्रु बहुत बढ़ न जाएं॥१७७॥ सारे कार्योंका भविष्यत् और वर्त्तमान विचारे, और होचुके सारे कार्यों के गुण दोषों को ठीक २ विचारे ॥ १७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥१७९॥
यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥१८०॥

भविष्यत् में गुण दोष के जानने वाला, वर्त्तमान में जल्दी फैसला करनेवाला, और होचुके में कार्यशेष (अवशिष्ट कर्त्तव्य) का जाननेवाला शत्रुओं से नहीं दबाया जाता है ॥ १७९ ॥ इसप्रकार सारा विधान करे, कि जैसे इसको मित्र, उदासीन और शत्रु हानि न पहुंचा सकें, यह संक्षेपतः नीति है ॥ १८० ॥

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ।
तदाऽनेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८१ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ।
फाल्गुणं वाऽथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम्॥१८२॥
अन्येष्वपि तु कालेषु यदापश्येद्ध्रुवं जयम् ।
तदायायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ १८३ ॥

जब राजा शत्रु के राष्ट्र पर चढ़ाई करे, तो इस विधि से

धीरे २ शत्रु के पुर की ओर जाए ॥ १८१ ॥ शुभ मास * मंगसिर में, वा फाल्गुण चैत्र महीनों में, अपनी सेना (शक्ति) के अनुसार राजा चढ़ाई करे † ॥ १८२ ॥ और कालों में भी जब अपना निःसन्देह विजय देखे, वा शत्रु का कोई व्यसन (छिद्र) उत्पन्न होजाए, तो लड़ाई छेड़कर चढ़ाई करे ॥ १८३ ॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥ १८४ ॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ।
सांपरायिक-कल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८५ ॥

मूल (अपने असली राज्य) में प्रबन्ध करके (ताकि पीछे कोई गड़बड़ न हो वा कोई दूसरा न चढ़आए) और यथाविधि यात्रा की सारी सामग्री को साथ लेकर ‡ गुप्तचरों को भली भान्ति (शत्रु के देश में) लगाकर तीन प्रकार के मार्ग § को और छः प्रकार की अपनी सेना ¶ को शोधकर युद्ध के योग्य विधान से धीरे २ शत्रु के पुर को जाए ॥ १८४, १८५ ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ १८६ ॥

---

* शुभ इसलिए, मंगसिर में नया अनाज़ बहुतायत से होजाता है, और मार्ग सूखे होते हैं † याज्ञ० १।३।४७ विष्णु० ३।४० ‡ शत्रु के भृत्यों को अपने अधीन करके (मेधा०, गोवि, कुल्लू०, राघ०) दूसरे राज्य में अपनी छावनी डालकर (नारा०) § तीन प्रकार के मार्ग—उजाड़ के दलदलों के और जंगलों के (मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ० नन्द०) गाओं, जंगलों और पर्वतों के (नारा०) ¶ छः प्रकार की सेना, हाथी, घोड़े, रथ प्यादे, सेनापति और काम करनेवाले (मेधा०, गोवि०, कुल्लू०, राघ०) और देखो कामन्दकी नीतिसार १६।६।

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥१८७॥
यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेद् बलम् ।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥ १८८॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
यतश्च भयमाशंकेत प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥१८९॥

जो गुप्त तौर पर शत्रु का सेवन करनेवाला है ऐसे मित्र के विषय में तथा जो (भृत्य शत्रु के पास) जाकर फिर आया है, उसके विषय में पूरा सावधान हो, क्योंकि वह कष्टतर शत्रु है(यदि शत्रुता करे, तो बड़ी हानि पहुंचाता है) ॥ १८६ ॥ दण्ड व्यूह से, वा शकट से, वा वराह और मकर से, वा सूची से, वा गरुड़ से, मार्ग पर चले * ॥ १८७ ॥ जिस ओर से भय की शंका हो, उस ओर सेना को फैलाए, स्वयं सदा पद्म-व्यूह † से छावनी डाले

* व्यूह=निवेश=सफबन्दी=युद्धक्षेत्र को जाते समय वा युद्ध करते समय सेना का निवेश-सफबन्दी (arraying his troops) यह व्यूह जिस आकार का हो, उसी नाम से बोला जाता है। दण्डे के आकार का व्यूह=दण्डव्यूह अर्थात् आगे सेनाध्यक्ष, मध्य में, राजा, पीछे सेनापति, दाएंबाएं हाथी उनके पास घोडे, फिर प्यादे, इसप्रकार सब ओर से तुल्य रचना वाला लम्बायमान व्यूह दण्ड व्यूह है। इसीप्रकार दूसरे व्यूह भी अपने २ नाम के सदृश हैं। शकट=छकड़ा=पिछली ओर स्थूल, वराह=सूअर=आगे पीछे सूक्ष्म मध्य में स्थूल। मकर=मगर=मुख और जघनमें स्थूल, सूची =सूई-पतली लम्बी पंक्ति, गरुड=मध्य में पंखों की तरह दूर तक फैली हुई। सविस्तर देखो कामन्दकी नीतिसार, अध्याय १९

† पद्म व्यूह=कमल की सी रचना-चारों ओर गोल वृत्त में सेना को फैला राजा केन्द्र में रहे॥

॥ १८८ ॥ सेनापति और सेनाध्यक्ष का सब दिशाओं में स्थापन करे, और उस दिशाको सामने रक्खे जिसमें भय की आशंका हो ॥

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान्समन्ततः ।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥१९०॥
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥१९१
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा ।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥ १९२ ॥
कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान्शूरसेनजान् ।
दीर्घाल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषुयोजयेत् ॥ १९३ ॥
प्रहर्षयेद्बलंव्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत ।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन्योधयतामपि ॥१९४॥

चारों ओर सिपाहियों के दल स्थापन करे, जो विश्वासी हों, (लड़ने ठहरने आदि के लिए भेरी आदि के शब्द आदि का) सङ्केत किए हुए हों, ठहराव और युद्धमें कुशल हों (अवसर न चूकें) भीरु न हों, और बिगडने वाले न हों ॥ १९० ॥ थोडों को इकट्ठा करके युद्ध कराए, बहुत हों तो बेशक फैलादे, सूची वा वज्र व्यूह से रचना करके इनको लडाए ॥ १९१ ॥ समस्थल में रथ और घोडों से युद्ध करे, पानी वाले स्थान में नौका औरहाथियों से वृक्ष और झाडियों से घिरे स्थान में धनुषों से, स्थल* में तल-

* स्थल=पत्थर वृक्ष झाडी गढे आदि रहित देश (मेधा०, गोविं०, कुल्लू०) पर्व तस्थल (राघ०)

वार ढाल और (भाले आदि) शस्त्रों से ॥ १९२ ॥ कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल और शूरसेन (देश) वासियों को * और भी लम्बे वीरों (जान तोड़ कर लडनेवालों) को सेना के आगे जोड़े ॥ १९३ ॥ अपनी सेना को व्यूह रचना में लाकर उनको (उत्साह भरे वचनों से) उत्साहित करे, और सावधानी से उन की परीक्षा करे, और शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुओं की चेष्टाओं को जाने ॥ १९४ ॥

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत ।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ १९५ ॥
भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्राकारपरिखास्तथा ।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ १९६ ॥
उपजप्यानुपजपेद् बुध्येतैव च तत्कृतम् ।
युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ १९७ ॥

शत्रु को रोककर बैठे, इसके राष्ट्र को तंग करे, और लगातार इसके चारे जल इन्धन को बिगाड़ दे (रस्ते रोककर जाने न दे) ॥ १९५ ॥ (पानी के) तालाब, कोट (शहर पनाह) और खाइयें तोड़ डाले, (जहां से दाव लगे) उस पर हमला करे और रात्रि के समय डराए(ढोल आदि बजाकर,वा गोले आदि छोड़कर) ॥१९६॥फोड़ने योग्यों (शत्रु के मन्त्री आदि, वा भाई आदि) को फोड़ देवे, और उस (शत्रु) से किए (फोटक) को समझे, और जब दैव अनुकूल हो, तब निर्भय हो जय की इच्छा से लड़े

* मत्स्य=विराट् देश जयपुर के उत्तर में, पञ्चाल=कनौज, शूरसेन=मथुरा प्रान्त ।

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक् ।
विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ॥ १९८ ॥
अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युद्ध्यमान योः ।
पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥१९९॥
त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे ।
तथा युध्येत सम्पन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥ २०० ॥

(जहांतक हो) साम, दान और भेद, इन इकट्ठे मिले हुए वा अलग २ [प्रयोग कियों] से शत्रुओं के जीतने का प्रयत्न करे, युद्ध से कभी नहीं ॥ १९८ ॥ जिसलिए युद्ध करते हुओं का संग्राम में जय अनियत होता है, (बलवानों का भी) पराजय भी होता है, इसलिए युद्ध को त्यागे ॥ १९९ ॥ पूर्वोक्त तीनों उपायों में से कोई न होसके, तो (युद्ध की सारी सामग्री से) सम्पन्न होकर ऐसा लड़े, कि शत्रु को अवश्य जीत ले ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ।
प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥२०१॥
सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ।
स्थापयेत् तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥२०२॥

जीतकर देवताओं को और धार्मिक ब्राह्मणों को पूजे, परिहार * देवे, और (वहां की प्रजा के लिए) अभयदान का ढिंढोरा दे ॥ २०१ ॥ इन सब (प्रजा और मन्त्री आदि) के अभिप्राय को संक्षेप से जानकर, वहां उस वंश में उत्पन्न हुए को स्थापन करे, और उससे संकेत (अहद) कर लेवे ॥ २०२ ॥

* परिहार शब्द, विस्तृत अर्थों में है । संस्थाओं वा ब्राह्मणों के लिए जागीरें, प्रजाओं से वर्ष वा दो वर्ष के लिए कर छोड़ देना आदि

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान् ।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ २०३ ॥

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥२०४॥

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥ २०५ ॥

उनके (देश वासियों के) धर्मयुक्त (आचारों) को प्रमाण करे, जैसे वह (उनके धर्म में) कहे हों, और इस (नए राजा) को उसके प्रधान पुरुषों समेत रत्नों (बहु मूल्य उपहारों) से पूजे ॥ २०३ ॥ प्यारी वस्तुओं का लेना अप्रिय बनानेवाला और देना प्रिय बनानेवाला है (इनमें से) ठीक समय पर बर्त्ता (हरएक) प्रशंसा के योग्य होता है (इसलिए उस समय देना ही उचित है) ॥ २०४ ॥ हरएक काम इस (लोक) में दैव और मनुष्य के यत्न पर निर्भर है। पर इन दोनों में से दैव (का इलाज) तो चिन्ता से परे है, (सोचा जा नहीं सक्ता), मनुष्य के काम में क्रिया * (उपाय, इलाज) सम्भव है (इसलिये दैव को अपनी इच्छा पर चलने देकर आप अपने कार्य में विचार और पौरुष से ही साधने का यत्न करे) † ॥ २०५ ॥

सह वापि व्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
मित्रं भूमिं हिरण्यं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥२०६॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाऽऽक्रन्दं च मण्डले ।
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥२०७॥

---

* पुरुषकार (राघ०) † याज्ञ० १ । ३४८

अथवा (यदि शत्रु सन्धि करना चाहे, तो) सावधान हो यत्न से उसके साथ सन्धि करके लौट जावे, यह देखता हुआ, कि (पौरुष का) फल मित्र, भूमि वा सोना (यही) तीन प्रकार का होता है (अर्थात् मित्रता भी बड़ा फल है) * ॥२०६॥ मण्डल में पार्ष्णिग्राह (पीछे आकर अपने देश पर आक्रमण करनेवाले) और आक्रन्द (उसको आक्रमण करने से रोकनेवाले) को देख कर (जिस पर आप आक्रमण किया है, उस राजा से) यात्रा का फल लेवे † चाहे वह मित्र होगया है, वा अमित्र ही रहा है॥२०७॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥२०८॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ २०९ ॥

सोने और भूमि की प्राप्ति से राजा वैसा नहीं बढ़ता है, जैसे ऐसे स्थिर मित्र को पाकर, जो उस समय चाहे दुर्बल ही हो, पर भविष्यत् में समर्थ होनेवाला हो ‡ ॥ २०८ ॥ धर्मज्ञ, कृतज्ञ, और जिसकी प्रकृतियें (प्रजा और मन्त्री आदि) उस पर प्रसन्न हैं, जो प्रेम करनेवाला है, और काम को पूरा करके छोड़ने वाला है, ऐसा मित्र दुर्बल भी प्रशंसा किया जाता है ॥ २०९ ॥

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ।
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥२१०॥

---

* २०६–२१० मेधा० के भाष्य में नहीं हैं † ऐसा न हो कि आप नया देश ग्रहण करने में रहे, और पिछले को पार्ष्णिग्राह दबा ले, यदि ऐसा सन्देह होजाए, तो अगले शत्रु से झट सन्धि स्वीकार कर पिछली सम्भाल में सावधान होजाए ॥ ‡ याज्ञ० ॥ १ । ३५२ ।

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सतत मुदासीनगुणोदयः ॥२११॥

बुद्धिमान् कहते हैं, ऐसा शत्रु बड़ा भयंकर होता है, जो समझ वाला, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता कृतज्ञ और धैर्यवाला हो, (ऐसे से जहांतक बने, सन्धि कर लेनी और रखनी चाहिए) ॥ २१०॥ आर्यता, (योग्य अयोग्य) पुरुषों की पहचान, वीरता दया को अनुभव करनेवाला होना, बहुत उदारता, यह उदासीन के गुणों का उदय है (दूसरा अवश्य किसी का मित्र और किसी का शत्रु होता है) ॥ २११ ॥

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि ।
परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥२१२॥
आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥२१३॥

सदा अरोगता देनेवाली, खेती देनेवाली और पशुओं की वृद्धि करनेवाली भूमि को भी राजा अपने (बचाव के) लिये विन सोचे त्यागदे (यदि उसके त्याग से अपना निस्तारा हो) ॥२१२॥ आपदा (के दूर करने) के लिए धन की रक्षा करे, धन से भी स्त्रियों की रक्षा करे, और अपने आपको सदा स्त्रियों से भी और धनसे भी रक्षा करे, (जब राजा की अपनी रक्षा में स्त्रियों के मरने और धन के लुट जाने विना कोई उपाय न रहे, तो ऐसा सहले)॥

सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम् ।
संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः ॥२१४॥
उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ।
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥ २१५॥

बुद्धिमान् (राजा) जब (कोश का क्षय, प्रकृतियों का कोप और मित्र का व्यसन आदि) सारी विपत्तियों को एक साथ उत्पन्न हुआ देखे (तो घबरा न जाए, अपितु) मिले हुए वा अलग २ सारे (चारों) उपायों को वर्ते (अपने आपको और राज्य को बचाने के लिए) ॥ २१४ ॥ उपाय वर्तने वाले * को, और उपाय से पाने योग्य (फल) को और सारे उपायों को इन तीनों का पूरा सहारा पकड़कर † अर्थ सिद्धि के लिए यत्न करे

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ।
व्यायम्याप्लुत्यमध्यान्हेभोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥२१६॥
तत्रात्मभूतः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः ।
सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥२१७॥
विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ।
विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥ २१८ ॥

इन सब विषयों का अपने मन्त्रियों के साथ विचार करके व्यायाम और स्नान करके, मध्यान्ह में खाने के लिये अन्तःपुर में प्रवेश करे ॥ २१६ ॥ वहां विश्वासी, कभी न बिगड़ने वाले, (जिस समय जो व्यञ्जनादि बनाना चाहिये, और भोजन में जिस समय देना चाहिए उस) काल के जाननेवाले नौकरों से, (तय्यार किए) सुपरीक्षित अन्न को विष के दूर करने वाले मन्त्रों से खाए ‡ ॥ २१७ ॥ विष के दूर करनेवाले औषधों से

* उपाय वर्तनेवाला=आपराजा (गोवि०, कुल्लू०, नारा० राघ०) मन्त्री आदि (नन्द) † सहारा पकडकर=मन से इनके बल अबल आदि का निश्चय करके (नारा०, राघ०) इन पर निर्भर करके (मेधा०, गोवि०, कुल्लू०) ‡ २१६-२२० याज्ञ० १।३२६ विष्णु० ३।८०, ८७-८८

इस के (खाने के) सारे पदार्थों को; युक्त करे, * और विष के दूर करनेवाले रत्न सदा सावधान हो धारण करे ॥ २१८ ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ।
वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥२१९॥
एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ।
स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥२२०॥
भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ।
विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ॥२२१॥
अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ।
वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि ॥२२२॥

परखी हुई स्त्रियें जिनका वेष और भूषण स्वच्छ है वह सावधान होकर पंखा, जल, धूप से इसका सेवन करें ॥ २१९ ॥ इसप्रकार गाड़ी, विस्तरा, आसन, (रोटी से भिन्न भी) खाने की वस्तु, स्नान, अनुलेपन और भी जो सजावट की वस्तुएं हैं, उन सब में सावधान हो ॥२२०॥ जब खाचुके, तब अन्तःपुर में स्त्रियों के साथ जी बहलाकर फिर ठीक समय पर कार्यों का चिन्तन करे ॥ २२१ ॥ (जंगी पहरावे से) सजा हुआ फिर अपने शस्त्रधारी जनों को देखे, सारे वाहन, शस्त्र और वर्दियों को देखे

---

* कुल्लू के अनुसार 'योजयेत्' पाठ है युक्त करे। (मेधा०, गोवि०, नारा०,नन्द) के अनुसार 'नेजयेत् है,अर्थ-धोवे और राघ० के अनुसार 'शोधयेत् है। अर्थ-शोधे।

सन्ध्यां चोपास्यशृणुयादन्तर्वेश्मानि शस्त्रभृत् ।
रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥२२३॥
गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम् ।
प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तः पुरं पुनः ॥२२४॥
तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः ।
संविशेत्तुयथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥२२५॥
एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः ।
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥२२६॥

फिर सन्ध्या उपासकर शस्त्र पहने हुए घर के अन्दर (बैठकर) गुप्त बातों के कहने वालों * के और गुप्तचरों के (किये) काम सुने † ॥ २२३ ॥ वहां से दूसरे कमरे में जाकर, उन लोगों को विसर्जन कर, (सेविका) स्त्रियों से युक्त हुआ भोजन के लिए फिर अन्तःपुर में प्रवेश करे॥२२४॥ वहां फिर कुछ खाकर, बाजों की ध्वनियों से प्रसन्न हुआ ठीक समय पर सोवे और थकावट को दूरकर (तरोताजह होकर) ठीक समय पर उठे ॥२२५॥ राजा अरोग हो, तो यह सारा काम आप अनुष्ठान करे, अस्वस्थ हो, तो यह सब भृत्यों के ऊपर डाल देवे ॥

इति श्रीसप्तमोऽध्याय समाप्तः

* मन्त्री आदि (नारा०) पुर के कई लोग (मेधा०) † याज्ञ० १ । ३२९ ‡ याज्ञ० १ । ३३० ।

अथाष्टमोऽध्यायः

संगति—राज्यकार्यों को कहकर अब प्रजा के न्याय का प्रकार बतलाते हैं :—

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥
तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२॥
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥३॥

व्यवहारों (मुकदमों) को देखना चाहता हुआ राजा विनीत होकर ब्राह्मणों और मन्त्र के जाननेवाले मन्त्रियों के साथ सभा में प्रवेश करे * ॥ १ ॥ वहां बैठकर वा खड़ा होकर † दाएं हाथ को उठाकर ‡ विनयवाले वेष और भूषणों से युक्त हुआ, कार्य वालों के कार्य, जो अलग २ अठारह मार्गों में बांधे गए हैं, उनको, देश में देखे और शास्त्र में देखे हेतुओं § से प्रतिदिन देखे (विचारे) ¶ ॥ ३ ॥

---

* वासि० १६ । २ गौत० १३ । २६ याज्ञ० १ । ३५९ ; २ । १ विष्णु० ३ । ७२ † बडे कार्यों में अवश्य बैठकर धैर्य के साथ निबेडे, छोटे चाहे खड़ा रहकर निबेड़ले (मेधा०, गोवि०, कुल्लू० राघ०) ‡ दाईं भुजा को उठाकर (कुल्लू०) दायां हाथ वस्त्र से बाहर रखकर (नारा०, नन्द०, राघ०, गोवि०) और देखो पूर्व ४ । ५८ § देश में देखे, देश, जाति और कुल के आचार, शास्त्र में देखे प्रमाणपत्र और साक्षी आदि ¶ वासि० १६ । ४-५ गौत० ९ । १९-२४ ॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ५ ॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥
स्त्रीपुंधर्मोविभागश्च द्यूतमाह्वयएव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥
एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

उन (अठारह) में से पहला (१) ऋण का न देना * (२) निक्षेप (अमानत) (३) बिना स्वामी होने के बेचना (४) मिलकर कारोबार (५) दिये हुए का फेर लेना ॥ ४ ॥ (६) वेतन का न देना (७) इकरार का पूरा न करना (८) खरीद और बिक्री का पश्चात्ताप (९) पशुओं के मालिक और पालक का झगड़ा ॥ ५ ॥ (१०) सीमा (हद्द) के झगड़े का धर्म (कानून) (११, १२) वाणी और दण्ड की कठोरता (गाली देना वा मारपीट) (१३) चोरी (१४) साहस (बलात्कार) (१५) पर स्त्री का लेलेना ।६। (१६) पति पत्नी का धर्म (१७) (भाइयों का) विभाग (१८) जुआ और प्राणधारियों

* ऋणा दानम्=ऋण+आदानम्=ऋण का लेना भी अर्थ होसक्ता है

का जुआ। यह अठारह इस (जगत) में व्यवहार २ की स्थिति में * स्थान है ॥७॥ बहुधा † इन्हीं अठारह स्थानों में विवाद करते हुए मनुष्यों के कार्यों का निर्णय सनातन मर्यादा के आश्रय करे ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥९॥
सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः ।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थितएव वा ॥१०॥
यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ।
राज्ञश्चाधिकृतोविद्वान् ब्रह्मणस्तां सभांविदुः ॥११॥

जब (काम की अधिकता से वा रोगादि से) राजा स्वयं कार्यों का देखना न कर सके, तब विद्वान् ब्राह्मण को कार्यों के देखने में लगाए ‡ ॥ ९ ॥ वह (ब्राह्मण) तीन § दूसरे सभासदों से युक्त हुआ, सभा में ही प्रविष्ट होकर, वहां बैठा हुआ वा खड़ा होकर इसके कार्यों को देखे ॥ १० ॥ जिस सभा में वेदवेत्ता तीन ब्राह्मण और राजा का अधिकारी एक विद्वान् बैठता है, उसको ब्रह्मा की सभा कहते हैं ॥ ११ ॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥१२॥

---

* जिस पर विवाद की स्थिति है, (गोवि०) विवाद की स्थिति=विवाद के निर्णय में (नारा०) † बहुधा कहने से और भी विवाद स्थान हैं, जैसा कि नारद ने कहे हैं (मेधा०, गोवि०, कुल्लू०, नारा०, राघ०) नन्द० ने यह श्लोक छोड़ दिया है।

‡ धासि० १६। २ गौत० १३। २६ याज्ञ० २। ३ विष्णु० ३।७३

§ घट से घट तीन (मेधा०)॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ १३ ॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

जहां सभा में धर्म अधर्म से बींधा हुआ आता है, और (सभासद) इसके शल्य (कांटे) को नहीं काटते हैं, वहां सभासद (स्वयं अन्याय से) बींधे हुए हैं ॥१२॥ या तो सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिए * या ठीक २ कहना चाहिए, न कहता हुआ वा उलटा कहता हुआ दोनों तरह से मनुष्य पापी होता है ॥ १३ ॥ क्योंकि जहां धर्म अधर्म से और सत्य झूठ से मारा जाता है और (सभासद) देखते रहते हैं, वहां सभासद मरे हुए हैं

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नोधर्मोहतोऽवधीत्॥१५॥
वृषोहि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥
पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥१८॥
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनोगच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १९॥

* व्यवहार निर्णय के लिए (गोवि०, कुल्लू०, राघ०)

धर्म मारा हुआ मार देता है, धर्म रक्षा किया हुआ रक्षा करता है, इसलिए धर्म को नहीं मारना चाहिए, न हो, कि मारा हुआ धर्म हमें मारदे *॥ १५॥ भगवान् धर्म वृष [श्रेष्ठ वा बल] है, उसका जो लोप करता है, उसको वृषल (शूद्र) कहते हैं, इसलिए धर्म का लोप न करे ॥ १६ ॥ धर्म ही एक मित्र है, जो मरने पर भी साथ जाता है (साथ नहीं त्यागता) और सब कुछ शरीर के साथ नाश को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ (अन्याय करने में फल भागी बतलाते हैं) पाद (चौथाई)अधर्म के करनेवाले को, चौथाई साक्षियों को, चौथाई सब सभासदों को और चौथाई राजा को प्राप्त होता है † ॥१८॥ पर जहां (ठीक न्याय होने से) निन्दा के योग्य (अर्थी वा प्रत्यर्थी) निन्दा जाता है, वहां राजा निष्पाप होता है, सभासद सब छूट जाते हैं, पाप अपने करने वाले को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद् ब्राह्मणब्रुवः ।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथञ्चन ॥ २० ॥
यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पंके गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥
यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥२२॥

---

*यह वचन सभ्यों की ओरसे प्राड्विवाकको कहा गया है,यदि वह अन्याय पर चलें (गोवि०, कुल्लू०, राघ०) नन्द० 'नः' के स्थान 'वः'=तुम्हें, पढ़ता है † गौत० ८। २ बौधा० १।१९। ८ इस श्लोक में 'सभासद' से सभासद और प्राड्विवाक' दोनों अभिप्रेत हैं ॥

जातिमात्र से जीनेवाला ब्राह्मणब्रुव* बेशक राजा का धर्म प्रवक्ता (न्यायनिर्णेता) हो, पर शूद्र † कभी नहीं॥२०॥जिस राजा के शूद्र धर्म निर्णय करता है, उसका वह राष्ट्र उसके देखते हुए कीचड़ में गौ की तरह फंसता है॥ २१॥ वह राष्ट्र जहां शूद्र बहुत हैं ‡ नास्तिकों से दबा हुआ है, द्विजों से शून्य है, वह जल्दी दुर्भिक्ष और रोगों से पीड़ित होकर नष्ट होता है ॥२२॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ।
प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥
अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ ।
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२४॥

न्यायासन पर बैठकर, शरीर को ढांपे हुए एकाग्र हो लोकपालों को नमस्कार करके कार्यों के देखने का आरम्भ करे॥२३॥ दोनों अर्थ और अनर्थ और केवल धर्म और अधर्म को जानकर § वर्ण क्रम से कार्यवालों के सारे कार्य देखे ॥ २४ ॥

---

*जो अपने आपको ब्राह्मण कहता है, पर है जातिमात्र से जीविका वाला, ब्राह्मणके योग्य विद्या और कर्म नहीं रखता (मेधा०, गोवि०) जाति मात्रो पजीवी=जातिमात्र से जीनेवाला=विद्यादि से हीन, और ब्राह्मणब्रुव=जिस का ब्राह्मण होना ही संदिग्ध है। हां वह आप अपनेको ब्राह्मण कहता है। (कुल्लू०,राघ०)जातिमात्र से जीनेवाला=संस्कारों से हीन,और ब्राह्मणब्रुव=संस्कार होकर विद्या न पढ़ा हुआ(नारा०)

† केवल शूद्र के निषेध से यह अभिप्राय है, कि ब्राह्मण के अभाव में क्षत्रिय और वैश्य न्यायदेखसक्ते हैं,‡शूद्र संख्यामें अधिक हैं,(गोवि०, कुल्लू०, राघ०) न्याय निर्णय करनेवाले अधिक शूद्र हैं (मेधा) शूद्रों को ही अधिक ऊंचे अधिकार हैं, (नन्द०) § अर्थ=कैसा निर्णय लोगों को प्रसन्न करेगा, अनर्थ=कैसा अप्रसन्न करेगा, पर

बाह्यैर्विभावयेल्लिंगैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् ।
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥ २५ ॥
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥
बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्सस्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः॥२७॥
वशाऽपुत्रासु चैव स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥ २८ ॥
जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ।
ताञ्छिष्याच्चोरदण्डेन धार्मिकःपृथिवीपतिः ॥२९॥
प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत ॥३०॥
ममेदमिति योब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ।
संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥३१॥
अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

जहां धर्म से विरोध आता हो वहां केवल धर्म अधर्म का ही विचार करे, (गोवि०) अर्थ अनर्थ=प्रजा की रक्षा और उच्छेद (कुल्लू०) मेधा०, राघ० इसप्रकार अन्वय करते हैं, केवल धर्म अधर्म को ही अर्थ अनर्थ जानकर=अर्थात् धर्म ही अर्थ और अधर्म ही अनर्थ हैं ऐसा जानकर ॥

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्म मनुस्मरन् ॥ ३३ ॥

बाहर के चिन्हों अर्थात्-स्वर, रंग, इशारा, आकृति, नेत्र, और चेष्टा से * लोगों के अन्तरीय अभिप्राय को लखे ॥२५॥ क्योंकि आकृति, इशारे, गति (पाओं आदि का फिसलना आदि) चेष्टा, भाषण, और नेत्र तथा मुख के विकारों से अन्तर्गत मन जाना जाता है ॥ २६ ॥ बालक जिसका स्वामी है, उस धन की राजा तब तक रक्षा करे जबतक वह (गुरुकुल से) वापिस आए अथवा जब बचपन से निकल जाए †॥२७॥बन्ध्या, वा जिसका कोई पुत्र न हो,वा जिसके वंश में कोई पुरुष नहीं रहा, तथा पतिव्रता,विधवा, और स्थिर रोगवाली स्त्रियों के विषयमें भी इसीतरह रक्षा का प्रबन्ध करे ॥ २८ ॥ जब तक वह जीती हैं, यदि उनके धन को बान्धव छीनें, तो धार्मिक राजा उनको चोर के तुल्य दण्ड देवे ॥ २९ ॥ (जिसका स्वामी मालूम नहीं) उस धन को राजा तीन वर्ष रखे रक्खे, तीन वर्ष से पहिले स्वामी लेसक्ता है पीछे राजा लेलेवे ‡ ॥३०॥ यह मेरा है, जो यह कहे उसको यथाविधि

---

* २५—२६ याज्ञ० २। १५ स्वर गद्गद आदि, गोवि० ने स्वर के स्थान मुख लिखा है=चेहरे का रंग। वर्ण=रंग असली रंग से और तरह का होजाना, इशारे=नीचे देखना आदि, आकृति=पसीना आना, रोंगटे खड़े होना, देह कांपना आदि, नेत्र—दीन दृष्टि वा उद्धत दृष्टि आदि। चेष्टा=हाथ को मलना आदि† द्विज जब गुरुकुल से वापिस आए,तब और शूद्र जो गुरुकुल में नहीं गये,वा द्विज जो बचपन में ही वापिस आगए हैं, वह जब बचपन से निकल जाएं, तब। बचपन १६ वर्ष तक होता है। देखो नारद ३। ३७ ।‡३०—३४ वासि० १६।२० गौत०१०। ३६—३८ आप० २। २८। ७—९, याज्ञ० २। ३३ अर्थात् जो राजपुरुषों ने कहीं गिरी पड़ीवस्तु पाई है। उसका ढिंढोरा पिटवाकर तीन वर्ष तक उसके स्वामी की प्रतीक्षा में रहे

पूछे, यदि वह इसका रूप संख्या आदि ठीक बतलाता है, तो वह स्वामी होने से इस धन को पाने योग्य है॥३१॥यदि नष्ट हुए द्रव्य का वह देश, काल, रंग, आकृति, और परिमाण, ठीक नहीं बतलाता है तो उस (धन) के बराबर दण्ड के योग्य होता है ॥३२॥ खोया हुआ जो पाया धन है उस से राजा सब पुरुषों के धर्म को स्मरण करता हुआ छटा दसवां वा बारहवां हिस्सा लेवे * ॥३३॥

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ।
यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत्॥३४॥
ममायमितियोब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ।
तस्याददीत षड्भागं राजाद्वादशमेव वा ॥ ३५ ॥

खोया हुआ धन जो (राजपुरुषों ने) पाया है, वह (विशेष) अधिकारियों की रक्षा में रहे, उसको जो चोर चुरावें, उनको राजा हाथी से मरवा डाले॥३४॥जो मनुष्य स्वयं पाई वा दूसरों से पाई दबी हुई निधि (खज़ाने) को सचाई से कहे कि यह मेरा है, तो राजा उससे छटवां वा बारहवां हिस्सा लेलेवे † ॥३५॥

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम्॥३६॥

---

* छठा, दसवां, बारहवां यह व्यवस्था—रक्षा के समय के अनुसार है (मेधा०, राघ०) उसको पाने के परिश्रम के अनुसार है (गोवि०) धन के स्वामी के गुणी वा निर्गुणताके अनुसार है (कुल्लू० नारा०) मेधा० ने ३२ श्लोक को ३४ के पीछे लिखा है ॥

† ३५—३९वासि०३।१३-१४ गौत०१०।४३—४५याज्ञ०२।३४।३५ विष्णु० ३।५६-६४ यहां भी छटे बारहवें की व्यवस्था गुण आदि की अपेक्षा से है ।

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ।
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥
यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ ।
तस्माद् द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥
निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ ।
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥ ३९ ॥
दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम् ।
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

झूठ बोले तो उसके अपने* धनका आठवां हिस्सा वा उसी निधि को गिनकर कोई थोड़ा सा हिस्सा दण्ड देवे ॥ ३६ ॥ विद्वान् ब्राह्मण वहाँ से दबी निधि को देखकर सारी ही लेलेवे, क्योंकि वह सब का अधिपति है ॥ ३७ ॥ राजा पृथिवी में जो पुराना गड़ा हुआ धन देखे, उसमें से आधा ब्राह्मणों को देकर आधा अपने खज़ाने में डाले ॥ ३८ ॥ पृथिवी में जो पुरानी निधियें और धातु हैं राजा उनके आधे का भागी है। क्योंकि वह भूमि का आधिपति है † ॥ ३९ ॥ चोरों से चुराए धन को पाकर राजा उसके स्वामी को, चाहे वह किसी वर्ण का हो, देदेवे, राजा स्वयं उसको बर्ते, तो चोर के पाप को प्राप्त होता है ‡ ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्माञ्श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ४१ ॥

---

* जो उसका अपना निज का धन है † क्योंकि वह धन राजा की भूमि में सुरक्षित रहा है, इसलिए वह आधे का भागी है ‡ गौत १०।४६-४७ आप० २।२६।८ याज्ञ० २।३६ विष्णु० ३।६६—६७

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः ।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वेस्वे कर्मण्यवस्थिताः॥४२॥
नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ।
न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथञ्चन ॥ ४३ ॥
यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ।
नयेत्तथाऽनुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥
सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ।
देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥
सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

धर्म्म का जाननेवाला राजा जाति के धर्म, देश के धर्म, श्रेणियों * के धर्म और कुल के धर्म्मों को देखकर अपना धर्म्म (कानून नियत करे) † ॥ ४१ ॥ अपने (जाति, देश, कुल) के कर्म्मों को करते हुए मनुष्य चाहे दूर (देशान्तर में) भी हों, तौ भी (अपने देश जाति, और कुल के) लोगों को प्यारे होते हैं, जो अपने २ कर्मों में स्थिर है॥४२॥ राजा वा इसका कोई अधिकारी स्वयं कार्य को उत्पन्न न करे, और न ही दूसरेसे सामने लाए गए व्यवहार की उपेक्षा‡ करे §॥४३॥ जैसे शिकारी लहू के गिरते जाने से (बींधेहुए) मृग की खोज लगाता है, इसी तरह राजा

* सौदागरों और खेलों की कम्पनियों † वासि० १९।७ गौत० ११।२० आप०२।१५।१ बौधा० १।२।१-८ याज्ञ० १।३६० विष्णु० ३।३
‡ किसी लिहाज़ से बेपरवाही वा उलट पलट न करे § गौत० १३।२७

अनुमान से धर्म की खोज लगाए॥४४॥व्यवहार के काम देखने में प्रवृत्त हुआ (राजा वा राजपुरुष) सत्य, अर्थ, अपना आप साक्षी देश, काल और रूप को ठीक २ देखे * ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धार्मिक द्विजों ने जो आचरण किया हुआ हो, उसको धर्म (कानून के तौर पर) निश्चय करे, यदि वह देश जाति और कुल के विरुद्ध न हो ॥ ४६ ॥

संगति—व्यवहार के सामान्य नियम कहकर अब ऋण के न देने के विषय में कहते हैं :—

अधमणार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ।
दापयेद्धानिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥ ४७ ॥
यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः ।
तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥

ऋणी से धन के साधन के लिए जब धनी (राजा को) प्रेरे, तो (राजा प्रमाणों से) सिद्ध हुए धनी के धन को ऋणी से दिलावे ॥ ४७ ॥ जिन २ उपायों से धनी अपने धन को पाए, उन २ उपायों से वश करके ऋणी से दिलावे ॥ ४८ ॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ।
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥ ४९ ॥

---

* सत्य=बनावट को दूर करके जितना अंश सचाई है उसको देखे । अर्थ=सिद्धि, इससे क्या सिद्धि है । आत्मा=मेरा किसी ओर झुकाव किसी सम्बन्ध से तो नहीं, साक्षी-किस हैसियत के हैं । देश-इस देश में रिवाज कैसा है, काल=इस समय क्या योग्य है, वा कैसे समय पर इसने लेना देना आदि किया है, रूप=व्यवहार का गौरव वा लाघव ॥

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ।
न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥५०॥
अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥ ५१ ॥

धर्म से, व्यवहार से, छल से, आचरित से, और पांचवें वल से * अपने लगाए धन को साधे ॥ ४९ ॥ जो धनी ऋणी से स्वयं अपना धन साधे, राजा उसे अपराधी न ठहराए, जब कि वह उस धन को साधता है, जो उसका अपना है † ॥ ५० ॥ (लिये) धन के विषय में इनकार करनेवाले से प्रमाण से सिद्ध हुआ धन धनी को दिलावे, और उसकी शक्तिके अनुसार कुछ दण्ड ‡ देवे॥

अपन्हवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ।
अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥
अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापन्हुते च यः ।
यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥ ५३ ॥
अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ।
सम्यक्प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥५४॥

---

* धर्म से=ऋणी के हृदय में धर्म-भाव के उभारने से, व्यवहार से=व्यवहार का वल दिखलाने से (निर्धन हो, तो उसी को कोई व्यवहार कराकर लाभ लेने से-मेधा०) छल से=विवाह पर जाना है, इत्यादि बहाने से उससे भूषण आदि लेकर बन्धक कर लेने से। आचरित से=धरना मार बैठने से, वल से, उसको रोके रखने आदि से। यह पांच उपाय अपने आप धन साधन के हैं † याज्ञ० २ । ४० विष्णु० ६ । १९ ‡ दण्ड के लिए देखो आगे १३९ ॥

असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ।
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत्॥५५॥

(इसका धन) दो, ऐसा कहने पर जब सभा में (मैंने कोई नहीं देना है,इसप्रकार कोई)ऋणी इनकार कर देवे,तो अभियोक्ता (नालिश करनेवाला) उस स्थान के साक्षी * बतलाए, वा और भी साधन (पत्र आदि) बतलाए॥ ५२ ॥ जो (ऋण देने के) देश में अनुपस्थित को (साक्षी) † बतलाता है, और बयान देकर उससे इनकारी होजाता है, और जो अगली पिछली परस्पर विरुद्ध बातों को नहीं समझता है ‡ ॥ ५३ ॥ वा जो कुछ कहना है, कहकर फिर उस से फिर जाता है, वा जो यथार्थ कही बात को (क्यों तूने रात को बिना साक्षी के दिया इत्यादि) पूछने पर समाधान नहीं कर सक्ता ॥ ५४॥ वा भाषण के अयोग्य (निर्जन आदि) स्थान में साक्षियों के साथ अलग बात चीत करे (वा दावे के स्थिर करने के लिए वा जिरह के तौर पर) चुन २ कर पूछे प्रश्न को न चाहे, वा जो सभा से निकल जाए॥ ५५ ॥

ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ।
न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥ ५६ ॥
साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः ।
धर्मस्थःकारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥५७॥

* देश्यं = साक्षी जो उस स्थान में उपस्थित हो, (कुल्लू०राघ) देश्यं, के स्थान मेधा०, गोविन्द, नारा०,नन्द के अनुसार 'देशं,पाठ है। अर्थ जहां दिया है, वह स्थान † मेधा०, गोवि०, नारा०,नन्द के अनुसार अदेश्यं के स्थान 'अदेशं, पाठ है । न ठीक स्थान–अर्थात जहां ऋणी गया ही न हो, वा एकान्त आदि ‡ ५३–५६ याज्ञ०२।१६

वा कहो ऐसा कहने पर जो कुछ न कहे, वा जो कहे हुए को सिद्ध न करे, वा जो पहले पिछले * को न जाने, वह उस अर्थ से हीन होजाता है(हरजाता है)॥५६॥मेरे साक्षी हैं, ऐसा कहने पर'वतला' कहा हुआ जो न वतलाए,धर्म में स्थित माड्विवाक इन कारणों से उस (धनी) को भी हीन वतलाए ॥ ५७ ॥

अभियोक्ता नचेद्ब्रूयाद्बध्योदण्ड्यश्च धर्मतः ।
नचेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ॥ ५८ ॥
योयावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥५९॥

अर्थी यदि (प्रत्यर्थी से उत्तर पाकर फिर) कुछ भी न कहे, तो वह धर्म से ताड़ना वा दण्ड के योग्य † होता है, और (प्रत्यर्थी) यदि तीन पक्ष के अन्दर न कहे, तो वह धर्मानुसार (मुकदमा) हार देता है ॥ ५८ ॥ (प्रत्यर्थी) जो जितने धन से इनकार करता है, और (अर्थी) जो जितने (धन) के विषय में झूठ कहता है, उन दोनों अधर्मज्ञों को उससे दुगुना दण्ड देना चाहिए ‡ ॥ ५९ ॥

पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा ।
त्र्यवरः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥
यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ।
तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः ॥६१॥

* पहले पिछले को=यहां क्या साधन है। और क्या साध्य है इस को (कुल्लू०राघ०) यह पहले कहना चाहिए, यह पीछे (नारा०,नन्द)
† भारी दोष में ताड़ना के योग्य, हलके में दण्डके योग्य ‡ याज्ञ०२।५९

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः ।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि॥६२॥
आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥

(सभा में) बुलाकर पूछा हुआ (ऋणी) यदि इन्कारी होता है तो धनी ने राजा के (अधिकारी) ब्राह्मणों के सामने * न्यूनातिन्यून तीन साक्षियों द्वारा सिद्ध करना चाहिए ॥ ६० ॥ धनियों ने व्यवहारों के विषय में जैसे साक्षी बनाने चाहियें, वैसे बतलाऊंगा, और जैसे उन्होंने सत्य कहना चाहिए, (वह भी कहूंगा) † ॥६१॥ अर्थी से बतलाए, गृहस्थ, पुत्रोंवाले, उस देश के वासी क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र जाति के साक्षी होने योग्य होते हैं, न कि जो कोई विना आपत्तिकाल के ॥ ६२ ॥ सब वर्णों में सच्चे पुरुष जो अपने धर्म के जाननेवाले हैं और लालची नहीं, वह कार्यों में साक्षी बनाने चाहिएं, इनसे उलटों को छोड़ दे ॥ ६३ ॥

नार्थसंबन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ।
न दृष्टदोषाः कर्त्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः॥६४॥
न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ।
न श्रोत्रियो न लिंगस्थो न संगेभ्योविनिर्गतः॥६५॥

* अथवा राजा और ब्राह्मणों के सामने यह अर्थ भी होसक्ता है † ६१—७२ वासि० १६।२८–३० गौतम १३।१—४ आप० २।२९-७ बौधा० १ । १९–१३ याज्ञ० २ । ६८–७२ विष्णु० ८। ७—९ ॥ अर्थात् लड़ाई, झगड़े आदि में सभी साक्षी होसक्ते हैं, देखो आगे ६९ ।

नाध्यधीनो न वक्तव्यो नदस्युर्न विकर्मकृत ।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥६६॥
नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो नक्षुत्तृष्णोपपीडितः ।
नश्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥६७॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥६८॥
अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ।
अन्तर्वेश्मन्यरण्येवा शरीरस्यापि चात्यये ॥६९॥
स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा ।
शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥७०॥

(साक्षी) न अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाले * बनाने चाहियें, न मित्र, न साथी † न वैरी, न वह जिनके दोष (पहली साक्षियों में) देखे गये हैं, न रोग से पीड़ित, न जिन पर दोष लगा हुआ है ‡ ॥ ६४ ॥ साक्षी न राजा को बनाना चाहिए (उसको साक्षी की तरह पूछना अयोग्य है) न कारीगर, न नट (अपने २ काम में व्यग्र रहने से) न वेद पाठी, न ब्रह्मचारी न संगों से अलग हुआ (=संन्यासी) (अपने २ काम में व्यग्र होने से और साक्षी की तरह पूछने के अयोग्य होने से) ॥ ६५ ॥ न अत्यन्त पराधीन (गर्भ दास) न (लोगों में) निन्दित, न घातक, न खोटे कर्म करनेवाला, न बूढ़ा, न बच्चा, न अकेला, न अन्त्यज (धर्म के न जानने से) न हीन इन्द्रियों वाला (अन्धा, बहिरा, आदि-

* मुकद्दमे से जिनका सम्बन्ध है † नौकर आदि ‡ पातकी समझे गये हैं

पूरा प्रत्यक्ष न होने से) ॥ ६६ ॥ न (पुत्र शोकादि से) पीड़ित न (मद-) मत्त, न पागल, न थकावट से पीड़ित, न काम से पीड़ित न क्रुद्ध, न चोर (बुद्धि ठिकाने न होने से) ॥ ६७ ॥ स्त्रियों की साक्षी स्त्रियें हों, द्विजों के अपने जैसे द्विज, शूद्रों के श्रेष्ठ शूद्र हों और अन्त्यजों के श्रेष्ठ अन्त्यज हों * ॥ ६८ ॥ घर के अन्दर वा जंगल में (उपद्रव हुआ हो तब), वा प्राण के विनाश में, जो कोई भी देखनेवाला है वह झगड़नेवालों का साक्षी होसकता है ॥ ६९ ॥ और साक्षी के न होने पर स्त्री, बाल, बूढ़ा शिष्य, बन्धु, दास और नौकर को भी साक्षी कर लेना चाहिये ॥ ७० ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा ।
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥
बहुत्वंपरिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥७३॥
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिद्ध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥७४॥
साक्षी दृष्ट श्रुतादन्यद् विब्रुवन्नार्य संसदि ।
अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥७५॥

बाल, बूढ़े, रोगी और अस्थिर मनवाले (मत्त और पागल) यह साक्ष्य में यदि झूठ बोलें, तो इनकी वाणी स्थिर नहीं होती है,

* वासि०१६ । ३०॥

उसको समझे ॥७१॥ सब प्रकार के साहसों (किसी का घर जला देने आदि) में चोरी और (स्त्री के साथ) धक्का, करने में वाणी और दण्ड की कठोरता में साक्षियों को (गृहस्थ हों, पुत्रों वाले हों इत्यादि रूप से) न परखे ॥७२॥साक्षियों के विरोध में (राजा) बहुत्व (जिधर बहुत हों) को स्वीकार करे, जब (दोनों ओर) बराबर हों, तो गुणों में जो ऊंचे हैं उनको, गुणियों के विरोध में द्विजोत्तमों* को † (स्वीकार करे)॥७३॥सामने देखने और सुनने से साक्षीपन सिद्ध होता है, उसमें सत्य कहता हुआ साक्षी धर्म और अर्थ से हीन नहीं होता है ‡ ॥ ७४ ॥ देखे, सुने के विरुद्ध आर्य सभा § में कहता हुआ, साक्षी अधोमुख हुआ नरकको जाता है, और परलोक में स्वर्ग से हीन होता है ¶ ७५ ॥

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किञ्चन ।
पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथा दृष्टं यथाश्रुतम् ॥७६॥
एकोऽलुब्धस्तु साक्षीस्याद्बहूव्यः शुच्योपि न स्त्रियः।
स्त्रीबुद्धेर स्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः॥७७॥
स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ।
ततोयदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७८ ॥

---

* द्विजों में उत्तम=ब्राह्मण (गोवि०, नारा०) धार्मिक क्रियाओं के करनेवाले द्विज (कुल्लू० राघ०) † याज्ञ० २। ७८, ८० विष्णु० ८। ३९ ‡ ७४-७५ वासि० १६-३६ गौत० १३-७ आप० २। २९। ९-१० बौधा० १। १९। १४-१५ विष्णु० ८। १३—१४। अर्थ से हीन नहीं होता है=उसे दण्ड नहीं मिलता।(नारा० कुल्लू०)§ आर्य सभा= न्याय सभा (मेधा०) ब्राह्मणों की सभा (गोवि०) ¶ स्वर्ग जो दूसरे पुण्यों से कमाया है उससे भी हीन होजाता है

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थि प्रत्यर्थि सन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेनसान्त्वयन्॥७९॥

(पत्र में साक्षी के तौर पर) न लिखा हुआ भी जहां जिसने कुछ देखा वा सुना हो, वह उस विषय में पूछा हुआ उस बात को बतलाए, जैसा उस ने देखा वा सुना है॥७६॥ लोभ से रहित पुरुष अकेला भी साक्षी होसकता है, पर स्त्रियें बहुत भी जो पवित्र भी हों नहीं, क्योंकि स्त्री की बुद्धि स्थिर नहीं होती, तथा और भी, जो दोषों से युक्त पुरुष हैं (वह साक्षी न हों)॥७७॥ (साक्षी) निरा स्वभावतः * जो कुछ कहे, वह व्यवहार निर्णय के लिए स्वीकार करने योग्य होता है, इससे भिन्न जो कुछ इधर उधर की बातें कहे, वह धर्म (निर्णय) के लिए निष्प्रयोजन है, इसलिये स्वीकार करने योग्य नहीं है॥७८॥ सभा के अन्दर आए साक्षियों को प्राड्विवाक अर्थी प्रत्यर्थी के सामने प्रिय बोलता हुआ इस विधि से पूछे † ॥७९॥

यदद्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः।
तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता॥८०॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥ ८१॥
साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम्।
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम्॥८२॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते।

---

* अर्थात् बिन विचारे-अटपट, न कि सोच२ कर, वा घबराकर।
† गौत ८।५

तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥८३॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणांसाक्षिणमुत्तमम् ॥८४॥
मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः॥८५॥
द्यौर्भूमिरापोहृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः सन्ध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम्॥८६॥

जो इस कार्य में इन दोनों (अर्थी प्रत्यर्थी) की आपस की चेष्टा तुम जानते हो, वह सब सचाई से कहो, क्योंकि तुम्हारी इस में साक्षिता है * ॥ ८० ॥ साक्षी अपनी साक्षिता में सत्य बोलता हुआ (मरकर) उत्तम लोकों को,और यहां अत्युत्तम यश को प्राप्त होता है,यह वाणी(सचाई)ब्रह्म(वेद वा ब्रह्म) से पूजित है ॥ ८१ ॥ साक्षिता में झूठ बोलने वाला सौ जन्म तक वरुण के फांसों † से बेवस बांधा जाता है, इसलिये साक्षिता ठीक २ कहे ॥ ८२ ॥ साक्षी सत्य से पवित्र होता है, धर्म सत्य से बढ़ता है, इसलिये हरएक वर्ण के विषय में साक्षियों को सत्य ही बोलना चाहिये ॥ ८३ ॥ आत्मा ही आत्मा का साक्षी है,

---

* ८०-१०१ वासि १६ । ३२—३४ गौत ८ । १४-२२ आप २ । २९ । ९—१० बौधा० १ । १९ । ९—१२ याज्ञ २ । ७३-७५ विष्णु ८ । १९—३७ † झूठों का वरुण की फांसों से बांधा जाना अथर्व ४ । १६ । ६ में कहा है । वरुण की फांसें भयंकर सर्प-रज्जु वा जलचर (मेधा०) सर्प रज्जु वा जलोदर (कुल्लू०) जलोदर रोग का वरुण के विरुद्ध चलने से विशेष सम्बन्ध ऋग्वेद ७ । ८९ । १ और ऐतरेय ब्राह्मण ७ । १५ शुनःशेप की कथा में आया है

यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥९६॥

वैवस्वत यम देवता जो यह तेरे हृदय में स्थित है, उसके साथ यदि तेरा (झूठ बोलने से) विवाद नहीं है, तो मत गंगा को जा मत कुरुक्षेत्र को जा * ॥ ९२ ॥ वह (शरीर से) नंगा, सिर से मूंडा हुआ, (आंखों से) अन्धा हुआ, भूख प्यास से पीड़ित हो, (हाथ में) कपाल लिये, भिक्षुक बन, शत्रु के घर जाए, जो झूठी साक्षिता देवे ॥ ९३ ॥ जो धर्म निर्णय के लिये पूछा हुआ झूठ बात बतलाए, वह पापी महा अन्धकार में नीचे सिर किये नरक को जाए ॥ ९४ ॥ जो सभा में गया हुआ सचाई से हीन बिन देखी बात कहता है, वह मनुष्य अन्धे की तरह कांटों समेत मछलियें खाता है † ॥ ९५ ॥ जिस के कहते हुए उसका (सच झूठ) जानने वाला आत्मा शंका नहीं करता है, देवता उनसे बढ़कर किसी को श्रेष्ठ नहीं मानते ॥ ९६ ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।
तावतः संख्यया तस्मिन्शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥९७॥
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ९८ ॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥९९॥

गौ आदि पर हाथ धराकर पूछे (नन्द०) * गंगा और कुरुक्षेत्र में जाना—दण्ड भोगने के लिये, वा प्रायश्चित्त करने के लिये संभावित हो सका है, पर मनु में आगे कहीं कुछ नहीं लिखा † जैसे कांटों समेत मछली खाने से सुख आपाततः है, दुःख ही अधिक होता है, इसी तरह रुपये के लोभ आदि से झूठी गवाही देने वाला दुःख ही अधिक पाता है ॥

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ।
अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥
एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥ १०१ ॥
गोरक्षकान् वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥१०२॥

जिस साक्षिता में झूठ बोलता हुआ, जितने बान्धवों को मारता है, * हे सौम्य ! उसमें क्रमशः उतनों को गिनती से सुन ॥ ९७ ॥ पशुओं के (विषय में) झूठ (बोलने) में पांच (बान्धवों) को मारता है, गौ के झूठ में दस को मारता है, घोड़े के झूठ में सौ को मारता है, पुरुष † के झूठ में सहस्र को मारता है ॥ ९८॥ सुवर्ण के लिये झूठ बोलता हुआ उत्पन्न हुओं और न उत्पन्न हुओं को मारता है, भूमि के लिए झूठ बोलता हुआ सब को ‡ मारता है इसलिये भूमि के विषय में झूठ मत बोल ॥ ९९ ॥ (तालाब, बावड़ी आदि से लेने योग्य) जलों में, स्त्रियों के मैथुन रूपी भोग में, जल से उत्पन्न होने वाले रत्नों (मोती आदि), और पत्थरमय रत्नों (हीरा आदि) में भूमि की तरह (पाप) कहते हैं ॥ १०० ॥ झूठ बोलने में इन सारे दोषों को देखकर तू जैसा सुना जैसा देखा है, वह

---

* मारता है=नरक में डालता है, (मेधा०, गोवि०, कुल्लू०, नारा०) अथवा मारने के पाप का भागी होता है (मेधा०, कुल्लू०, ९८—९९ पर) मारता है=स्वर्ग से गिराता है (राघ०)

† पुरुष=दास, यह दास है कि नहीं (नन्द०) ‡ सब को=सब प्राणधारियों को (गोवि०,कुल्लू) सहस्र से अधिक को (नारा०,राघ०)

सब ठीक२ कहो ॥ १०१ ॥ गौओं की रक्षा से, वाणिज से, कारी-गरी से, नटपन से, दासपन से, और ब्याज से जीविका करनेवाले ब्राह्मणों को भी शूद्र की नाईं आचरण करे (शूद्रवत् पूछे) * ॥

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ।
न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम्॥१०३
शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः ।
तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥१०४॥
वाग्देवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ।
अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥१०५॥
कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि ।
उदित्यृचा वा वारुण्या तृचेनाब्दैवतेन वा ॥१०६ ॥

इस (साक्षिता) को धर्म (=दया आदि) हेतु से व्यवहारों में जान बूझकर भी अन्यथा कहता हुआ मनुष्य स्वर्ग लोक से नहीं गिरता है, क्योंकि ऐसी (शुभ संकल्प से बोली गई) वाणी को दैवी कहते हैं † ॥ १०३ ॥ (कहां अन्यथा कहना पाप नहीं, सो दिखलाते हैं) जहां सत्य कहने में शूद्र, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मणों का वध होता है ‡ वहां झूठ बोल देना चाहिए, क्योंकि वह सत्य

* वासि० ३।१।

† १०३-१०४ वासि० १६।३६ गौत० १३।२४—२५ याज्ञ०२।८ विष्णु० ८।१५ ‡ किसी धार्मिक से जब भूल से कोई वध होजाए, उसके बचाने में यह नियम है, न कि पापी के बचाने में, जैसा कि गौतम ने कहा है-'नानृतवदने दोषो तज्जीवनं चेत्तदधीनं न तु पापीयसो जीवनम्, =झूठ बोलने में दोष नहीं, यदि उसका जीवन इस के अधीन हो, पर पापी का जीवन नहीं,

से बढ़कर है ॥१०४॥ उस झूठ बोलने के पाप का उत्तम प्रायश्चित्त करते हुए वह (साक्षी) वाग्देवता वाले मन्त्रों से चरु के साथ सरस्वती याग करें * ॥ १०५॥ कूष्माण्ड मन्त्रों से, वा "उदु" इस वारुणी ऋचा से, वा जल देवतवाले तृच [तीन ऋचा के सूक्त] से यथाविधि अग्नि में घृत होमे † ॥ १०६ ॥

त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥ १०७ ॥
यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥१०८ ॥
असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ।
अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥१०९॥
महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ।
वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैजवने नृपे ॥ ११० ॥
न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।
वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १११ ॥
कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥११२ ॥

एक नीरोग पुरुष यदि (सम्मन मिलने से) तीन पक्ष के

---

* १०५-१०६ बौधा० ३।१।११।१६। याज्ञ० २।८३ विष्णु० ८।१६

† कूष्माण्ड मन्त्र तैत्तिरीय आर० १०। ३-५ " उदु " वारुणी ऋचा " उदुत्तमं वरुण " ऋग्० १।२४।१५, जल देवता वाला तृच 'आपोहिष्ठा:" इत्यादि ऋग्वेद १०। ९। १-३ ।

अन्दर साक्षिता न कहे, तो (धनी को) वह सारा धन देवे, और उस सारे का दसवां भाग (राजा को दण्ड देवे)* ॥१०७॥ जिस गवाही दे चुके साक्षी के सात दिन के अन्दर रोग, वा अग्नि (घर का दाह आदि) वा (निकट के) ज्ञाति (पुत्रादि) का मरना देखा जाए, उससे ऋण और दण्ड दिलाना चाहिए † ॥ १०८ ॥ जिनमें साक्षी नहीं है, ऐसे व्यवहारों में परस्पर झगड़ते हुओं की असली सचाई का पता न लगे, तो शपथ ‡ से भी पता लगाए § ॥ १०९ ॥ महर्षि और देवताओं ने (संदिग्ध) कार्य (के निर्णय) के लिए शपथें की हैं; वसिष्ठ ने भी पैजवन (पिजवन के पुत्र सुदास्) राजा के सामने शपथ की थी ॥ ११० ॥ बुद्धिमान् पुरुष बहुत छोटे भी काम में ¶ झूठी शपथें न करे, क्योंकि झूठी शपथ करनेवाला लोक परलोक में (निन्दा और नरक की प्राप्ति से) नाश को प्राप्त होता है ॥ १११ ॥ स्त्रियों के विषय में

---

* याज्ञ० २।७६ † याज्ञ० २।११३ अर्थात् घोर रोग, वा घर आदि का दाह वा पुत्रादि का मरण उसकी झूठी गवाही का चिन्ह है, जब एक सच्चे पुरुष के विरुद्ध झूठ बोलकर उसके हृदय को भारी दुःख पहुंचाया है, तो उसकी आह ने उस के किये उपद्रव का फल दिलाया है, यह अभिप्राय है। (यह कहीं २ तो सच भी होता है, पर यह निःसन्देह इसी का फल हुआ है, ऐसा जानना मनुष्य की बुद्धि से परे है, इस लिए यह निर्णायक नहीं होसक्ता-संपादक) ‡ शपथ=सौगन्द तथा और दूसरे दिव्य उपाय जो आगे कहेंगे (मेधा०) § गौत० १३। १२-१३ विष्णु० ९।२-९ ¶ क्योंकि बडे भारी कामों में झूठी शपथका दोष भी भारी होता है। पर यदि 'स्वल्पे ऽप्यर्थे' के स्थान 'स्वल्पे कार्ये' पाठ हो, तो यह अभिप्राय होगा, बहुत छोटी बातों में वृथा शपथ=यूं ही सुगन्ध न खा लिया करे, यह अभिप्राय राघवानन्द

विवाहों में, गौओं के चारे में, इन्धन में, और ब्राह्मण की रक्षा में शपथ में पातक नहीं है * ॥ ११२ ॥

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।
गोवीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥ ११३ ॥
अग्निं वाऽऽहारये देनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥११४ ॥
यमिद्धो नदहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।
न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५॥
वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा ।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतःस्पशः ॥११६॥

ब्राह्मण को सचाई की, क्षत्रिय को घोड़े और शस्त्रों की, वैश्य को गौ वीज और सोने की † और शूद्र को सारे पातकों की शपथ देवे ॥ ११३ ॥ वा अग्नि इससे (शूद्र से) उठवाए, जलों में इसे डुबाए, वा अलग २ इसे पुत्र और स्त्री के सिर पर हाथ धराए ॥ ११४ ॥ (ऐसा करने पर) जिसको जलता अग्नि जला नहीं देता, जल डुबा नहीं देते, न जल्दी (पुत्र स्त्री के

ने लिया है *बहुत स्त्रियें हों, तो उनके चित्त को प्रसन्न रखने के लिए तूही मेरी प्यारी है, इत्यादि कहना, विवाह में अर्थात् तेरे सिवाय और नहीं विवाहूंगा, गौओं के लिये घास आदि लेने में और हवन के लिए लकड़ी लेने में, (नारा०) (सच तो यह है, कि झूठ सर्वत्र झूठ ही है—सम्पादक)

† क्षत्रिय और वैश्य को इन वस्तुओं का स्पर्श कराए, और कहलावे कि यह हमारे निष्फल हों, यदि हम झूठ बोलें. (मेधा०, गोवि० कुल्लू)

वियोग की) पीड़ा को प्राप्त होता है, उसे शपथ में शुद्ध समझना चाहिए ॥ ११५ ॥ जैसा कि वत्स (ऋषि) को जब उसके छोटे (वैमात्र) भाई ने दोष लगाया (कि तू ब्राह्मण नहीं, तू शूद्रा का पुत्र है) तो (वह यह कहकर कि यदि मैं सत्य कहता हूं, कि मैं ब्राह्मण हूं, तो अग्नि मुझे नहीं जलाएगा, अग्नि में से निकल गया और) अग्नि ने—जो कि जगत् का गुप्तचर * है उसकी सचाई से उसका रोम भी न जलाया ॥ ११६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत ॥†॥११७॥
लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात्कामात् क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते॥११८॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ११९ ॥

जिस २ विवाद में (साक्षियों ने) झूठी साक्षिता दी है, यह निश्चय होजाए,तो वह २ कार्य फिर लौटाया जाए, किया हुआ भी न किया हुआ हो†॥११७॥ लोभ से, घबराहट से, भय से, मित्रता से, काम से, क्रोध और बालकपन से साक्षिता झूठी कही जाती जाती है ॥११८॥ इन (लोभादि) में से किसी एक निमित्त के होने पर जो साक्षिता झूठ कहे, उसके दण्डविशेष क्रमशः कहूंगा ‡ ॥

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्र्यात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥१२०॥

* गुप्तचर = लोगों के शुभ अशुभ का जाननेवाला है ॥ † विष्णु० ८ । ४ दण्ड दिया हुआ भी लौटा दिया जाए, (गोवि०कुल्लू०,राघ०)
‡ ११९-१२३ याज्ञ० २ । ८१

कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥१२१॥
एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान् मनीषिभिः ।
धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्म नियमाय च ॥ १२२ ॥

लोभ से हजार पण * मोह से प्रथम साहस (२५० पण) भय से दो मध्यम साहस (हजार पण) मैत्री से चौगुना प्रथम साहस (हजार पण) दण्ड देवे ॥ १२० ॥ काम से प्रथम साहस दस गुना (=२५०×१०=२५०० पण) क्रोध से तिगुना उत्तम साहस (१०००×३ = ३००० पण) अज्ञान से पूरे दो सौ पण और बालकपन से सौ पण दण्ड देवे ॥ १२१ ॥ झूठी साक्षिता में बुद्धिमानों से कहे यह दण्ड बतलाए हैं, ताकि सत्य का लोप न हो, और झूठ रुके ॥ १२२ ॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः ।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ १२३ ॥
दश स्थानानि दण्डस्य मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् ।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥१२४॥
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥ १२५ ॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्॥१२६॥

* पण उस समय का पैसा था, प्रथम साहस २५० पण, मध्यम साहस ५०० पण, उत्तम साहस १००० पण देखो आगे १३८ ॥

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम् ।
अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१२७॥
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥१२८॥
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।
तृतीयं धनदण्डं तु बधदण्डमतः परम् ॥ १२९ ॥
बधेनापि यदात्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ।
तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

धार्मिक राजा झूठी गवाही देनेवाले तीन वर्णों को दण्ड देकर निकालदे, पर ब्राह्मण को निरा निकालही दे * ॥१२३॥ स्वायम्भुव मनु ने दण्ड के दस स्थान बतलाए हैं, जो तीनों वर्णों के विषय में हैं, पर ब्राह्मण बिना किसी क्षति के (देश से) निकलजाए † ॥ १२४ ॥ (वह दस यह हैं) उपस्थ, पेट, जीभ, दोनों हाथ, पांचवें दोनों पाओं, नेत्र, नासा, दोनों कान, धन और सारा देह (छोटे अपराधों में धन दण्ड, और बड़े अपराधोंमें इन २ अंगों का काटना वा फांसी) ॥ १२५ ॥ अभिप्राय (निश्चय) ‡ (अपराध का) स्थान (ग्राम जंगल आदि), अपराध

* 'विवासयेत्' निरा निकालही दे, (कुल्लू०, नारा०, राघ०, नन्द) वस्त्र उतरवा कर नगा करदे (गोवि०) नंगा करदे, और घर से निकालदे (मेधा०) † गौतम १२ । ४६-४७ आप० २ । २७ ; ८ । १७—१९ विष्णु० ५ । २-८ ‡ अनुबन्ध=अभिप्राय (गोवि०) किसी अपराध को बार २ करना (कुल्लू०, नारा०) नन्द 'अनुबन्ध' के स्थान 'अपराध' और 'सारापराधौ' के स्थान 'सारां सारौ =बल दुर्बलता' पढ़ता है,

का काल (रात्रि आदि) (अपराधी के धन और देह का) सामर्थ्य और अपराध (के गौरवलाघव) को देखकर दण्डनीयों को दण्ड देवे *॥१२६॥(सारी बातों को देखे बिना) अधर्म से दण्ड देना लोक में (जीते जी) यश का नाशक है और (मरे पीछे) कीर्त्ति का नाशक है, और परलोक में स्वर्ग का विरोधी है, इसलिये उसे त्यागे † ॥ १२७॥ अदण्डनीयों को दण्ड देता हुआ और दण्डनीयों को दण्ड न देता हुआ राजा बड़े अपयश को प्राप्त होता है, और नरक को जाता है ॥ १२८ ॥ पहले पहल वाणी का दण्ड (झिड़क) देवे, इसके पीछे (फिर अपराध करे तो) धिक्-दण्ड (लानत, फिटकार) देवे, (फिर करे तो) तीसरा धन दण्ड देवे, इसके पीछे (फ़िर करे तो) वध दण्ड देवे (बेत लगावे वा अंग काट दे) ॥ १२९ ॥ जब वध से भी इनको रोक न सके, तो इन पर सारे दण्ड लगावे‡ ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १३१ ॥

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ १३३॥

सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ १३४ ॥

---

* गौत० १२ । ५१ याज्ञ० १ । ३६७ † १२७—१२८ याज्ञ० १।३५६ ‡ विष्णु० १९ । ४३ ‡ १२९–१३० याज्ञ० १ । ३६६ ॥

(क्रय विक्रयादि-) लोक व्यवहार के लिए तांबे, चान्दी, सोने की जो संज्ञा लोक में प्रसिद्ध हैं, वह (दण्डादि के उपयोग के लिए) पूर्णतया कहूंगा * ॥ १३१ ॥ रौशनदान के अन्दर से आती सूर्य की रश्मियों में जो सूक्ष्म रज (बारीक ज़र्रे) दीखते हैं, प्रमाणों में से उस सब से पहले प्रमाण (माप) को त्रसरेणु कहते हैं ॥ १३२ ॥ आठ त्रसरेणुओं की परिमाण में एक लिक्षा जाननी चाहिए, तीन लिक्षा एक राई, तीन राई, एक श्वेत सरसों ॥ १३३ ॥ छः सरसों का एक मध्य (न बहुत मोटा, न बहुत छोटा) यव, तीन जौ की एक रत्ती, पांच रत्ती का एक मासा, सोलह मासे का एक सुवर्ण (तोला)

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥१३५॥
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।
कार्षापणं तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकःपणः ॥१३६॥
धरणानि दश ज्ञेयःशतमानस्तु राजतः ।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तुप्रमाणतः ॥१३७॥
पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥१३८॥

चार सुवर्ण का पल (छटांक), दस पल का धरण, बराबर की दो रत्तियें इकट्ठी तोली हुई एक चान्दी का मासा होता है ॥ १३५ ॥ सोलह मासे का चान्दी का धरण और पुराण

* १३१—१३८ याज्ञ० १ । ३६१-३६५ विष्णु० ४ । ०—१४

होता है, तांबे का कर्ष * कार्षापण वा पण जानो ॥ १३६ ॥ दस धरण का चांदी का एक शतमान होता है, प्रमाण से चार सुवर्ण एक निष्क (मोहर) होता है ॥ १३७ ॥ दो सौ पचास पणों का प्रथम साहस, पांच सौ का मध्यम साहस और हजार का उत्तम साहस कहा है ॥ १३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पंचकं शतमर्हति ।
अपह्नवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥ १३९ ॥

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद् वित्तविवर्धनीम् ।
अशीतभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥

देने योग्य ऋण को (ऋणी) स्वीकार करले, तो पांच (पण) सैकड़ा दण्ड देने योग्य है, इन्कार करे, (और प्रमाणित हो जाए) तो इससे दुगुना (दण्ड) यह मनु की आज्ञा है † ॥ १३९ ॥ धन के बढ़ाने वाली व्याज, जो वसिष्ठ ‡ ने बतलाई है, वह लगाए, अर्थात् व्याजी सौ पर अस्सीवां भाग १।) सैकड़ा लेवे § ॥

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ।
द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी ॥ १४१ ॥

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शतं समम् ।
मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १४२ ॥

नत्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ।
नचाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्तिनविक्रयः ॥ १४३ ॥

* कर्ष = १६ मासे = ८० रत्तियें । † याज्ञ० २ । ४२ विष्णु० ६। २०-२१ ‡ देखो वसिष्ठ धर्म शास्त्र २।५१ § याज्ञ०२।३७ गौत० १२। २९ यह नियम बन्धक वाले ऋण के विषय में है, यह १४१ पर नारा० राघ० और नन्द० ने लिखा है

नभोक्तव्योबलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ।
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथाभवेत् ॥ १४४ ॥
आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ।
अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥ १४५ ॥

अथवा भलों की मर्यादा जान दो (पण) सैंकड़ा लेवे; क्योंकि दो (पण) सैंकड़ा लेता हुआ धनी (ब्याज लेने में) पापी नहीं होता है * ॥ १४१ ॥ (ब्राह्मण आदि) वर्णों से क्रमशः बराबर दो, तीन, चार, पांच मासिक वृद्धि लेवे ¶ ॥ १४२ ॥ फल देने वाले बन्धक (गौ, भूमि, दास, आदि) में ब्याज की वृद्धि (धनीको) नहीं मिलती, और लम्बी देर के पीछे भी बन्धक का न दान न विक्रय होता है ‡ ॥ १४३ ॥ बन्धक धक्के से नहीं भोगना चाहिए, § यदि भोगे तो ब्याज छोड़ देवे, (अथवा बन्धक रक्खे जाने के समय जो उसका मूल्य था उस) मूल्य से उस को सन्तुष्ट करे, अन्यथा बन्धक का चोर होगा ¶ ॥ १४४ ॥ बन्धक और अमानत दोनों दीर्घकाल तक पड़े हुए भी समय को नहीं लंघ जाते, (जब स्वामी चाहे तभी) देने होते हैं ‖ ॥ १४५ ॥

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।
धेनुरुष्ट्रोवहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ १४६ ॥

---

*१४१-१४२वासि०२।४८ याज्ञ०२।३७ विष्णु०६।२ ¶ यह नियम नारा०, राघ० नन्द०के अनुसार बन्धक रहित ऋणके विषय में है। मेधा०, गोवि० के अनुसार धनी का निर्वाह थोड़ी ब्याज पर न चले, तो इतनी ले सकता है, ‡ गौत० १२।३२ विष्णु० ६।५ § यह कपड़े आदि जिनका भोगने से मूल्य घट जाता है। उनके विषय में है, ¶ याज्ञ० २।५९ विष्णु० ६।५ ‖ याज्ञ० २ ५८ विष्णु० ६।७-८।

यत्किंचिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ।
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥ १४७ ॥
अजडश्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते ।
भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद् द्रव्यमर्हति ॥ १४८ ॥

धेनु, ऊंट, सवारी का घोड़ा, और जो सिधाने योग्य (बैल,आदि सिधाकर) काम में लगाया गया है, इन [वस्तुओं] को जब कोई मित्रता से भोग रहा हो, तो यह कभी खोई नहीं जातीं*॥१४६॥ (स्वामी के) सामने दूसरों से भोगी जाती हुई जिस किसी वस्तु को स्वामी बराबर दस वर्ष चुपचाप देखता रहता है (भोगने वाले को रोकता नहीं) तो वह उस वस्तु को (दस वर्ष के पीछे) नहीं पा सकता है † ॥१४७॥ (स्वामी) यदि न पागल है, न बालक है और उसकी आंखों के सामने वस्तु भोगी जारही है, तो व्यवहार से वह वस्तु उसकी नहीं रही,भोगनेवाला उस वस्तुको पाने योग्य है

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधी स्त्रियः ।
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥ १४९ ॥
यः स्वामिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः ।
तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥१५०॥

बन्धक, (ग्राम आदि की) सीमा, बालक का धन, खुली अमानत, और बन्द अमानत, स्त्रियें (दासी आदि), राजा का धन और श्रोत्रिय का धन यह भोग से खोए नहीं जाते (दस वर्ष पीछे भी

* अगले श्लोक में दस वर्ष पीछे भोग से स्वत्व का नाश कहेंगे वह नियम मित्रता से भोगी जाती वस्तुओं में नहीं लगे, यह अभिप्रेत है। † १४७-१४८ वासि० १६।१६-१७ गौत० १२।३७ याज्ञ० २। २४

स्वामी ले सकता है * ॥ १४९ ॥ जो मूर्ख (स्वामी की) अनुज्ञा बिना (चोरी २) बन्धक को भोगता है, उसे उस भोग के बदले में आधी ब्याज छोड़नी चाहिये † ॥ १५० ॥

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता ।
धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥१५१॥

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिध्यति ।
कुसीदपथमाहुस्तं पंचकं शतमर्हति ॥ १५२ ॥

नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् ।
चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥१५३॥

ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत् पुनः क्रियाम् ।
स दत्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥१५४॥

एकबारगी ली ब्याज (मूल से) दुगुने से बढ़ नहीं जाती, अनाज, फल, बोझ ढोनेवाले पशुओं के विषय में पांच गुने से बढ़ नहीं जाती ॥ १५१ ॥ अधिक (ब्याज) जो ठहराई मर्यादा से बढ़कर है, वह (व्यवहार से) सिद्ध नहीं होती, इसे बहुत ब्याज खानेवालों का मार्ग कहते हैं, (अधिक से अधिक) पांच सैकड़े पीछे योग्य है ॥ १५२ ॥ वर्ष उलांघकर ब्याज न ले, न (शास्त्र में) न बतलाई (पांच से अधिक) ले, तथा चक्र की ब्याज, काल की ब्याज, कारित (ब्याज) और कायिक (ब्याज) न लेवे ‡ ॥१५३॥ जो (ऋणी) ऋण देने के असमर्थ हुआ फिर लेख (तमस्सुक) कर देना चाहे, वह पिछली ब्याज धनी को देकर लेख को बदल ले (नया कर दे) ॥ १५४ ॥

---

* वासि० १६ । १८ गौत० १२ । ३८—३९ याज्ञ० २ । २१ † जो धक्के से भोगता है, उसे सारी ब्याज छोड़ देनी चाहिए, यह पूर्व कहआए हैं ‡ चक्रवृद्धि=ब्याज की ब्याज । काल वृद्धि=दुगुना आजाने के पीछे की ब्याज, कारित=इतना समय पीछे दुगुनी ब्याज होगी, ऐसा ऋणी ने कर दिया । कायिक=ब्याज में शरीर से कर्म कराते रहना ।

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ।
यावती सम्भवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति॥१५५॥
चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः।
अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात॥१५६॥
समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति॥१५७॥

यदि (ब्याज का) धन भी न दे सके, तो बिना दिए उसी (नए लेख) में सारे धनको चढ़ादे,[तब उस पर]जितनी वृद्धि हो,उतनी देने योग्य है ॥१५५॥ चक्र वृद्धि*में देश काल का नियम करके † देश काल को उलांघने वाला उसके (पूरे) फल को नहीं पाता है ॥ १५६ ॥ किन्तु जल थल से जाने में चतुर, देश, काल और वस्तु ‡ के जाननेवाले जो वृद्धि स्थापन करदें, वही वहां मिले ॥

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ।
अदर्शयन् स तं तस्य प्रयच्छेत् स्वधनादृणम् ॥१५८॥
प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ।
दण्ड शुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥१५९॥
दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात् पूर्वचोदितः ।
दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥ १६० ॥

---

* चक्र वृद्धि = पहिये से लाभ अर्थात् छकड़े आदि द्वारा बोझ ढोने में जो लाभ नियत किया हो, † इतनी दूर ले जाने में, वा इतने समय में यह लूंगा ‡ जितनी दूरतक लेगया है, जितना समय साथ रहा है, जैसी वस्तु लेजानेवाली हैं, अर्थात् सम्भाल करके वा बिना सम्भाले इत्यादि समझने वाले ।

अदातरि पुनर्दाता विज्ञात प्रकृतावृणम् ।
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना ॥ १६१ ॥
निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः ।
स्वधनादेव तद्द्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥ १६० ॥

जो मनुष्य जिसके दिखलाने के लिए ज़ामिन हो वह यदि (धन देने के समय) उसे न दिखलाए तो वह अपने धन से धनी का ऋण देवे* ॥ १५८ ॥ ज़मानत का धन, वृथा दान (मीरासी आदि को देना कहा हुआ) जुए का रुपया, शराब का रुपया दण्ड और कर की बाकी (पिता के मरने पर) पुत्र देने योग्य नहीं है ॥ १५९ ॥ पर दिखलाने की ज़मानत में पूर्व कही विधि लगती है देने का ज़ामिन मरजाए तो उसके वारिसों से भी दिलाए ॥ १६० ॥ जो देने का ज़ामिन नहीं हुआ (किन्तु दिखलाने का, वा विश्वास का ज़ामिन है) ऐसा जिसके विषय में ज्ञात है, उस ज़ामिन के मरने पर पीछें धनी किस हेतु से धन पाए (अर्थात् नहीं पासक्ता) ॥ १६१ ॥ पर यदि ज़ामिन को (ऋणी से) धन मिल चुका हुआ है, और पूरा मिल चुका हुआ है, तब वह लिए धन वाला ज़ामिन अपने धन से ही देवे (अथवा जितना लिया हो, उतना देवे) यह मर्यादा है ॥ १६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ।
असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ॥ १६३ ॥
सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात् प्रतिष्ठिता ।
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥ १६४ ॥

* १५८–१६० गौत० १०।४२ याज्ञ० २।४७, ५३–५४ विष्णु० ६।४१

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ।
यत्र वा प्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥ १६५ ॥

(मद्य आदि से) मत्त, पागल, (शोकादि से) पीड़ित, अ-स्वतन्त्र, बाल, और बूढ़े से किया, तथा असम्बद्ध (पुरुष) से किया (ऋण आदि का) व्यवहार नहीं सिद्ध होता है । (ऐसा ऋण आदि धनी को नहीं मिल सक्ता) * ॥ १६३ ॥ वह भाषा (इक़रार) जो (शास्त्रीय–) धर्म से वा नियत व्यवहार (रिवाज) से विरुद्ध कीगई है, † वह चाहे (लेख आदि से) पक्की भी कर लीगई हो, तथापि वह सच्ची नहीं होती (उसका विषय अनुष्ठेय नहीं होता) ॥ १६४ ॥ छल से किए बन्धक (गिरवीं), विक्रय, दान और प्रतिग्रह, अथवा (इनके अन्यत्र भी) जहां कहीं (अमानत आदि में) छल देखे (वास्तव में बन्धक आदि न किये हों) उस सब को उलट देवे [स्वीकार न करे] ॥ १६५ ॥

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ।
दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥१६६॥
कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ।
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्नविचालयेत्॥१६७॥
बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ।
सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥ १६८ ॥

ऋण लेने वाला यदि नष्ट हो [मर गया हो वा बेपता होगया हो] पर उस ऋण का (व्यय यदि उसने सारे) कुटुम्ब के लिए

* याज्ञ० २। ३२ † स्त्री वा सन्तान का बेचना इत्यादि.

किया हो) तो वह (ऋण) [लेने वाले के] बान्धवों को चाहिए, कि अपने२ धन से देवें, चाहे अलग २ भी होगये हों,* ॥ १६६ ॥ (घर के स्वामी के) अपने देश में विद्यमान होते हुए, वा विदेश में होते हुए भी उसके कुटुम्ब के लिये पराधीन (नौकर आदि) भी जो व्यवहार (लेन देन) करे, इसको बुद्धिमान् न हिलाए † ॥१६७॥ बल से दिया, बल से भोगा, बल से लिखवाया बल से किये यह सारे व्यवहार मनु ने न किये कहे हैं ॥ १६८ ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ।
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः॥१६९॥
अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥१७०॥
अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ॥१७१॥
स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ।
बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥ १७२ ॥

तीन (पुरुष) दूसरे के लिये क्लेश उठाते हैं, साक्षी, ज़ामिन और जज । ‡ और चार पुरुष (दूसरों के द्वारा) बढ़ते हैं, ब्राह्मण, धनी, बनिया और राजा ॥१६९॥ (धन से) क्षीण भी राजा अग्राह्य धन (किसी से) न लेवे, और (धन से) समृद्ध भी ग्राह्य थोड़े भी

---

*अर्थात् ऋण लेने के समय इकट्ठे थे पीछे चाहे अलग भी होगये हों । याज्ञ०२।४५ † न हिलाए, मैं नहीं दूंगा न कहे । याज्ञ० २।८९ विष्णु० ७।६ ‡ कुलम्=जज (मेधा०, गोवि०, कुल्लू०) न अलग हुए भाई बन्ध जो किसी मरे हुए का कुछ न लेकर उसका ऋण शोधते हैं, (नारा०)

धन को न छोड़े * ॥ १७० ॥ क्योंकि अग्राह्य के ग्रहण से और ग्राह्य के त्याग से राजा की दुर्बलता पाई जाती है, वह परलोक में और इस लोक में नष्ट होता है ॥ १७१ ॥ अपना हक लेने से, वर्णों की परस्पर प्रीति बढ़ाने से, और दुर्बलों की रक्षा से, राजा का बल बढ़ता है, वह लोक और परलोक में बढ़ता है ॥ १७२ ॥

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ।
वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१७३॥
यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ।
अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥१७४॥
कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ।
प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ १७५ ॥

इसलिए राजा यम की तरह अपने प्रिय अप्रिय को छोड़कर, क्रोध को जीत, और इन्द्रियों को वस में करके, यम के वर्त्ताव (सब में समता) से वर्ते ॥ १७३ ॥ जो राजा मोहवश अधर्म से कार्य करता है, उस दुरात्मा को जल्दी शत्रु वस में कर लेते हैं ॥१७४॥ और जो काम क्रोध को रोककर धर्म से सारे व्यवहारों को देखता है, प्रजा उसकी ओर झुकती हैं, जैसे समुद्र की ओर नदियें ॥ १७५ ॥

यः साधयन्तं छन्देन वेदयद्धनिकं नृपे ।
स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥१७६॥
कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः ।

* वासि० १९ । १४—१५ ॥

समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥१७७॥
अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम् ।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत्॥१७८॥

अपनी स्वतन्त्रता से धन लेने का यत्न करते हुए धनी पर जो (ऋणी) राजा के पास नालिश करे, उस (ऋणी) को राजा (ऋण का) चौथा हिस्सा दण्ड भी दे, और उसका(धनी का) वह धन भी दिलावे *॥१७६॥ बराबर की जाति वा निचली जाति का ऋणी (ऋण न दे सके, तो) कर्म से भी धनी का ऋण चुकादे, पर जो ऊंची जाति का है, वह धीरे २ दे ही ॥१७७॥ इसप्रकार राजा आपस में झगड़ते हुए मनुष्यों के कार्य साक्षी और कागज़ आदि से सिद्ध करके ठीक करे ॥ १७८ ॥

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ॥१७९॥
यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।
स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ १८० ॥
यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ।
याच्यः प्राड् विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ॥ १८१ ॥

कुलीन, सदाचारी; धर्मज्ञ, सत्यवादी,बहुत बान्धवों वाले, धनी आर्य के पास बुद्धिमान् को अमानत रखनी चाहिये ॥ १७९ ॥ जो मनुष्य जिसप्रकार से [=मुहर लगाकर वा बिना मोहर, किसी के सामने वा अकेले] जिसके हाथ में अमानत रक्खे,

* विष्णु० ६ । १९ देखो पूर्व ४९—५० ॥

वह वैसे ही लेवे, जैसे देना होता है वैसे लेना होता है* ॥१८०॥
जो मांगने पर अमानत रखनेवाले को अमानत देता नहीं है, उससे जज मांगे, पर रखनेवाले के सामने [न मांगे] ॥ १८१ ॥

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ।
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥१८२॥
स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथा कृतम् ।
न तत्र विद्यते किञ्चिद्यत्परैरभियुज्यते ॥ १८३ ॥
तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि ।
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥१८४॥

साक्षी के अभाव में [जज] अवस्था और रूप [से भले प्रतीत होने] वाले अपने गुप्तचरों से बहाने से उसके घर में अपना सोना ठीक रीति से अमानत रखाए ॥ १८२॥ अब [मांगने पर] जैसी रीति से जैसे रूप में अमानत रक्खी थी, उसे स्वीकार करता है, तो [यह जानना चाहिये कि] उसके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिस की दूसरों ने नालिश की है ॥१८३॥ पर यदि ठीक उसीप्रकार उनका वह [अमानत रक्खा] सोना न देवे, तब उस को पकड़वाकर दोनों [अमानतें=पहली और अब की भी] उससे दिलवानी चाहिये, यह धर्म की मर्यादा है ॥ १८४ ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ।
नश्यतो विनिपाते तावनिपातेत्वनाशिनौ ॥ १८५ ॥
स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ।
न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्चबन्धुभिः ॥१८६

* याज्ञ० २ । ६५ और देखो आगे १९५ ।

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीति पूर्वकम् ।
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥१८७॥
निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने ।
समुद्रे नाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥१८८॥
चौरहृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किञ्चन ॥१८९॥

खुली वा मोहरवाली अमानत [अमानत वाले के जीते जी] उसके वारिसों [पुत्र, भाई, स्त्री] को नहीं देनी चाहिये, क्योंकि विघ्न (उस तक न पहुंचने) में खोजाती है, हां कोई विघ्न न हो, तो नहीं खोई जाती ॥१८५॥ जो स्वयमेव मरे हुए के वारिसों को [मरनेवाले की अमानत) देदेवे, उस पर न राजा ने न अमानत रखनेवाले के बन्धुओं ने कोई आक्षेप करना चाहिए, (कि उसने पूरा नहीं दिया इत्यादि] ॥ १८६ ॥ [यदि और होने की सम्भावना हो तो] बिना छल ही उस अर्थ को प्रीति पूर्वक पता लगाना चाहे वा उसके शील को विचारकर सभ्य मार्ग से साधे ॥१८७ ॥ इन सारी अमानतों में अमानत के पाने में यही विधि है मोहर वाले में कोई शंका भी उस पर न हो, यदि (वह अमानत) उस [हरएक मोहर] से बिगड़ी न हो॥१८८॥ चोरों से हरी, जल से वहाई गई, वा अग्नि से जलाई गई [अमानत को] वह न देवे, यदि उसमें से कुछ लिया हुआ नहीं [लिया हुआ हो, तो उतना देदेवे] * ॥ १८९ ॥

निक्षेपस्यापहर्त्तारमनिक्षेप्तारमेव च ।
सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥ १९० ॥

---

* २ । ६६

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम्॥१९१॥
निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ।
तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ १९२ ॥

अमानत के चुरा लेने वाले वा बिना रक्खे मांगने वाले को इन सब उपायों से और वैदिक शपथों से निश्चय करे ॥ १९० ॥ जो अमानत वापिस नहीं देता है, वा बिना अमानत रक्खे मांगता है, उन दोनों को चोर की तरह दण्ड देना चाहिए * वा उस [धन] के बराबर दण्ड देना चाहिए † ॥ १९१ ॥ अमानत के हरनेवाले, तथा मोहर वाली अमानत के हरनेवाले को भी राजा अविशेष से ‡ उस (अमानत) के बराबर दण्ड देवे ॥

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ॥ १९३ ॥
निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ ।
तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥ १९४ ॥
मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथएव वा ।
मिथ एव प्रदातव्यो यथादायस्तथा ग्रहः ॥ १९५ ॥
निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च ।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् ॥१९६॥

जो धोखों से [राजपुरुष बनकर, वा रसायनी आदि बनकर

---

* चोरवत् दण्ड = हाथ काटना आदि । † विष्णु० ५।१६९-१७१
‡ अविशेष से, बिना भेद करने के हरएक वर्ण के पुरुष को ॥

इत्यादि से] दूसरे के धन को हरे, उसे साथियों समेत अनेक प्रकार के वध दण्डों से मारना चाहिये ॥ १९३ ॥ जिसने साक्षियों के सामने जितनी अमानत धरी हो, उतनी ही वह जाननी चाहिए, अन्यथा कहता हुआ † दण्ड के योग्य होता है ॥ १९४ ॥ जिसने [अमानत] एकान्त में दी हो, और एकान्त में ही ली हो, वह एकान्त में ही वापिस देनी चाहिए, जैसे देना होता है, वैसे लेना होता है ॥ १९५ ॥ अमानत रक्खे वा प्रीति से [कुछ काल भोगने के लिये] दिए धन का इसप्रकार अमानतधारी को पीड़ा न देता हुआ राजा निर्णय करे ॥ १९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ।
न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥१९७॥
अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् ।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥१९८॥

(अब बिन स्वामी के बेचने का विचार करते हैं) जो स्वामी न होकर स्वामी की संमति विना दूसरे के धन को वेचता है, उस अपने आपको चोर न माननेवाले (वस्तुतः) चोर को साक्षी न बनाए, (अर्थात् कहीं भी प्रमाण न करे) ॥ १९७ ॥ यह (पर धन का वेचनेवाला) यदि स्वामी का सम्बन्धी (भाई पुत्रादि) है, तो उसे छः सौ पण दण्ड देनी चाहिए, जो सम्बन्धी नहीं और (असली स्वामी वा उसके पुत्रादि की ओर से) उसके हाथ में नहीं आया, तो वह चोर के पाप को प्राप्त होता है ॥ १९८ ॥

अस्वामिना कृतोयस्तु दायो विक्रयएव वा ।
अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथास्थितिः ॥१९९॥

---

* हाथ पांओं काटने आदि से, † उससे अधिक कहता हुआ ।

संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ।
आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥२००॥
विक्रयाद्यो धनं किंचिद् गृह्णीयात्कुलसन्निधौ ।
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥२०१॥

अस्वामी ने जो दिया वा बेचा है, वह न किया हुआ जानना चाहिए, यह व्यवहार में मर्यादा है ॥ १९९ ॥ जिस वस्तु के विषय में संभोग देखा जाता है, आगम नहीं, वहां आगम कारण है, न कि संभोग, यह मर्यादा है (एक पुरुष किसी वस्तु को वर्त रहा है, पर उसे किसतरह मिली, यह नहीं बतला सक्ता, वह उसका स्वामी नहीं होसक्ता, किन्तु स्वामी वह है, जिसने उस वस्तु को उचित रीति से पाया है) ॥ २०० ॥ बिक्री से जो कोई वस्तु बहुतों के सामने लेवे, वह खरीद से शुद्ध है, (यदि उसमें गड़बड़ भी निकले, तौ भी बेचने वाले से) वह अपना धन न्यायानुसार पालेता है * ॥

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ।
अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम्॥२०२
नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रय मर्हति ।
न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥ २०३ ॥

पर यदि मूल पुरुष (=बेचने वाले) को न लासके, और लोगों के सामने खरीद से निर्दोष है, तब वह राजा से अदण्डनीय कहा है, पर धन वह पाता है, जिसका खोया गया है ॥ २०२ ॥ एक वस्तु दूसरे के साथ मिलाकर (जैसे केसर के साथ

---

* २०१-२०२ याज्ञ० २ । १६८—१७० विष्णु० ५ । १६४—१६६

कुसुम्भा और घी के साथ चर्बी) नहीं बेचनी चाहिए, न (बहुत दूर पड़ी रहने आदि से) असार, न (परिमाण से) घट, न दूर से ढकी हुई (बेचनी चाहिये) * ॥ २०३ ॥

अन्यां चेद्दर्शयित्वाऽन्या वोढुः कन्या प्रदीयते ।
उभे ते एक शुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ २०४ ॥
नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ।
पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥२०५॥

यदि (शुल्क ठहराने के समय) और कन्या दिखलाकर (विवाह के समय) वर को और कन्या दीजाती है, तो वह उन दोनों को उस एक शुल्क से विवाह सकता है,यह मनु ने कहा है † ॥ २०४ ॥ पागल, कोढ़वाली, वा कंवारापन नष्ट कर चुकी कन्या के दोषों को कहकर देनेवाला दण्ड के योग्य नहीं होता है ॥ २०५ ॥

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् ।
तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सह कर्तृभिः ॥ २०६ ॥
दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ।
कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥ २०७ ॥
यस्मिन् कर्माणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यंगदक्षिणाः ।
स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ २०८ ॥

* याज्ञ० २ । २४५ | रुपया लेकर कन्या विवाह देना धर्म शास्त्र से निन्दित है, देखो पूर्व ३ । ५१–५४ पर कुछ छोटी जातियों में रिवाज था, उसके विषय में यह नियम है ।

(अब मिलकर किये कामों के विषय में कहते हैं) यज्ञ में चुना हुआ ऋत्विज् यदि (व्याधि आदि से) बीच में ही अपने कर्म को त्याग दे, तो उसको दूसरे करने वालों के साथ अपने कर्म के (जितना किया है उसके) अनुसार हिस्सा देना चाहिए ॥२०६॥ पर दक्षिणा दी जाने पर यदि अपने कर्म को छोड़े, तो पूरा ही हिस्सा लेवे, (और शेष रहा कर्म) दूसरे से करवा देवे * ॥२०७॥ जिस कर्म में अंग २ के प्रति जो २ दक्षिणा (जिस २ के लिए) कही हैं, वह उनको लेवे, वा सारे ही इकट्ठी करके बांट लेवें † ॥

रथं हरेत वाऽध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ।
होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये ॥२०९॥
सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे ।
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्चपादिनः ॥ २१० ॥
संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ।
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना ॥ २११ ॥

अग्न्याधान में अध्वर्यु रथ को लेवे, ब्रह्मा और होता घोड़े को और (सोम के) खरीदने में उद्गाता रथ को लेवे ॥ २०९ ॥ सत्र (सोलह ऋत्विजों) में जो मुखिया चार ऋत्विज् हैं (होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता) वह आधी होते हैं, दूसरे (चार-मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता) शेष आधे के आधी होते हैं, तीसरे [चार-अच्छावाक, नेष्टा, अग्नीध्र, प्रतिहर्ता][पहलों के] तीसरे हिस्से के भागी होते हैं, चौथे

---

* याज्ञ० २।२६५ † देखो आश्व० श्रौत० सूत्र९।३।१४-१५;४।७-२०

[चार–ग्रावस्तुत, नेता, पोता, सुब्रह्मण्य,] (पहलोंके) चौथे हिस्से के भागी होते हैं, * ॥२१०॥ मिलकर काम करनेवाले मनुष्यों [मिस्तरी राज आदि] को भी यहां इस क्रम योग से (अपने) भागों की कल्पना करनी चाहिये † ॥ २११ ॥

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् ।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत्॥२१२॥
यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः ।
राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः॥२१३
दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया ।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥ २१४ ॥

[अब दिए को लौटा लेना कहते हैं] जिसने धर्म [यज्ञादि] के लिए याचना करते हुए किसी को कुछ धन दिया हो, पीछे यदि वह धन उस काम पर न लगे, तो वह उसको देने योग्य नहीं होता है, [अर्थात् देना कहा हो, तो न देवे, दे चुका हो, तो वापिस लेसकता है] ॥२१२॥ यदि वह दर्प से, वा लोभ से उस धन को फिर लेवे, [वा लिया न फेरे] तो राजा उसे उस चोरी का बदला एक सुवर्ण दण्ड देवे॥२१३॥ यह दिए हुए का न देना धर्मानुसार ठीक २ कहा है, इसके आगे वेतन का न देना कहूंगा॥

* अर्थात् २५ हिस्से पूरे होकर १२ पहलों को ६ दूसरों को, चार तीसरों को, ३ चौथों को। ऊपर का नियम मोटे तौर पर है, २५ का पूरा आधा १२॥ साढ़े बारह है। मोटे तौर पर १२ भी आधा कहा जाता है। मिलाओ आश्व० श्रौ० ९। ४। ३–५ † याज्ञ० २। २५९, २६५।

भृतोऽनार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम् ।
सदण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥२१५॥
आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथा भाषितमादितः ।
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥२१६॥
यथोक्तमार्तःसुस्थोवा यस्तत्कर्म न कारयेत् ।
न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥२१७॥
एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादान कर्मणः ।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥ २१८ ॥

नौकर जो विना रोग के अहंकार से कहे हुए कर्म को न करे, उसको आठ रत्ती * दण्ड मिले, और वेतन भी नहीं देना चाहिये † ॥ २१५ ॥ हां यदि रोगी हो तो स्वस्थ होकर कहे अनुसार आदि से [काम को] पूरा करे, वह लम्बे काल के पीछे भी उस वेतन को पावे ॥ २१६ ॥ पर जो रोगी हुआ [दूसरे से] वा चंगा होकर स्वयं उस कर्म को न करवाए, वा न करे, उसको वेतन नहीं देना चाहिए, चाहे कर्म थोड़ा ही ऊन हो ॥२१७॥ यह वेतन के न देने का सारा धर्म कहा, इसके आगे प्रतिज्ञा तोड़नेवालों का धर्म कहूंगा ॥ २१८ ॥

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम् ।
विसंवदेन्नरोलोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ २१९ ॥

---

* अपराध के अनुसार आठ रत्ती सोने चान्दी वा तांबे की (मेधा० गोवि०) † आप० २ । २८ । २-३ याज्ञ० २ । १९३ विष्णु० ५ । १५३—१५४ ।

निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ।
चतुःसुवर्णान् षण् निष्कांश्छतमानंच राजतम् ॥२२०॥
एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥ २२१ ॥
क्रीत्वा विक्रीय वाकिञ्चिद्यस्येहानुशयोभवेत् ।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च ॥२२२॥
परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत ।
आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्डयः शतानि षट् ॥२२३॥

जो मनुष्य ग्रामदेश * वा समुदायों [कम्पनियों वा धार्मिक संघों] के साथ सचाई से इकरार करके लोभ से उसे उलंघे, उस को (राजा)देश से निकाल दे † ॥ २१९ ॥ और इस इकरार तोड़ने वाले को पकड़वाकर चार सुवर्ण, वा छः मोहरें, वा चान्दी का शत-मान [अपराध के अनुसार अलग २ वा सारे मिलाकर] दण्ड देवे ॥ २२० ॥ ग्राम और जाति समूहों के विषय में इकरार तोड़ने वाले को भी धार्मिक राजा यही दण्ड विधान करे ॥२२१॥ कोई वस्तु खरीद कर वा वेचकर जिसको पछतावा हो, वह दस दिन के अन्दर उस वस्तु को देदे, वा लेले, ‡ ॥ २२२ ॥ दस दिन के पीछे न दे न दिलाए, लेनेवाले वा देने वाले को राजा छः सौ [पण] दण्ड देवे ॥ २२३ ॥

---

* इस गाओं में, वा इस देश में, यह बात न की जाएगी वा इस तरह पर की जाएगी † याज्ञ० २ । १९२ विष्णु० ५।१६८ ‡ याज्ञ० २ । १७७ यह नियम उन वस्तुओं के विषय में है, जिनका मूल्य ज्यों का त्यों बना रहता है, जैसे भूमि वा धातें आदि ।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥२२४॥
अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद् द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥२२५॥
पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः॥२२६॥
पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ २२७ ॥
यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत् ।
तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥ २२८ ॥

जो [उन्मादादि] दोष वाली कन्या को न बतलाकर [वर को] देता है, उसको राजा स्वयं ९६ पण दण्ड देवे *॥ २२४ ॥ जो मनुष्य द्वेष से कन्या को अकन्या [क्षत योनि है] कहे, वह उसके दोष को न सिद्ध करता हुआ १०० पण दण्ड को प्राप्त हो ॥ २२५ ॥ मनुष्यों के पाणिग्रहण सम्बन्धी मन्त्र कन्याओं के विषय में ही नियत हैं, अकन्याओं में कहीं नहीं, क्योंकि वह धर्म कार्य को लुप्त कर चुकी हैं ॥ २२६ ॥ पाणिग्रहण सम्बन्धी मन्त्र निश्चित पत्नी होजाने का निमित्त हैं, उन [मन्त्रों] की समाप्ति [सप्तपदी के] सातवें पद में जाननी चाहिये †॥२२७॥

---

* २२४-२२५ याज्ञ०१।६६ दोष पहले कह कर देने में दण्ड नहीं होता । देखो पूर्व २०५ † सप्तपदी होजाने से पूर्व भार्यात्वकी सिद्धि नहीं होती, अर्थात् सातवें पद से पूर्व पश्चात्ताप हो, तो त्यागी जास-

[इसी प्रकार और भी] जिस २ कार्य के करने पर जिसको यहां पश्चात्ताप हो, उसको इसी विधि से * [राजा] धर्म के मार्ग में स्थित करे ॥ २२८ ॥

पशुषु स्वामिनां चैव पालानांच व्यतिक्रमे ।
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २२९ ॥
दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ।
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥२३०॥
गोपः क्षीरभृतो यस्तु सदुह्याद्दशतो वराम् ।
गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृतेभृतिः ॥२३१॥

[स्वामी और पालक का विवाद कहते हैं] पशुओं के विषय में स्वामी और पालकों के बिगाड़ में जो विवाद होता है, उसको ठीक २ धर्म के तत्त्व से कहूंगा ॥ २२९ ॥ [पशुओं के] योग क्षेम [पालन और रक्षा] में दिन के समय पालक पूछा जाता है, रात्रि को स्वामी यदि [पशु] उसके घर आगए हों, न आए हों, तो रात को भी पाल ही पूछा जाता है ॥ २३० ॥ जो गौओं का रक्षक भृत्य अपना वेतन दूध लेवे, वह गौओं के स्वामी की अनुमति में दस गौओं में से एक चुनकर दोह लेवे, यह कोई और दूसरा वेतन न लेने वाले पाल का वेतन है ॥ २३१॥

नष्टं विनष्टं कृमिभिःश्वहतं विषमे मृतम् ।
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पालएव तु ॥ २३२ ॥
विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति ।
यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति॥२३३॥

करती है, पीछे नहीं, (कुल्लू०) * अर्थात् दस दिन के अन्दर।

कर्णौ चर्म च बालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ।
पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्कानिदर्शयेत् ॥२३४॥
अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ।
यां प्रसह्य वृकोहन्यात् पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥२३५
तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने ।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्नपालस्तत्रकिल्बिषी ॥२३६॥

खोए गए वा कीड़ों* से मरे वा हिंस्रों से मारे गए,वा गढ़े आदिमें गिरकर मरे को पालका ही देवे,यदि उसने बचानेका पूरा पुरुषार्थ न किया हो ¶ ॥२३२॥ पर जो डंके की चोट [ज़बरदस्ती छीन कर] चोर लेगये हैं, उसको पालक देने योग्य नहीं है, यदि ठीक देश काल में अपने स्वामी को बतला देता है ॥ २३३ ॥ [अपने आप मरे पशुओं के] कान, चमड़ा, (पूंछ के] बाल, मसाना, (मुकना = मूत्राशय) और गोरोचन स्वामी को देवे, और चिन्ह ‡ दिखला देवे ॥२३४ ॥ भेड़ बकरियों को भेड़िये घेरलें, और पाल [छुड़ाने को] न आए, तो जिसको भेड़िया धक्के से मार डाले, वह पाल का दोष हो § ॥ २३५ ॥ पर यदि वह (पाल से) रोकी हुई वन में इकट्ठी चर रही हैं, तो जिसको (बे मालूम कहीं से) कूद कर भेड़िया मार डाले, उसमें पाल दोषी नहीं है ॥ २३६ ॥

* कीड़े=आरोहक नामी कीड़े जो गौओं को उपस्थमार्ग से प्रवेश कर के मार डालते हैं (मेधा०) कीड़े = सर्पादि (राघ०) ¶ याज्ञ १ । १६४–१६५ विष्णु ५ । १३७–१३८ ‡ 'अंगानि' = 'अंग' पाठ भी है § विष्णु ५ । १३७ ॥

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ।
शम्यापातास्त्रयो वाऽपि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥२३७॥
तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि ।
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥२३८॥

ग्राम के चारों ओर सौ धनुष वा तीन शम्यापात * भूमि (चरागाह के लिये) ज़खीरा रक्खें, इससे तिगुनी नगर के चारों ओर । २३७ । वहां वाड़ से रहित खेती को यदि पशु नष्ट करें, तो उसमें राजा पशुपालों को दण्ड न दे । २३८ ।

वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत् ।
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥ २३९ ॥
पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ।
सपालः शतदण्डार्हो विपालांश्वारयेत्पशून् ॥२४०॥

वहां (खेती के वचाव के लिये) वाड़ देवे, जिस (के पिछली ओर) को ऊंट न देख सके और हरएक छिद्र जिस में कुत्ते वा सूअर का मुख पहुंच सक्ता है ढक दे । २३९ । पर मार्ग के समीप वा ग्राम के समीप जो क्षेत्र वाड़ दिया हुआ है, उसमें (द्वारादि से प्रविष्ट हुए) पशु के पालक को दण्ड देवे, और जिन का मालक नहीं उन पशुओं को (क्षेत्ररक्षक) हटा दे † २४० ।

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति ।
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥२४१॥

---

* धनुष चार हाथ का होता है । शम्या एक लकड़ी का यज्ञ पात्र होता है । तीन शम्यापात अर्थात् तीन बार फेंकी हुई छड़ी जितनी दूर पहुंचजाए, उतनी भूमि † २४०–२४२ गौत १२ । १९–२६ आप २ । २८ । ५ याज्ञ २ । १६१–१६३ विष्णु ५ । १४०–१५०

आनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा ।
सपालान्वाविपालान्वानदण्ड्यान्मनुरब्रवीत ॥२४२॥
क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ।
ततोऽर्धदण्डोभृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्यतु ॥२४३॥
एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
स्वामिनां च पशूनांच पालानांच व्यतिक्रमे ॥२४४॥

दूसरे (जो ग्राम से दूरस्थ हैं, ऐसे) खेतों में सवा पण दण्ड के योग्य होता है, और सर्वत्र फल खेत के मालिक को देना चाहिये, यह मर्यादा है ।२४१। गौ प्रसूता, जिस को दस दिन नहीं निकले, (स्वतन्त्र छोड़े हुए) साण्ड और देवपशु चाहे पालक सहित हों वा पालक रहित हों इनको मनुने दण्डनीय नहीं कहा है ।२४२। यदि खेत के मालिक का अपराध हो (अर्थात् उसी के पशु खेती चर जाएं, वा खेती ही न बोए) तो उसे राजा को देने योग्य भाग से दस गुना दण्ड हो, उससे आधा दण्ड खेत के स्वामी को हो, जब उसके नौकरों की मूर्खता से ऐसा हुआ हो *।२४३। धार्मिक राजा यह (पूर्वोक्त) मर्यादा वर्ते, जब स्वामी का पालक का वा पशुओं का अपराध हो ।२४४।

सीमां प्रति समुत्पन्नेविवादे ग्रामयोर्द्वयोः ।
ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥२४५॥
सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ।
शाल्मलीन् सालतालांश्चक्षीरिणश्चैवपादपान् ॥२४६॥

* आप० २।२८।१

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च ।
शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति॥२४७॥
तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च ।
सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ २४८ ॥
उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारयेत् ।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्॥२४९॥

दो गाओं की हद्द का झगड़ा उत्पन्न हो, तो जेठ महीने में जब कि (घास के सूखजाने से) हद्द के चिन्ह प्रकट हों, तब हद्द का निश्चय करे। २४५। वड़, पीपल, केसू, सिंबल, साळ, ताळ, तथा और दूध वाले (गूलर आदि) वृक्षों को हद्द के वृक्ष बनाए। २४६। झाड़ियें, भिन्न २ प्रकार के वांस, जंडी वेलें *, मट्टी के ढेर, सर, और कुब्जक झाड़ियें, (हद्द के चिन्ह बनाए) इस प्रकार हद्द नष्ट नहीं होती। २४७। ताळाव, कुएं, बावड़ियें, झरने और देवमन्दिर हद्द के मेल पर बनाने चाहियें। २४८। सीमा के जानने में सदा लोक में लोगों की भूल होती देख कर और भी हद्द के गुप्त चिन्ह बनाए। २४९ ।

अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः ।
करीषमिष्टकांगारांश्छर्करावालुकास्तथा ॥२५०॥
यानि चैवं प्रकाराणि कालाद्भूमिर्नभक्षयेत् ।
तानि सन्धिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥२५१॥

* चिर रहने वाली करंज आदि वेलें (नारा०)

एतैर्लिंगैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ।
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ २४२ ॥

अर्थात् पत्थर, हड्डियें, गोबाल, तुस, भस्म, खपड़े, सूखा गोबर, कोइला, रोड़ ठीकरी, रेत । २५० । इसी प्रकार के और भी पदार्थ जिन को समय बीतने पर भूमि खा न जाए, वह हद्द के जोड़ों पर बेमालूम करादे । २५। इन चिन्हों से राजा झगड़ते हुए दो गाओं की हद्द का निर्णय करे, दीर्घ काल के पूर्वले भोग से (कौन गाओं किस भूमि को भोगता चला आता है) और बीच में पानी (नदी नाले आदि) के पड़ने से (वार पार के गाओं की हद्द का निश्चय करे) । २५२ ।

यदि संशयएव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ।
साक्षिप्रत्यय एव स्यात् सीमावादविनिर्णयः ॥२५३॥
ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ।
प्रष्टव्याः सीमलिंगानि तयोश्चैव विवादिनोः॥२५४॥
ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ।
निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥२५५॥
शिरोभिस्तेगृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ।
सुकृतैःशापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥२५६॥
यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः ।
विपरीतं नयन्तस्ते दाप्याः स्युर्द्विशतंदमम्॥२५७॥

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः ।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ ॥२५८॥
सामन्तानामभावेतु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् ।
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥ २५९ ॥

यदि चिन्हों के देखने में भी संशय ही हो, तब हद के झगड़े का निणर्य साक्षियों के विश्वास पर हो । २५३ । गाओं के लोगों के, और (दोनों गाओं की ओर से) झगड़ने वाले उन दोनों के सामने हद के विषय में हद के चिन्ह साक्षियों से पूछने चाहियें । २५४ । वह पूछे हुए सारे सीमाके विषय में जैसा अपना निश्चय बतलाएं, वैसी सीमा नियत करे, और उन सब (साक्षियों) के नाम लिखे * । २५५ । वह (साक्षी) (लाल फूलों की) माला और लाल वस्त्र पहन कर, सिरपर मट्टी रख कर अपने २ पुण्यों की सौगन्द खा कर ठीक २ निर्णय करें † २५६ । कहे अनुसार ठीक निश्चय कराने वाले सच्चे साक्षी पवित्र होते हैं, उलटा निश्चय करानेवालों को (पता लगने पर) दौं सौ पण दण्ड देना चाहिये ।२५७। सक्षियों के अभाव में चारों ओर के रहने वाले, भिन्न २ ग्राम वासी चार जमींदार शुद्ध हो राजा के सामने सीमाका निर्णय करें । २५८ । सीमा निर्णय में मूलसे आते हुए (पिता पितामह आदि से वहीं बसते हुए) आस पास वालों के अभाव में वन में रहने वाले इन पुरुषों से भी पूछे ।

---

* सीमा निर्णय में सब की एक वाक्यता पूरा प्रमाण है, एक वाक्यता नहो, तो बहुतों का वाक्य माने (मेधा०) † २५६-२६० याज्ञ० २ । १५२

व्याधांश्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान् ।
व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्चवनचारिणः ॥ २५६ ॥
ते पृष्टास्तु यथाब्रूयुः सीमासन्धिषु लक्षणम् ।
तत्तथास्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ २६१ ॥

शिकारी, चिड़ी मार, ग्वाले, धीवर (माहीगीर) मूल (कंद) खोद (कर जीविका कर) ने वाले, सांप पकड़ने वाले, दाने चुनने वाले और दूसरे ‡ वन चारियों को (भी पूछे) । २६० । वह पूछे हुए सीमा के जोड़ों में जो चिन्ह बतलाएं, उसको वैसे राजा दोनों गाओं में धर्म से (सीमा चिन्ह) स्थापन करे ।२६१।

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च ।
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ २६१ ॥
सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥२६३॥
गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतोदमः २६४
सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ।
प्रदिशेद्भूमिमेतेषा मुपकारादिति स्थितिः ॥२६५॥
एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ।
अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥२६६॥

खेत, कुएं, तालाब, बगीचे और घर की हद बन्दी का

‡ लकड़ियां काटने वाले आदि वा भील आदि ।

निश्चय आसपासवालों के विश्वास पर जानना चाहिये * २६३
विवाद् करने वाले मनुष्यों की हदबन्दी में यदि आस पास वाले झूठ बोलें, तो राजा सबको अलग२ मध्यम साहस दण्ड देवे२६३ जो भय दिखलाकर किसके घर, तालाब, बाग, खेत को छीने, तो उसे पांच सौ दण्डदे, (मेरा है इस) भूल से छीने, तो दो सौ दण्ड देवे ॥ २६४ ॥ हद (जब दूसरे प्रमाणों से) निश्चय करनी अशक्य हो जाए (तो) धर्मज्ञ (पक्षपात रहित) राजा आप ही इन (सब) के लाभ का ध्यान रख कर हद की भूमि बतलाए (हद नियत करे, और वहीं आगे के लिये चिन्ह स्थापन करे) यह मर्यादा है † ॥ २६५ ॥ यह हद के निर्णय में मर्यादा पूरी कहदी है, इस से आगे बाणी की कठोरता का निर्णय कहूंगा ॥२३६॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।
वैश्यो प्यर्धं शतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥२६७॥
पञ्चाशद् ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥२६८॥
समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥२६९॥
एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणयाक्षिपन् ।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवोहि सः॥२७०॥
नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।
निक्षेप्योऽयोमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ॥२७१॥

* बौंसि १६।१३-१५ याज्ञ २ । ११४ † याज्ञ २ । १५३॥

ब्राह्मण को (चोर बेईमान इत्यादि) कठोर कह कर क्षत्रिय सौ पण दण्ड के योग्य है। वैश्य डेढ सौ वा दो सौ, शूद्र ताड़ना के योग्य है * ॥ २६७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय को कठोर कहे, तो ५० पण, वैश्य को कहे तो २५ पण, शूद्र को कहे, तो दस पण उसे दण्ड हो ॥ २६८ ॥ अपने समान वर्णवाले को कठोर कहने में द्विजातियों को १२ पण ही दण्ड हो, न कहने योग्य वचनों (माता बहिन आदि को गाली) में वही दुगुना हो ॥ २६९ ॥ यदि शूद्र द्विजातियों को दारुणवाणी (माता आदि की गालियों) से झिड़के, तो उसकी जीभ कटवा देवे, क्योंकि वह निचले अंगसे उत्पत्ति वाला है ॥ २७० ॥ और यदि इन (द्विजातियों) का सख्त झिड़क के साथ नाम वा जाति का ग्रहण करे, † तो उसके मुख में जलता हुआ लोहे का दस अंगुल कील डालना चाहिये

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥२७२॥
श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद् द्विशतं दमम् ॥२७३॥
काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥ २७४ ॥
मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद् गुरोः ॥२७५॥

---

* २६७—२७७ वासि० ९ । ९ गौत० १२ । १, ८—१४ आप० २ । २७ । १४ याज्ञ० २ । २०४—२११ विष्णु० ५।२३—३९ † रे नीच

और दर्प से ब्राह्मणों को धर्मोपदेश करते हुए इस (शूद्र) के मुख और श्रोत्र में राजा गर्म तेल डलवाए ॥ २७२ ॥ जो अभिमान से (दूसरे का) वेद, ज्ञान, देश, जाति और शरीर सम्बन्धी कर्म * झूठ बतलाए, उसे दो सौ दण्ड हो ॥२७३॥ काने, लूले, और भी इसी प्रकार के पुरुष को (काना आदि) सच कहने वाले को भी घट से घट एक कार्षापण दण्ड देवे ॥ २७४ ॥ माता पिता, पत्नी भाई पुत्र गुरु पर झूठा दोष लगाने वाले को और गुरु को मार्ग न देने वाले को सौ पण, दण्ड देवे ॥२७५॥

ब्राह्मण क्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥२७६॥
विट् शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ।
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥२७७॥
एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः ।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥२७८॥

ब्राह्मण क्षत्रियों के आपस में गाली देने में ब्राह्मण को प्रथम साहस दण्ड देवे, क्षत्रिय को मध्यम साहस ॥ २७६॥ वैश्य शूद्र को भी एक दूसरी जाति को (गाली देने में) इसी प्रकार (वैश्य को प्रथम साहस, शूद्र को मध्यम साहस) (अर्थात् जिह्वा) काटने को ^

यज्ञदत्त रे नीच ब्राह्मण इत्यादि, * तू ने वेद नहीं पढ़ा, तुझे इसका ज्ञान नहीं, तू इस देश का नहीं, तू इस जाति का नहीं, वा तेरा यह पेशा नहीं, इत्यादि ^अर्थात् पूर्व २७० में द्विजों को गाली देने में जो शूद्रों की जीभ काटना कहा है, वह दण्ड वैश्य को गाली देने में नहीं, केवल ब्राह्मण क्षत्रिय को गाली देने में ही हो ॥

छोड़ कर दण्ड दियाजाता है यह मर्यादा है ॥ २७७ ॥ वाणी की कठोरता की यह दण्ड विधि ठीक २ कह कह दी है, इस से आगे दण्ड (मार पीट) की कठोरता का निर्णय कहूंगा ॥२७८

येनकेनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥२७९॥
पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।
पादेन प्रहरन् कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ।
कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वाऽस्यावकर्तयेत् ॥२८१
अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥ २८२ ॥

अन्त्यज जिस किसी अंगसे द्विजाति पर प्रहार करे, वही २ उसका काटना चाहिये, यह मनुकी आज्ञा है * ॥ २७९ ॥ अर्थात् हाथ वा दण्ड उठाए, तो हाथ काटने योग्य है, क्रोध से पाओं से प्रहार करे, तो पाओं काटने योग्य है ॥ २८० ॥ ऊंचे के साथ बैठना चाहते हुए नीच को कमर में निशान देकर निकाल दे, वा इस के चूतड़ को थोड़ासा कटवा देवे † ॥२८१॥ दर्प से (नकि भूलसे) ब्राह्मण पर थूके, तो राजा उसके दोनों

* २७९—२८० याज्ञ २।२१५ विष्णु० ५।१९ † गौत० ७।७ आप० २।२७।१५ विष्णु० ५।२० मेधा० गोवि० कुल्लू, के अनुसार यह नियम शूद्र और ब्राह्मण के विषय में है (शूद्र से चाण्डाल पर्यन्त सभी छोटी जातियों के विषय में हो सक्ता है, पर है सर्वथा मिथ्याभिमान—सम्पादक)

होंट कटवादे, मूते, तो लिंग कटवा देवे, पादे तो गुदा कटवादे*

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् ।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ २८३ ॥
त्वग्भेदकःशतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।
मांसभेत्ता तु षण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥

(दर्प से) (मारने पीटने के लिये) सिर के बाल पकड़े, तो बिन विचारे उसके दोनों हाथ कटवादेवे, पाओं, दाढी, गर्दन और अण्डकोश (पकड़ने) में भी (हाथ कटवादे) ॥ २८३ ॥ (शस्त्र प्रहार से दूसरे का) चमड़ा छीलने वाले वा लहू निकालने वाले को सौ पण दण्ड देवे, मांस काटने वाले को छः मोहरें, हड्डी तोड़ने वाले को देश निकाला † ॥ २८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा ।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥२८५॥
मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।
यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥२८६॥
अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ।
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ २८७ ॥

सब वनस्पतियों का जैसा २ उपभोग ‡ है, वैसा २ उनकी हिंसा

---

* विष्णु० ५।२१-२२ † याज्ञ २। २१८ विष्णु० ५। ६६-७० मेधा० कुल० नन्द० के अनुसार यह नियम समान जातियों के लिये है, न कि शूद्र को द्विजातियों के विषय में, राघ० के अनुसार शूद्र का शूद्र के विषय में, नारा० के अनुसार बराबर के वा निचले के अपराध के विषय में है ‡ उपभोग=फल वाले, छाया वाले, हद के वृक्ष, यात्रियों के आराम के वृक्ष इत्यादि वृक्षों के उपकार को

में दण्ड देवे, यह मर्यादा है * ॥ २८५ ॥ मनुष्य और पशुओं की पीड़ा के लिये प्रहार करने पर जैसे २ पीड़ा हो, वैसा २ दण्ड देवे † ॥२८६ ॥ अंगों की और व्रण और लहू की पीड़ा में (प्रहार करने वाला) असली अवस्था तक आने का व्यय दे, अथवा सारा दण्ड देवे ॥ २८७ ॥

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा ।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् ॥ २८८॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च ।
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥ २८९ ॥

जो जिस की वस्तुओं को जानकर वा विन जाने हानि पहुंचाए, वह उसका संतोष उत्पन्न करे, और उसके बराबर राजा को दण्ड भी देवे§ ॥२८८॥ चमड़ा, चमड़े लकड़ी और मिट्टी के वर्तनों में मूल्य से पांच गुना दण्ड राजा को दे (और स्वामी की प्रसन्नता करे)॥

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एवच ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रति मुखागते ।
अक्षभंगे च यानस्य चक्रभंगे तथैव च ॥ २९१॥

(गाड़ी से हानि पहुंचने में) गाड़ी के चलाने वाले और मालिक के लिये दस छोड़ने योग्य स्थान हैं, शेषों में दण्ड दिया जाता है

देखकर दण्ड देवे * याज्ञ २ । २२७-२२८ विष्णु० ५ । ५५-१२ †२८६-२८७ याज्ञ २ । २१९-२२२ विष्णु ५ । ७५-७६ ‡ पूर्व कहे दण्डों में से यथा योग्य कोई दण्ड ।
§जिन के विषय में विशेष दण्ड नहीं कहा है(मेधा०गोवि०कुल्लू०राघ०

॥ २९० ॥ (वह दस यह हैं) नाथ (नकेल) के टूट जाने, जुए के टूटजाने (ऊंची नीची भूमि के हेतु) टेढा पड़ने से, वा उलटा पीछे आपड़ने से, यान का धुरा टूटने, वा पहिया टूटने पर *॥

छेदनेचैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥२९२॥
यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥२९३॥
प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम् ॥२९४॥

यन्त्रों (चर्मबन्ध आदि) के टूटने, जोते के टूटने, लगाम के टूटने में, और हटजा २ ऐसा पुकारते हुए (हानि होने पर) मनु ने दण्ड नहीं कहा है ॥ २९२ ॥ जहां सारथि के चतुर न होने से रथ उलट पलट चलता है, वहां हानि में (अशिक्षित सारथि लगाने के हेतु) स्वामी को दो सौ पण दण्ड हो ॥ २९३ ॥ यदि सारथि कुशल हो, तो वही दण्ड के योग्य है, अकुशल हो, तो (सारथि और स्वामी से अलग और भी) रथ पर बैठे पुरुष सौ २ पण दण्ड के योग्य होते हैं ॥२९४॥

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥ २९५ ॥
मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ २९६ ॥

* २९१–२९५ याज्ञ० २ । २९८–२९९

यदि वह सारथि मार्ग में पशुओं से वा दूसरे रथ से रुका हुआ (अपना रथ चलाने में उतावली करके) प्राणियों को मारडाले, वहां विनविचारे दण्ड हो ॥२९५॥ मनुष्य के मारने में (सारथि को) चोर का दण्ड (उत्तम साहस=सहस्र पण) हो, गो हाथी ऊंट घोड़े आदि वड़े २ प्राणियों के मारने पर उससे आधा

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ २९७ ॥
गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ २९८ ॥
भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥२९९॥
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथञ्चन ।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥३००
एषोऽखिलेनाऽभिहितो दण्ड पारुष्यनिर्णयः ।
स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥३०१॥

क्षुद्र पशुओं की हिंसा में दो सौ दण्ड हो, अच्छे मृग पक्षियों की हिंसा में ५० दण्ड हो * ॥ २९७ ॥ गधा, बकरी, भेड़ के (मरजाने में) पांच मासे दण्ड हो, कुत्ते, सूअर के मारने में एक मासा दण्ड हो ॥ २९८ ॥ पत्नी, पुत्र, नौकर, चपड़ासी, छोटा भाई अपराध करें, तो रस्सी वा बांस की तील से ताड़ने योग्य हैं ॥ २९९ ॥ (वह भी) शरीर की पीठ पर

* २९७-२९८ विष्णु ५।५०-५४

सिर पर कभी नहीं, इससे अन्यथा * प्रहार करे, तो चोर का दण्ड पावे ॥ ३०० ॥ यह दण्ड की कठोरता का निर्णय पूरा २ कह दिया, अब चोर के दण्ड निर्णय में विधि कहूंगा ॥ ३०१ ॥

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥३०२॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३०३ ॥

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।
अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥३०४॥

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ।
तस्य षडभागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥३०५॥

चोरों के रोकने में राजा पूरा यत्न करे, चोरों के रोकने से इसका यश और राष्ट्र बढ़ता है ॥ ३०२ ॥ क्योंकि (चोरों के रोकने से) जो राजा अभय का दाता है, वह सदा पूजा योग्य होता है, उसका अभय की दक्षिणा वाला सत्र (लंबा यज्ञ) सदा बढ़ता रहता है † ॥ ३०३ ॥ (प्रजा की) रक्षा करते हुए राजा को सबसे धर्म का छटा हिस्सा मिलता है, और न रक्षा करते हुए को अधर्म से छटा हिस्सा मिलता है ॥ ३०४ ॥ जो कोई स्वाध्याय, यज्ञ, दान, पूजा करता है, उसके छटे हिस्से का भागी राजा रक्षा करने से होता है ॥ ३०५ ॥

* २९९-३०० गौत २।४३-४४ आप १।८।२१ ॥ छाती वा सिर पर वा लात आदि से ।

† ३०३-३११ वासि० १९४२-४४ आप २।२५।१५ याज्ञ० १।३३५-३३६, ३५८ विष्णु ५।१९६ और देखो आगे ८।२१२ ।

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ३०६ ॥
योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ।
प्रतिभागं च दण्डंच स सद्यो नरकं व्रजेत् ॥३०७॥
अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुःसर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ३०८ ॥
अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥ ३०९॥

न्याय से सब प्राणियों की रक्षा करता हुआ और मारने योग्यों को मारता हुआ राजा प्रतिदिन लक्ष गौ दक्षिणा वाले यज्ञों से यजन करता है ॥३०६॥ रक्षा न करता हुआ जो राजा कर (मुआमला), चुंगी, डाली वा दण्ड लेता है, वह शीघ्र नरक को प्राप्त होता है ॥ ३०७ ॥ रक्षा न करके अनाज का छटा हिस्सा लेने वाले राजा को सारी दुनिया की समग्र मल का होने वाला कहते हैं ॥ ३०८ ॥ मर्यादा की परवाह न करने वाले, नास्तिक, (लोगों से) छीनने वाले, रक्षा न करने वाले निरा खाने वाले राजा को नरकगामी जाने ॥३०९॥

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥ ३१० ॥
निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेणच ।
द्विजातयइवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥३११॥

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपता कार्यिणां नृणाम् ।
बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ ३१२॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ।
यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥३१३॥

अधार्मिक(चोर आदि)को राजा तीन उपायों से रोके,नज़र बन्द करने से, बेड़ियां डालने से और अनेक प्रकार के शरीर दण्डों से ॥३१०॥ पापियों के निग्रह और भलों के संग्रह से राजे सदा पवित्र होते हैं, जैसे यज्ञों से ब्राह्मण ॥ ३११ ॥ कार्यार्थी, तथा बाल वृद्ध और आतुर जन कुछ अप्रिय भी कहदें, तो राजा को चाहिये क्षमा करदे, इस में उनका अपना भला है ॥३१२॥ जो दुखियों से कठोर कहा हुआ सहता है, उससे वह स्वर्ग में पूजा जाता है, और जो ऐश्वर्य (के अभिमान) से नहीं सहारता है, उससे वह नरक को जाता है ॥ ३१३ ॥

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।
आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ३१४

स्कन्देनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥ ३१५॥

चोर को चाहिये, कंधेपर मूसल, वा खैर का डंडा वा दोनों ओर में तीक्ष्ण बर्छी, वा लोहे का दण्ड रख कर, बाल खोले हुए दौड़ता हुआ, अपनी चोरी कहता हुआ, राजा के पास जाए,

कि मैं इस कर्म वाला हूं, मुझे दण्ड दो * ॥ ३१४, ३१५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ३१६
अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनोराजनिकिल्बिषम् ॥३१७
राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाःस्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३१८॥
यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च यः प्रपाम ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥३१९॥
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्याधिकं वधः ।
शेषेप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्यच तद्धनम् ॥ ३२० ॥

दण्ड दिया जाने से, वा छोड़ देने से चोर अपराध से छूट जाता है, पर उसको दण्ड न दे, तो राजा चोर के पाप को प्राप्त होता है ॥ ३१६ ॥ ब्रह्महत्या करनेवाला अपना अन्न खाने वाले में, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति में, शिष्य गुरु में, यजमान पुरोहित में, और चोर राजा में अपने पाप को डालता है † ॥ ३१७ ॥ पाप करके मनुष्य राजाओं से दण्डित

---

* ३१४-३१६ वासि २०। ४१ गौत १२।४३-४५ आप १। २५। ४-५ बौधा २।१।१६-१७ याज्ञ ३।२५७ विष्णु ५२।१-२ यह नियम ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने वाले चोर के विषय में है देखो आगे ११।९९-१०१ † वासि १९।४४ महापातकों से बचाना उसका अन्न खाने वालों का, पत्नी को व्यभिचार से रक्षा करना पतिका, शिष्यकी अधर्म से रक्षा करना गुरुका और यजमानकी रक्षा पुरोहित का और प्रजाकी रक्षा राजा का कर्तव्य है। और रक्षा न करने से यह भी

होजाएं, तो वह निर्मल होकर पुण्यात्माओं के तुल्य स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ३१८ ॥ जो पुरुष कुएं से रस्सी वा डोल चुराले, और जो प्याऊ को तोड़ दे * उसे एक मासा दण्ड दो, और उस (वस्तु) को वहां समर्पण करे [रस्सी डोल देवे, प्याऊ बनवादे] ॥ ३१९॥ दस कुम्भों † से अधिक अनाज चुरानेवाले को वध [बेंत मरवाना वा अङ्ग काटना आदि) दण्ड देवे, बाकी में ग्यारह गुना दण्ड और मालिकको धन दिलावे ‡ ॥३२०॥

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ।
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥ ३२१ ॥
पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदन मिष्यते ।
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥३२२॥
पुरुषाणां कुलीनानां नारीणांच विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥ ३२३ ॥
महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत ॥३२४॥

तथा तकड़ी से तोले जाने वाले सोने, चान्दी और उत्तम वस्त्रों की [चोरी में] सौ से अधिक में वध § पचास से अधिक में हाथ का काटना, शेष में मूल्य से ग्यारह गुना दण्ड देवे (और मालिक को) धन दिलावे ¶ ॥ ३२१ ॥ ३२२ ॥ कुलीन पुरुषों

उसके साथ पापी होते हैं, यह अभिप्राय है * प्याऊ की लकड़ी चुरा ले (नारा०) † कुम्भ=२० वा २२ प्रस्थ (मेधा) २०० पल=द्रोण, २० द्रोण=कुम्भ (गोवि०कुल्लू०राघ०)२०० पल (नारा०) ‡ विष्णु ५।१२ § विष्णु ५।१३ ¶ विष्णु ५।८१-८२

विशेषतः स्त्रियों और मुख्य रत्नों (हीरे आदि) के चुराने में वध के योग्य होता है॥ ३२३ ॥ बड़े पशुओं (हाथी गौ घोड़े आदि) के, शस्त्रों के और औषध के चुराने में काल और कार्य को देखकर राजा दण्ड कल्पना करे * ॥ ३२४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदने।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥३२५॥
सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च।
दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीस्य तृणस्य च ॥३२६॥

ब्राह्मण की गौओं के चुराने, बोरियों के फाड़ने में † और (ब्राह्मण के दूसरे) पशुओं के चुराने में जल्दी उसके आधे २ पाओं काटदे॥ ३२५ ॥ (ऊण, सन आदि का) सूत, कपास, शराब के बीज, गोबर, गुड़, दही, दूध, मठा, जल, घास

वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च।
मृण्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ ३२७॥
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ ३२८॥

बांस और बैत के बर्तन, लवण; मट्टी के बर्तन, मट्टी और भस्म॥ ३२७॥ मछली, पक्षी, तेल, घी, मांस, शहद और भी जो पशुओं से उत्पन्न होता है (चौरी गोरोचन आदि)

* ३२४-३२५ विष्णु ५। ७७-७८

† 'स्थूरि कायाश्च छेदने' इस पाठान्तर में वांझ गौ के नासा छेदने में, अर्थ है ❀ ३२६-३३१ विष्णु ५। ८३-८६

अन्येषांचैव मादीनामाद्यानामोदनस्य च ।
पक्कान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणोदमः॥ ३२९॥
पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ।
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥३३०॥
परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।
निरन्वये शतं दण्डः साऽन्वयेऽर्धशतं दमः॥ ३३१॥
स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयंभवेत्स्तेयं हृत्वाऽपव्ययते च यत् ॥ ३३२ ॥

इत्यादि और भी * खाने योग्य वस्तुएं, भात, सारे पक्के अन्न,(इन पूर्वोक्तवस्तुओं के)चुराने में उनके मूल्य से दुगुना दण्ड हो (और मूल्य मालिक को दिलाए)॥३२९॥ फूल, हरे अनाज, झाड़ी, बेल, वृक्ष (इनके फल) और भी जो (दानों की तरह) शोधे नहीं जाते, उनमें पांचरत्ती दण्ड हो † ॥ ३३० ॥ पर शोधे हुए अनाजों में और शाक मूल फलों में (स्वामी से) सम्बन्ध न रखने वालों को सौ दण्ड और सम्बन्ध रखने वालों को पचास दण्ड देवे ‡ ॥ ३३१ ॥ जो (छीनना आदि) कर्म सामने बल से किया गया है, वह साहस है (चोरी नहीं) जो पीछे किया गया है, वह चोरी है, और जो छीनकर मुकरना है, वह भी चोरी है §

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ।
तमाद्यंदण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयद्गृहात् ॥ ३३३ ॥

* मनासिल आदि और खाने योग्य (कुल्लू०) † गौत १२ । १८
‡ मिलाओ पूर्व १९८ § याज्ञ २ । २३०

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३३४ ॥
पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नाऽदण्ड्योनामराज्ञोऽस्ति यःस्वधर्मेनतिष्ठति॥३३५

जो पुरुष (उपभोग के लिये) तय्यार की इन (ऊण आदि) वस्तुओं को चुरावे, और अग्नि गृह से अग्नि (त्रेताग्नि वा गृह्याग्नि न कि मामूली अग्नि) चुरावे उसको राजा प्रथम साहस दण्ड दे * ॥ ३३३ ॥ जिस २ अंग से चोर किसी प्रकार भी मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है, उसके उसी अंग को (वैसे पाप के) हटाने के लिये † राजा कटवा दे ॥ ३३४ ॥ पिता आचार्य, सुहृद्, पत्नी, पुरोहत कोई भी हो, राजा के लिये अदण्ड-नीय नहीं है, जो अपने धर्म पर स्थित नहीं रहता है ‡ ॥३३५॥

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३३६ ॥
अष्टापद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
षोडशैवतु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३३७ ॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥३३८॥

* और स्वामी को वस्तु वा उसका मूल्य दिलाए, अग्नियों के विषय में दुबारा अग्नि स्थापन करने में जो व्यय आए, वह दिलाए
† ताकि फिर वह वैसा पाप न करे, वा दूसरे न करें ‡ याज्ञ१।३५७

वानस्पत्यंमूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैवच ।
तृणं च गोभ्योग्रासार्थ मस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥ ३३९ ॥

जिस (अपराध) में दूसरे साधारण पुरुष को एक कार्षापण दण्ड हो, उसमें राजा को सहस्र कार्षापण दण्ड होना चाहिये यह मर्यादा है * ॥ ३३६ ॥ चोरी में शूद्र का आठ गुना अपराध होता है, वैश्य का सोलह गुना, क्षत्रिय का बत्तीस गुना, ब्राह्मण का चौसठगुना वा पूरा सौ, वा चौसठदूना (१२८ गुना) होता है, जब कि वह (शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण) उस (चोरी) के दोषगुण का जानने वाला है † ॥ ३३७-३३८ ॥ वनस्पतियों के मूल फल, और अग्नि (होत्र) के लिये लकड़ी, और गौओं के खाने के लिये घास चोरी नहीं, ‡ यह मनुने कहा है ॥

योऽदत्तादायिनोहस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥३४०॥
द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वा विक्षू द्वेच मूलके ।
आददानःपरक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥३४१॥

जो ब्राह्मण चोर के हाथ से यज्ञ कराने से वा पढ़ाने से भी धन लेने की इच्छा करे, वह (ब्राह्मण) वैसा है, जैसा चोर है (चोरवत् दण्डनीय है) ॥ ३४० ॥ पथिक (मुसाफिर)

---

* मनु० ९ । २३५ के अनुसार राजा का दण्ड ब्राह्मणों को मिले वा जलों में डाल दिया जाए (मेधा० गोवि० कुल्लू०)

† ३३७-३३८ गौत १२ ।१५-१७ ‡ मेधा गोवि० कुल्लू०नारा० राघ० के अनुसार यह नियम उन फल फूल आदि के विषय में है, जो खुले हैं, रोके हुए नहीं § गौत १२।२८ आप १।२८।३ याज्ञ० २।१६६

द्विजाति खर्च के नखुट्ट जाने पर दूसरे के खेत से दो गन्ने और दो मूली लेता हुआ दण्ड के योग्य नहीं होता है *॥ ३४१ ॥

असन्धितानां सन्धाता सन्धितानांच मोक्षकः ।
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तःस्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ३४२ ॥
अनेनविधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ।
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥३४३

न बन्धे हुओं (बेगाने पशुओं) का बांधनेवाला, और बन्धे हुओं का खोलने वाला, दास, घोड़े और रथ का लेने वाला * चोर के अपराध को प्राप्त हो (.गुरु लघु अपराध के अनुसार चोर के भिन्न २ दण्डों का भागी हो) ॥ ३४२ ॥ इस विधि से राजा चोरों का निग्रह करता हुआ इस लोक में यश को और परलोक में अत्युत्तम सुख को पाता है ॥ ३४३ ॥

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ३४४ ॥
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ३४५ ॥

[अब साहस कर्म कहते हैं] ऐन्द्रस्थान [सब पर शासन करने की पदवी] और अविनाशी अनखुट्ट यश पाना चाहता

---

* गौत १२।४९-५० देखो आगे ९।२३९—२४१

* लेने वाला=किसी तरह धोखे से उनसे अपने काम लेने वाला (नारा०) चुराने वाला (दूसरे टीकाकार)

हुआ राजा साहसी* मनुष्य की क्षणभर भी उपेक्षा न करे ॥३४४॥ वाणी की कठोरता वाले से, चोर से और दण्ड की कठोरता वाले से भी साहस का करने वाला मनुष्य अधिक पापकारी है ॥३४५॥

साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥३४६॥

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥३४७॥

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥३४८॥

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३४९॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥३५०॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्यु मृच्छति ॥३५१॥

साहस में प्रवृत्त पुरुष को जो राजा सहारता है वह जल्दी नाश को प्राप्त होता है और [तंग आई प्रजा से] द्वेष को प्राप्त होता है ॥३४६॥ राजा न मित्र के कारण न बहुत बड़ी धन प्राप्ति के कारण सब लोगों को भय में डालनेवाले साहसियों को

---

* साहस=बल के सहारे पर धक्का करना, किसी के धन या स्त्री का छीन लेना या किसी का धन नाश कर देना, आदि। ऐसा कर्मी साहसी कहलाता है। पञ्जाब में एक अन्त्यज जाति साहसी

छोड़े ॥ ३४७ ॥ द्विजातियों को शस्त्र पकड़ना चाहिए, जब कि वह धर्म [-पालन] से रोके जाएं + अथवा [बुरे] काल के कारण द्विजाति वर्णों पर कोई उपद्रव हो ॥ ३४८ ॥ अपने बचाव में, दक्षिणाओं के बचाव में जो युद्ध हो उसमें स्त्री और ब्राह्मण की रक्षा में [उपद्रवियों को] मारना धर्म है, इससे दोषी नहीं होता ॥ ३४९ ॥ [अपने बचाव के लिए तो कहीं भी दोष नहीं होता] गुरु, बाल, वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण कोई भी हो जब आततायी [प्राणों का शत्रु] बनकर आवे, तो उसे बिन विचारे मार डाले ॥ ३५० ॥ चाहे लोगों के सामने हो वा एकान्त में, पर आततायी के मारने में मारनेवाले को कोई दोष नहीं होता वहां क्रोध क्रोध का मुकाबिला करता है ॥ ३५१ ॥

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान् नॄन्महीपतिः ।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ३५२ ॥
तत्समुत्थोहि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥ ३५३ ॥

अब [स्त्री से धक्का कहते हैं] परनारी के सतभङ्ग में प्रवृत्त मनुष्यों को राजा भयावने दण्डों [नासा होंठ काटने आदि] से अङ्ग भंग करके देश से निकाल दे ॥ ३५२ ॥

कहलाती है । जो अब भी ऐसे देशों में अप्रसर है † जबकि साहसी लोग धर्म में बाधा डालें, तो ब्राह्मणों को भी और वैश्यों को भी शस्त्र उठाना चाहिए, क्या फिर राजा को, साहसियों के उपद्रव को रोकने के लिए शस्त्र उठाना साहस नहीं ❉ ३४८-३४९ वासि० ३ । ११-१८, २४ गौत० ७-२५ बौधा० १ । १८ । २४ विष्णु० ३ ५ । १८९ । १९२ ॥

क्योंकि इस [कुकर्म] से लोक में वर्णसंकर होता है, जिससे कि जड़ उखाड़ने वाला अधर्म सर्वनाश के समर्थ होता है *॥

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः ।
पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ३५४ ॥
यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।
न दोषं प्राप्नुयात्किञ्चिन्नहि तस्य व्यतिक्रमः॥३५५॥
परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहण माप्नुयात् ॥३५६॥

जिस पर पहले दोष लग चुके हैं, ऐसा पुरुष यदि एकान्त में परपत्नी के साथ बातचीत करे, तो वह प्रथम साहस दण्ड पावे † ॥ ३५४ ॥ हां जो पहले दूषित नहीं, वह यदि किसी कारण से बात चीत करे, तो उसे कोई दोष नहीं, क्योंकि उसका अपराध नहीं ॥ ३५५ ॥ जो पराई स्त्री से पानी के घाट, जंगल वा वन में, वा नदियों के संगम पर बात चीत करे, वह संग्रहण [पराई स्त्री हरने के अपराध] को प्राप्त हो ॥ ३५६ ॥

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥३५७॥
स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया ।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥ ३५८ ॥

* यज्ञ, जिनके सहारे पर शुद्ध अन्न की उत्पत्ति है, वह वर्ण संकर में पूरे नहीं होते, क्योंकि यज्ञ करनेवाले दम्पती शुद्ध होने चाहियें, † ३५४—३५८ आप० २ । २६ । १८-१९ याज्ञ० २ । २८४

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥३५९॥

उपचार कर्म, (हाथों से शरीर सेवा=लातें दाबना आदि) मखौल, भूषणों और वस्त्रों को छूना, इकट्ठे एक खाट पर बैठना, सब संग्रहण माना गया है ॥ ३५७ ॥ स्त्री के जो अस्पृश्य स्थान पर हाथ लगाए, वा उससे स्पर्श किया हुआ सहले, यह सारा संग्रहण है, चाहे इस में परस्पर की अनुमति भी हो ॥ ३५८ ॥ अब्राह्मण संग्रहण में प्राणान्त दण्ड के योग्य होता है * चारों वर्णों की स्त्रियें सदा पूरी रक्षा के योग्य हैं ॥ ३५९ ॥

भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ।
संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥ ३६० ॥
न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ३६१ ॥
नैष चारणदारेषु विधिनात्मोपजीविषु ।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चरयन्ति च ॥३६२॥

---

* दण्ड कड़ा होने से, अब्राह्मण से अभिप्राय शूद्र लेकर। शूद्र जब न चाहती हुई ब्राह्मणी को धक्के से भ्रष्ट करे, तब यह दण्ड हो, (कुल्लू०) अथवा प्राणान्त का यह अर्थ है, कि प्राण दण्ड तक दण्ड दिया जासकता है। क्योंकि ऐसी भी कुलीना पतिव्रता होती हैं, जो धक्का होने के समय अपने प्राण देने की थाह न लगने पर भी पीछे शोक में ही प्राण देदेती हैं, उनके साथ धक्का करनेवालों को प्राण दण्ड उचित ही है, (सम्पादक)

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात् संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्राजितासु च ॥ ३६३ ॥
योऽकामां दूषयंत्कन्यां ससद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयेस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः॥३६४॥
कन्यां भजन्तीं मुत्कृष्ठं न किञ्चिदपि दापयेत् ।
जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद् गृहे ॥३६५॥

भिक्षुक, स्तुतिपाठक, दीक्षा लिएहुए और कारीगर [भिक्षा आदि के लिये] बिना रोक [गृहस्थ] स्त्रियों के साथ बात चीत कर सक्ते हैं॥ ३६० ॥ रोक दिया हुआ कोई भी पुरुष किसी की स्त्री के साथ बात चीत न करे, रोकने पर बात करने वाला एक सुवर्ण दण्ड के योग्य होता है * ॥ ३६१ ॥ यह [एकान्त में बात चीत न करने की] विधि नटों की स्त्रियों में नहीं है, न स्त्रियों से जीविका करनेवालों में, क्योंकि वह आप स्त्रियों को [दूसरों से] मिलाते हैं, और छिपे रहकर उनसे व्यवहार कराते हैं † ॥३६२ ॥ किन्तु एकान्त में उनसे संभाषण करते हुए, तथा दासी, ब्रह्मचारिणी और संन्यासिनी से एकान्त में संभाषण करते हुए को थोड़ा सा दण्ड देवे ॥ ३६५ ॥

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत् पितायदि॥३६६॥
अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः ।
तस्याशु कर्त्ये अंगुल्यौ दण्डं चार्हति षट् शतम्॥३६७

* याज्ञ० २ । २८१ । † बौधा० २ । ४ । ३

सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमाप्नुयात ।
द्विशतन्तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥ ३६८ ॥

जो न चाहती हुई कन्या को दूषित करे वह जल्दी वध[अंग छेदा-दि] के योग्य है, इच्छावाली को दूषित करता हुआ वध को प्राप्त नहीं हो * ॥ ३६४ ॥ [जाति से] ऊंचे पुरुष को सेवन करती हुई कन्या को कुछ भी दण्ड न दे, नीच को सेवन करती हुई को बांधकर घर में वसाए ॥ ३६५ ॥ ऊंची कन्या को सेवन करता हुआ नीच वध [अंगछेदादि) के योग्य होता है, समजातिवाली को सेवन करनेवाली कन्या को (सेवन करने वाला) शुल्क दे [कर उसे विवाह ले] यदि पिता चाहे † ॥ ३६६ ॥ जो मनुष्य दर्प से [सजाति की] कन्या को दूषित करे, उसकी दो अंगुलियें काट लेनी चाहियें, और वह छः सौ पण दण्ड के योग्य है ॥३६७॥ कामनावाली को तुल्य जातिवाला दूषित करे, तो उसका अंगुलि छेद न हो, किन्तु आगे को प्रसंग से हटाने के लिए दो सौ दण्ड देवे ॥ ३६८ ॥

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥३६९॥
या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ।
अङ्गुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥ ३७० ॥

कन्या ही जो [अंगुलि डालने से) कन्या को दूषित करे, उसको

* ३६४—३६५ याज्ञ० २ । २८८ † पिता न चाहे, तो दुगुना दण्ड राजा को देवे (मेधा० गोवि०, राघ०)

दो सौ दण्ड हो, और दुगुना शुल्क [कन्या के पिता को) दे, और दस रस्सी के प्रहार खावे ॥३६९॥ और जो स्त्री कन्या को [अंगुलि से] बिगाड़े उसका उसी समय सिर मुण्डा कर वा दो अंगुलियें काटकर गधे पर चढाकर घुमाए * ॥ ३७० ॥

भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञाति गुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥३७१॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥३७२॥

जो स्त्री अपने मेकों के [पिता भाई आदि के धन वल आदिके] वा अपने गुण [सौन्दर्यादि] के दर्प से पति को उलांघे, [पति की प्रवाह न करके पर पुरुष से फंसे] उसको बहुत जनों से भरे स्थान में राजा कुत्तों से नोचवाए † ॥ ३७१ ॥ और उस पापी पुरुष को राजा तपे हुए, लोहे के पलंग पर [बांधकर] जलवाए, इस पर लकडियां डालें, वहां वह पापकारी दग्ध हो ॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥३७३॥
शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।
अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ३७४ ॥

* मेधा० नारा० के अनुसार यह तीन दण्ड हैं, ब्राह्मणी का सिर मूण्डे, क्षत्रिया को गधे पर चढ़ाए, वैश्या और शूद्रा की अंगुलिएं कटवाए, गोवि० कुल्लू० के अनुसार दुबारा करने में अंगुलियें काटे। † ३७१—३७२ गौत० २३ । १४—१५ विष्णु० ५ । १८

वैश्यः सर्वस्वदण्ड्यः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ॥३७५॥

जो पहले [किसी स्त्री से] दूषित होचुका है, वह यदि वर्ष के अन्दर फिर [उसी स्त्री से] दूषित हो, तो उसे (पहले से) दुगुना दण्ड हो, व्रात्या * और चाण्डाली के साथ † दुबारा वास में भी उतना ही (पहले से दुगुना ही) हो ॥ ३७३ ॥ (भर्ता आदि से) रक्षा की हुई, वा [किसी से] न रक्षा की हुई द्विजाति स्त्री को यदि शूद्र भोगे, तो न रक्षा की हुई में अंग (लिङ्ग)से और सब धन से, और रक्षा की हुई हो, तो सब से (= देह और सब धन से) हीन होता है ‡॥ ३७४॥ (रक्षा की हुई ब्राह्मणी के गमन में) वैश्य को एक वर्ष कैद और सर्वस्व दण्ड हो, क्षत्रिय को सहस्र पण दण्ड हो और (गधे) के मूत्र से मूंडा जाए

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥३७६॥
उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना॥३७७

* जिसका उपनयन नहीं हुआ, उस आर्य की स्त्री (गोवि० कुल्लू० राघ०) देखो पूर्व २ । ३९, अथवा जो ठीक समय पर विवाही नहीं गई (नारा०, मेधा०) † चाण्डाली और व्रात्या को इकट्ठा कहने का यह अभिप्राय है, कि चाण्डाली का दण्ड ही व्रात्या में भी हो, अर्थात् सहस्र पण दुगुना (२००० पण) दण्ड हो (गोवि० कुल्लू० राघ०) ‡ वासि० २१ । ५। ५ गौत० १२। २—३ आप० २।२६।२० ; २७.९ बौधा० २।३।५२ याज्ञ० २।२८६, २९४

यदि न रक्षा की हुई ब्राह्मणी का वैश्य और क्षत्रिय गमन करें, तो वैश्य को पांचसौ और क्षत्रिय को सहस्र (पण) दण्ड हो ॥३७६॥ वही दोनों यदि रक्षा की हुई (गुण वाली) ब्राह्मणी के साथ उपद्रव करें, तो उनको शूद्रवत् * दण्ड दे वा चटाई में लपेटकर जलादे † ॥ ३७७ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद् व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यःस्यादिच्छन्त्या सह संगतः॥३७८
मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥३७९॥
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥ ३८० ॥

रक्षा की हुई ब्राह्मणी का धक्के से गमन करे, तो ब्राह्मण को सहस्रपण दण्ड हो, चाहती हुई के साथ संगत हो, तो पांच सौ पण दण्ड हो ॥ ३७८ ॥ सिर मूंडना ही ब्राह्मण का प्राणान्तिक दण्ड बतलाया है, दूसरे वर्णों का दण्ड प्राणान्तिक होसक्ता है ॥ ३७९ ॥ सो ब्राह्मण को, सारे पापों में स्थित को भी, न मारे, सारे धन समेत इसे देश से बाहर करदे, कोई अंगच्छेद न करे

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ।
तस्मादस्य वधं राजा मनसाऽपि न चिन्तयेत्॥३८१
वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् ।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥३८२॥

* शूद्रवत् देखो पूर्व ३७४ † वासि० २१।२-३ आप० २।२६।२० याज्ञ० २।२८६।

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः ॥ ३८३ ॥

ब्रह्महत्या से बढ़कर कोई पाप जगत् में है नहीं, इसलिए इस के वध को राजा मन से भी चिन्तन न करे ॥ ३८१ ॥ रक्षा की हुई क्षत्रिया का यदि वैश्य गमन करे, वा वैश्या का क्षत्रिय गमन करे, तो जो न रक्षा की हुई ब्राह्मणी के विषय में दण्ड (३७६ में) कहा है, दोनों उस दण्ड के योग्य होते हैं ॥ ३८२ ॥ रक्षा की हुई क्षत्रियाका गमन करनेवाले ब्राह्मण को सहस्रपण दण्ड दिलाए, शूद्रा के विषय में क्षत्रिय और वैश्य को भी सहस्रपण ही दण्ड हो ॥

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्यं पंचशतं दमः ।
मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥३८४॥
अगुप्ते क्षत्रिया वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजास्त्रियम् ॥

न रक्षा की हुई क्षत्रिया में वैश्य को पांच सौ पण दण्ड हो, और क्षत्रिय सिर मुण्डन को प्राप्त हो, वा (पांच सौ पण) दण्ड को ही (प्राप्त हो) ॥ ३८४॥ न रक्षा की हुई क्षत्रिया, वैश्या, वा शूद्रा का गमन करता हुआ ब्राह्मण पांच सौ दण्ड के योग्य है, अन्त्यज * स्त्री के गमन में सहस्र (पण दण्ड के योग्य) है ॥ ३८५ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डघ्नौ सराजा शक्रलोकभाक् ॥३८६॥

---

* चाण्डाली (गोवि०, कुल्लू०, राघ०) धोबी, चमार, नट, शिकलीगर, धीवर, मेद और भील (नारा)

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥३८७॥
ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ।
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् ॥३८८॥
न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ।
त्यजन्नपतितानेतान् राज्ञा दण्ड्यःशतानि षट्॥३८९॥

जिसके पुर में चोर नहीं, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वाणी वाला, न साहसी, न कठोर दण्ड (मार पीट) वाला, वह राजा इन्द्रलोक (स्वर्ग) का भागी है *॥३८६॥ अपने देश में इन पांचों को दबाए रखना राजा के लिए अपने बराबर वालों में साम्राज्य देनेवाला और लोक में यश देनेवाला है ॥३८७॥ कर्म में समर्थ अदुष्ट ऋत्विज् को यदि यजमान छोड़ दे, वा ऋत्विज् (वैसे) यजमान † को छोड़ दे, इन दोनों को सौ २ पण दण्ड हो॥३८८॥ न माता, न पिता, न स्त्री न पुत्र त्याग के योग्य है, यह यदि (जाति से) पतित न हों, तो जो इनको त्यागे वह राजा से छःसौ पण दण्ड के योग्य है ‡

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान् नृपो धर्मं चिकीर्षन्द् हितमात्मनः॥३९०॥
यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥३९१॥

---

* विष्णु० ५ । १९६ † पीढियों से जिस क्षत्रिय ब्राह्मण का यज्ञ करने कराने का सम्बन्ध चला आता है (नारा०, गोवि०)
‡ याज्ञ०२ । २३७ विष्णु० ५। १६३

प्रतिवेश्यानुवेश्यौच कल्याणे विंशतिद्विजे ।
अर्हावभोजयन्विप्रो दण्ड मर्हति माषकम् ॥३९२॥
श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन् ।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैव माषकम् ॥३९३॥

आश्रमों के कर्त्तव्यों के विषय में विवाद करते द्विजों को राजा अपना भला चाहता हुआ धर्म में अपने आप कुछ न कहे ॥ ३९० ॥ किन्तु यथायोग्य इन सब को पूजकर पहले मृदु वचनों से इनको ठण्डा करके,तब (वेदवेत्ता) ब्राह्मणों के साथ (उन को) अपना कर्त्तव्य बतलाए ॥ ३९१ ॥ कोई मंगल कार्य जिस में बीस ब्राह्मण (जिमाने) हों, उसमें यदि (जिमाने के) योग्य अपने पड़ोसी वा पड़ोसी के पड़ोसी को न जिमाए, तो वह एक मासा (चांदी) दण्ड के योग्य है*॥३९२॥और एक वेदपाठी यदि दूसरे धर्मात्मा † वेदपाठी को मंगल कार्यों में न जिमाए, तो उससे दुगुना अन्न(वेदपाठी को)और मासा सोना (राजाको दण्ड) दिलाए

अन्धो जड़ः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः ।
श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥३९४॥
श्रोत्रियं व्याधितार्तौच बालवृद्धावकिञ्चनम् ।
महाकुलीन मार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ॥३९५॥

---

* याज्ञ० २।२६३ विष्णु० ५।९४

† धर्मात्मा वेदपाठी जो पड़ोसी है (गोवि०, कुल्लू०,राघ०) उसी गाओं का बासी हो, (नारा०) चाहे पडोसी न भी हो (मेधा०)

अन्धा, जड़, पीठ से चलनेवाला (लूला), सत्तर से ऊपरका बूढ़ा, और वेदपाठियों का उपकार करनेवाला, इनको (राजा) कोई भी कर न लगाए *॥३९४॥ वेदपाठी, रोगी, पीड़ित, बाल, वृद्ध, निर्धन, महाकुलीन, आर्य, (उदार प्रकृति) को राजा सदा (दान मान हित करने से) पूजे ॥ ३९५ ॥

शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः ।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ॥३९६॥
तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ।
अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥३९७
शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः ।
कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥३९८॥

धोबी सिंवल के साफ पट्टे † पर धीरे २ (वस्त्रों को) धोवे, न एक के वस्त्र दूसरे के वस्त्रों में मिलाकर रक्खे, न (किसी को) पहनावे, न पहने । (अन्यथा दण्डनीय हो) ‡ ॥ ३९६ ॥ जुलाहा दस पल (सूत) को (लेकर माया लगाने के कारण) ११ पल (वस्त्र स्वामी को तोल) दे, इससे उलटा चले, तो १२ § दण्ड

* वासि० १९ । २३-२४ आप० २। २६ । १०-१५ ॥

† सिंवल स्वभावतः साफ होता है, अभिप्राय साफ पट्टे से है, चाहे किसी का हो ‡ याज्ञ० २। २३८ § १२ पण दण्ड, २० पल वाले स्थाल में २४ पण इत्यादि (मेधा०) सूत से बारह गुना दण्ड (गोवि) सूत का बारहवां हिस्सा दण्ड (नारा०) नन्द कहता है, 'जुलाहा अपने काम के दस पल लाभ के साथ ११ वां पल राजा को कर देवे,

देवे, और वस्त्रवाले की प्रसन्नता करे * ॥३९७॥ चुंगी के स्थानों में कुशल (जिनको कोई धोखा न दे सके), विक्री की सब वस्तुओं के (सार असार को) जाननेवाले, वस्तु के अनुसार जो भाव निश्चित करें, (उसमें लाभ में से) वीसवां भाग राजा लेवे † ॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥ ३९९ ॥
शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी ।
मिथ्यावादी च संस्थाने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥४००॥
आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥४०१॥

वह द्रव्य जो राजा के प्रसिद्ध हैं ‡ और जो रोक दिए गये हैं § उनको लोभ से बाहर लेजाने वाले का राजा सब कुछ हर लेवे ॥ ३९९ ॥ चुंगी के स्थान को त्याग (कर कुमार्ग से चल) ने वाला, असमय (आधीरात) में खरीदने बेचने वाला, गिनती में झूठ बोलने वाला (घट बतलाने वाला) (जितनी चुंगी बचाता है उससे) आठ गुना दण्ड देवे ¶ ॥ ४०० ॥ व्यवहार की सब वस्तुओं की इन बातों को ठीक२ विचारकर राजा क्रय विक्रय कराए, कि कहां से आई हैं (और यहां से बाहर लेजानी हैं तो) कहां जाएंगी, कब तक पड़ी रही हैं, (वा रहेंगी), क्या ऊपर खर्च

---

* याज्ञ० २। १७९ † ३९८—३९९ याज्ञ० २। २६१ ‡ जो राजा के समझे जाते हैं, जिनको राजा भेंट के तौर पर दूसरे राजों के पास भेजते हैं, जैसे हाथी, कश्मीर में केसर वा दुशाले, पश्चिम में घोडे, दक्षिण में मणि मोती § जैसे अकाल में अनाज का बाहर जाना ¶ याज्ञ० २। २६२

पड़ा है, और कितनी घटी हैं (सूखकर वा किसी और प्रकार से)

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते ।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥ ४०२ ॥
तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ४०३ ॥

पांचवें २ दिन अथ वा पक्ष २ (पन्द्रह दिन) के जाने * पर राजा इनके सामने भाओ स्थापन करे † ॥ ४०२ ॥ तोल और माप सब (राज चिन्हों से) ठीक चिन्होंवाले हों छः २ महीने पर उनको फिर परखे ‡ ॥ ४०३ ॥

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे ।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४०४ ॥
भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः ।
रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥ ४०५ ॥

पार उतरने में छकड़े का (तारिक = मील वहरी) एक पण, पुरुष के (बोझ) का आधापण, पशु और स्त्री का चौथाई पण, खाली पुरुष का आधा पण दिलाए ॥ ४०४ ॥ बिक्री की वस्तुओं से भरे छकड़े का (वस्तु के) सार (मूल्य के अनुसार) खाली बर्तन और गरीब मनुष्यों से यत्किञ्चित तारिक दिलाए § ॥ ४०५ ॥

* जल्दी भाओ बदलने वाली वस्तुओं पर पाचवें पाचवें दिन, दूसरी वस्तुओं पर पन्द्रहवें २ दिन (कुल्लू०) इनके=सौदागरों के (राघ०) ३९८ में कहे चुंगी वालों के (गोवि० कुल्लू०) † याज्ञ० २।२५१ ‡ वासि० १९।१२ ॥ § गोनी कंबल आदि (कुल्लू०)

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत् ।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥४०६॥
गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ।
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकंतरे ॥४०७॥

लंबे मार्ग में देश और काल (वर्षा काल आदि) के अनुसार तारिक हो, यह नदी के तीर में ही समझे, समुद्र में नियम नहीं है (पहुंचाने की कठिनाई आसानी का नियम नहीं होसक्ता) ॥ ४०६ ॥ दो मास से ऊपर गर्भवाली, संन्यासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण से पार उतरनेमें तारिक न दिलाए *॥४०७॥

यन्नावि किञ्चिद्दासानां विशीर्येतापराधतः ।
तद्दासैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोऽशतः ॥ ४०८॥
एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ।
दासापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥४०९॥

नौका में मल्लाहों के अपराध से जो कुछ नष्ट हो, वह मल्लाह ही मिलकर अपने २ हिस्से से देवें ॥ ४०८ ॥ नौका पर जाने वालों के व्यवहार का यह निर्णय जल में मल्लाहों के अपराध से कहा है, दैविक (-हानि-तूफान आदि से हानि) में दण्ड नहीं होता है ॥

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥४१०॥
क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ ।
बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन्॥४११॥

* विष्णु ५ । १३२ ।

दास्यं तु कारयंल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ।
अनिच्छतःप्राभवत्याद्राज्ञा दण्डयःशतानिषट् ॥४१२॥

व्यापार, ब्याज, खेती और पशुओं की रक्षा वैश्य से करवाए और शूद्र से द्विजातियों की दासता करवाए ॥ ४१० ॥ क्षत्रिय और वैश्य जीविका से दुर्बल हों, तो ब्राह्मण दया करके उनसे उनके कर्म करवाता हुआ पालन करे* ॥४११॥ ब्राह्मण संस्कृत हुए द्विजों से यदि उनकी इच्छा के विरुद्ध प्रभुता के कारण दास कर्म (पाद धोना आदि) करवाए, तो राजा उसे छः सौ पण दण्ड देवे

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीत मेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा॥४१३॥
न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥४१४॥

शूद्र चाहे खरीदा हुआ हो, वा न खरीदा हुआ हो † उससे दास कर्म करवाले, क्योंकि ब्रह्मा ने उसको ब्राह्मण के दास कर्म के लिए ही रचा है ॥ ४१३ ॥ अपने स्वामी से आज़ाद किया भी शूद्र दासत्व से नहीं छूट सक्ता है, क्योंकि वह उसका स्वाभाविक है, कौन उससे इस (कर्म) को हटा सकता है ‡ ॥ ४१४ ॥

---

* महाधनी ब्राह्मण के लिए यह विधि है, कि निर्धन क्षत्रिय से ग्राम रक्षादि कराए, और वैश्य से खेती आदि करा उनको वृत्ति देवे

† अन्नादि से पोषण किया हुआ, वा न किया हुआ (-टीकाकार)

‡ शूद्र निर्धन से दास कर्म करवाले, चाहे पहले दास हो वा न हो, क्योंकि शूद्र के लिए दास कर्म गिरावट नहीं, जैसा कि आर्य के लिए है, यह अभिप्राय है, यह नहीं, कि शूद्र दासत्व से छूट नहीं सक्ता, क्योंकि दासत्व से छूटना आगे कहेंगे

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदात्रिमौ ।
पैतृको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥४१५ ॥
भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥४१६॥
विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत् ।
न हि तस्यास्ति किञ्चित्स्वं भर्तृहार्यधनोहिसः ॥४१७
वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदंजगत्॥४१८॥

यह सात दासत्व के कारण होते हैं, युद्ध में जीता हुआ*अन्न के लिए दास हुआ, घर में उत्पन्न हुआ † (=दासी का पुत्र) खरीदा हुआ दूसरे से दिया हुआ, पितासे प्राप्त हुआ (= दास पिताका पुत्र) दण्डदास(देना चुकाने के लिये दास हुआ) ॥ ४१५ ॥ भार्या, पुत्र और दास यह तीनों ही न धन वाले कहे हैं, वह जो पाते हैं, वह धन उसका होता है जिसके वह हैं ‡॥४१६॥ ब्राह्मण (अपने दास) शूद्र से निःशंक धन लेलेवे, क्योंकि उसका (दासका) कुछ अपना नहीं है,स्वामी उसका धन ले सक्ता है॥४१७॥वैश्य और शूद्र से राजा प्रयत्न से अपने २ कर्म करवाए, क्योंकि वह अपने कर्मों से च्युत हुए हुए इस जगत् को क्षोभ में डालते हैं ॥ ४१८ ॥

---

* ध्वजाहृत=ध्वज=लिंग, उससे लाया गया, दासी में से आप उत्पन्न किया लड़का (नारा०) † गृहजः=दास का पुत्र (नारा०) ‡ इसलिए स्त्री, पुत्र और दास को अपने कमाए धन के खर्च करने में भी पति, पिता और मालिक से स्वतन्त्र नहीं होजाना चाहिए (मेधा०)

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥४१९॥
एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान् समापयन् ।
व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥४२०॥

राजा अपने कारखाने *वाहन, (हाथी घोडे आदि) नियत आमदनी खर्च, खानों और कोश को प्रतिदिन देखे ॥ ४१९ ॥ इसप्रकार राजा इन सारे व्यवहारों को समाप्त करता हुआ सारे पाप को दूर करके परमगति को पाता है ॥ ४२० ॥

अथ नवमोऽध्यायः

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥१॥
अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥ २ ॥
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥३॥
कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

---

* कर्मान्तान्=चुंगी स्थान आदि (मेधा० गोवि०) कार्यों की सिद्धि (कुल्लू०,राघ०) शस्त्र आदि बनाने के कारखाने (नारा०)

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥
इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

(क्रम प्राप्त स्त्री पुरुष धर्म का आरम्भ करते हैं) * धर्म युक्त मार्ग में ठहरे हुए स्त्री और पुरुष के संयोग और वियोग † में जो जो सनातन धर्म हैं वह कहूंगा ॥१॥ अपने पुरुष (पिता,पति,पुत्रों) को चाहिये, कि स्त्रियों को किसी समय स्वतन्त्र न करें, और (रूप, रस, गन्ध आदि) विषयों में फंसती हुइयों को अपने वस में टिकाए रक्खें ‡ ॥ २ ॥ बालकपन में पिता रक्षा करता है, यौवन में पति रक्षा करता है, और बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करते हैं, स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ समय पर न देने वाला पिता निन्दनीय होता है, और (समय पर) पास न जाने वाला पति निन्दनीय होता है, पति के मरने पर पुत्र रक्षा न करे तो निन्दनीय होता है § ॥४॥ सूक्ष्म भी दुःसंगों से स्त्रियों की विशेषतः

---

* स्त्री पुरुष के धर्मों को व्यवहार प्रकरण में कहने का यह अभिप्राय है कि स्त्री पुरुष में से यदि कोई अपने धर्म में स्थित न रहे, तो दण्ड से भी राजा उसे अपने धर्म में स्थित करे (कुल्लू०) † पति विदेश में हो, वा मरगया हो (नारा०) ‡ ताकि इनमें उनका बहुत लगाव न होजाए (नारा०) २—३ वासि० ५ । १—२ गौत० १८ । १ बौधा० २ । ३ । ४४—४५ विष्णु० ५ । १—२ याज्ञ० १ : ८५ § यांज्ञ० १ । ६४ कन्यादान का समय देखो वासि० १७ । ६७—७१ गौत० १८ । २१ पति का पत्नी के पास जाने का समय देखो बौधा० ४ । १ । १७—१९ और पूर्व ३ । ४५

रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि न रक्षा की हुई यह दोनों कुलों में शोक लाती हैं ॥५॥ सभी वर्णों में इस धर्म को उत्तम समझते हुए दुर्बल * पति भी स्त्रियों की रक्षा के लिए यत्न करते हैं †॥६॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥७॥
पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भोभूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥८॥
यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

क्योंकि पत्नी की प्रयत्न से रक्षा करता हुआ पुरुष ही अपनी सन्तान, चरित्र अपने कुल ‡ अपने आप, और अपने धर्म की रक्षा करता है ॥७॥ पति (वीर्य रूप से) अपनी स्त्री में प्रवेश करके गर्भ बनकर फिर यहां (पुत्र रूप से) उत्पन्न होता है, जाया का जायापन यही है, जो इसमें फिर उत्पन्न होता है § ॥८॥ क्योंकि जैसे पुरुष को स्त्री सेवन करती है, वैसे पुत्र को जन्मती है इसलिए सन्तान की शुद्धि के लिये स्त्री की प्रयत्न से रक्षा करे ॥ ९ ॥

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ।
एतै रुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥
अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥११॥

---

* दुर्बल=अन्धे, लूले, गरीब आदि । † याज्ञ० १।८१ ‡ कुल कीस्थिति (नारा०) § जाया का निर्वचन ' जायतेऽस्यां पति रिति जाया '=इस में पति जन्मता है, देखो याज्ञ०१।५६ ऐत० ब्रा०७।१३

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥१२॥

धक्के से स्त्रियों की रक्षा कोई नहीं कर सक्ता, किन्तु इन उपायों के प्रयोग से वह रक्षा की जासक्ती हैं ॥ १० ॥ धन के संग्रह और लगाने में, (वस्तुओं और शरीर की) शुद्धि में, (भर्त्ता और अग्नि की सेवा आदि) धर्म में, अन्न पकाने में, और घर के साधनों (मंजे, वस्त्र, आदि) के देखने में इन को लगाए ॥ ११ ॥ विश्वासी और आज्ञाकारी पुरुषों से घर में रोकी हुई भी अरक्षित होती हैं (जो दुःशीलता से आप अपनी रक्षा नहीं करतीं) किन्तु जो आप अपनी रक्षा करती हैं, वही सुरक्षित हैं (इसलिए इनके चित्त में धर्म विठाना चाहिये, यही मुख्य उपाय है)

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥१३॥
नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥

(मद्य-) पान, दुर्जनों की संगति, पति से वियोग, इधर उधर घूमना, (असमय) सोना और दूसरे के घर में वास, यह छः स्त्रियों को बिगाड़नेवाले हैं ॥ १३ ॥* न यह (सुन्दर) रूप की परवाह करती हैं, न इनका अवस्था (यौवन) में आदर है, सुरूप हो वा विरूप यह पुरुष है इतने से ही भोगती हैं

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैः स्नेह्याच्चस्वभावतः ।
रक्षिता यत्ततोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥ १५ ॥

---

* इस से आगे स्त्रियों की अनुचित निन्दा है, जो पहली प्रशंसा से विरुद्ध भी है ।

एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणंप्रति ॥ १६ ॥
शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् ।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्योमनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥

पुरुष की ओर प्रेरी जाने से, चित्त की चञ्चलता से, स्वभावतः स्नेह शून्य होने से, यह यत्न से रक्षा की हुई भी अपने भर्त्ताओं में विकार को प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥ प्रजापति की सृष्टि काल से उत्पन्न हुआ उनका ऐसा स्वभाव जानकर रक्षा के लिए पुरुष पूरा यत्न करे ॥१६॥ लेटना, बैठना, (अपने आपको) सजाना, काम, क्रोध, टेढ़ापन, द्रोह, कुचाल यह मनु ने स्त्रियों के लिए स्थिर किये हैं ॥ १७ ॥

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरितिधर्मे व्यवस्थितिः ।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमितिस्थितिः ॥१८॥
तथा च श्रुतयो बह्वयो निगीता निगमेष्वपि ।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥
यन्मेमाता प्रलुलुभे विचरन्त्यऽपतिव्रता ।
तन्मे रेतः पिता वृंक्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २० ॥
ध्यायत्यानिष्टं यत्किंचित्पाणिग्राहस्य चेतसा ।
तस्यैष व्यभिचारस्य निन्हवः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥
याद्दग्गुणेनभर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
ताद्दग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥ २३॥
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥

स्त्रियों का मन्त्रों से कर्म (संस्कार) नहीं है, * यह मर्यादा है, स्त्रियें शक्ति से हीन † (वेद) मन्त्रों से हीन, झूठ (रूप) है, यह मर्यादा है ॥ १८ ॥ इस विषय पर बहुत सी श्रुतियें (स्त्रियों के) अपने लच्छन (व्यभिचार) की परख के लिए गाई गई हैं, उन (श्रुतियों) में से (उनके व्यभिचार की) प्रायश्चित्त श्रुति सुनो ॥१९॥"विचरती हुई मेरी माता अपतिव्रता बनकर यदि प्रलोभन में आई हो, तो उस बीज को मेरा पिता शोधन करे", ‡ इस (=व्यभिचार) का यह दृष्टान्त है॥२०॥ मन से अपने पति का स्त्री जो अनिष्ट चिन्तन (मानस व्यभिचार) करती है, उस व्यभिचार का यह प्रायश्चित्त है § ॥२१॥ जैसे गुणवाले भर्ता से स्त्री (विवाह-) विधि अनुसार युक्त होती है, वैसे गुणोंवाली वह होती है, जैसे नदी समुद्र से ¶ ॥ २२ ॥ नीच जाति में उत्पन्न

* मिलाओ पूर्व २ । ६६ † धीरज प्रज्ञा बल आदि से हीन (मेधा०) ‡ यह वाक्य कुछ थोड़े से भेद से शाङ्खायन गृह्यसूत्र ३ । ३ में पढ़ा है । यद्यपि यह वाक्य अन्यतरकरण ने कहा है, तथापि चातुर्मास्य में हरएक यजमान इसे पढता है, और अन्वष्टका श्राद्ध में हर एक पुरुष पढ़ता है इससे हरएक स्त्री के चित्त की चञ्चलता सम्भावित है § अर्थात् यह ऊपर के वाक्य का जप। स्त्री के मानस व्यभिचार का जो कुसंस्कार पुत्र में आता है, वह इस जप से दूर होता है ¶ मीठी नदी समुद्र से मिलकर खारी हो जाती है, कविता में समुद्र नदियों का पति कहा जाता है ॥

हुई अक्षमाला वसिष्ठ से युक्त होकर, और शारङ्गी मन्दपाक से युक्त होकर पूज्यता को प्राप्त भई ॥२३॥ यह तथा और भी नीच जन्मवाली स्त्रियें अपने २ पतियों के शुभ गुणों से इस लोक में उत्तमता को प्राप्त हुई हैं ॥ २४ ॥

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्री पुंसयोःशुभा ।
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥

यह स्त्री पुरुष का सदा शुभ लोक व्यवहार कहा है, अब लोक परलोक में सुख देनेवाले सन्तान के धर्मों को जानो ॥ २५ ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियःश्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ २६ ॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ॥२७॥

उत्पत्ति के लिये बडा उपकार करने वाली (वस्त्रभूषण आदि से) पूजा के योग्य घर की शोभा हैं, स्त्रियें और श्री घरों में एक तुल्य हैं, इन में कोई विशेष नहीं (जैसे श्री हीन घर शोभा वाला नहीं होता, वैसे स्त्री हीन भी) ॥ २६ ॥ सन्तान का उत्पादन, उत्पन्न हुए का पालन, और प्रति दिन (अतिथि मित्रादि के भोजन आदि) लोक व्यहार का स्त्री प्रत्यक्ष कारण है ॥ २७ ॥

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्चह ॥२८॥
पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीतिचोच्यते ॥२९॥

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ३० ॥
पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महार्षिभिः ।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥
भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि ।
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

सन्तान, धर्म के कार्य (अग्निहोत्रादि), सेवा, उत्तम प्रीति, तथा पितरों का और अपना स्वर्ग स्त्री के अधीन है ॥ २८ ॥ जो (स्त्री) मन वाणी शरीर को रोककर पति से व्यभिचार नहीं करती है, वह पति लोकों को प्राप्त होती है, और सत्पुरुषों से साध्वी (पतिव्रता) कही जाती है * ॥ २९ ॥ पति से व्यभिचार से स्त्री लोक में निन्दा को प्राप्त होती है, और गीदड़ की योनिको प्राप्त होती है, और पाप रोगों (कुष्ठ आदि) से पीड़ित होती है † ॥ ३० ॥ पुत्र के विषय में पूर्वज महर्षियों और दूसरे विद्वानों से कहे इस पवित्र, सब लोगों के हितकर विचार को जानो ॥ ३१ ॥ (सब) जानते हैं, कि (स्त्री का) पुत्र (उसके) भर्ता का होता है, पर भर्ता के विषय में श्रुति दो प्रकार की है, कई तो उत्पन्न करने वाले को (पुत्रवाला) कहते हैं, दूसरे क्षेत्रवाले (जिस की वह स्त्री है उस) को ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ।
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥

---

* मिलाओ ५ । १६५ † शान्ति २१ । १४ और पर्व ५ । १६४

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित ।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिःप्रशस्यते ॥ ३४ ॥
बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ।
सर्वभूतप्रसूति र्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥
यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥३६॥

(इस विवाद की मीमांसा करते हैं) स्त्री क्षेत्ररूप कही गई, और पुरुष बीज रूप कहा गया है, क्षेत्र और बीज के मेल से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है ॥ ३३ ॥ कहीं बीज बढ़ कर रहता है कहीं स्त्री की योनि, जहां दोनों तुल्य हों वह उत्पत्ति प्रशंसनीय है ‡ ॥ ३४ ॥ बीज और योनि में से बीज प्रधान कहा जाता है, क्योंकि सब भूतों की उत्पत्ति बीज के चिन्हों (रंग आकारादि) से चिन्हित होती है ॥ ३५ ॥ जैसा बीज ठीक समय पर तय्यार किये क्षेत्र में बोयाजाता है, वैसा वह बीज अपने गुणों से चिन्हित उस (क्षेत्र) में उगता है ॥३६॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ।
न च योनिगुणान् कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥३७
भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ।
नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥३८॥

‡ बीज की प्रधानता, जैसे व्यास ऋष्यशृङ्गादि में (जो अब्राह्मणी में से भी ब्राह्मण के बीज से ब्राह्मण हुए) क्षेत्र की प्रधानता धृतराष्ट्र आदि में (जो क्षत्रिय के क्षेत्र में ब्राह्मण के बीज से भी क्षत्रिय हुए) दोनों तुल्य अर्थात् जहां विवाहने वाला ही उत्पादक है (मेधा० कुल्लू०

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ।
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥ ३९ ॥
अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

यह भूमि भूतों (वृक्ष बेल आदि) की सनातन योनि कही जाती है, पर कोई भी बीज अपने परिणाम (उगने बढ़ने) में योनि (इस भूमि) के गुणों को नहीं परिणत करता है * ॥ ३७॥ भूमि में एक क्यारी में भी किसानों से समय पर बोए बीज अपने २ स्वभाव से नाना रूपों वाले उत्पन्न होते है ॥ ३८ ॥ साठी, धान, मूंग, तिल, माष (उड़द) जौ, लहसन और ईख बीज के अनुसार उगते हैं ॥ ३९ ॥ बोया हो कुछ और उत्पन्न कुछ और हो यह नहीं होता है, जो २ बीज बोयाजाता है, वही वह उगता है (इस लिये मनुष्यों में भी बीज की ही प्रधानता है)

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥ ४१ ॥
अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
यथाबीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥
नश्यतीषुर्यथा विद्धः खेविद्धमनु विद्ध्यतः ।
तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥ ४३ ॥
पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ।
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥४४॥

---

* जिस का बीज है, उसके डाल डालियां फूल पत्ते निकलते हैं, न कि पृथिवीका रूप आकार

इस लिये बुद्धिमान्, सुशिक्षित, ज्ञान विज्ञान के जानने वाले और दीर्घ आयु चाहने वाले को कभी पराई स्त्री में बीज नहीं बोना चाहिये ॥ ४१ ॥ इस (विषय) में भूतकाल के जानने वाले वायु से गई गाथाएं गाते हैं, कि जैसे पुरुष को पराई स्त्री में बीज नहीं बोना चाहिये ॥ ४२ ॥ जैसे (किसी से) बींधे गए मृग के उसी छिद्र में वह फैंका गया बाण बींधने वाले का नष्ट होता है (निष्फल जाता है मृग पहले बींधने वाले को मिलता है) वैसे पर स्त्री में बीज जल्दी नष्ट हो जाता है (उसी समय गर्भ का मालिक क्षेत्र वाला होता है) ॥ ४३ ॥ पूर्व समय के जानने वाले इस पृथिवी को भी पृथु की भार्या कहते हैं *झाड़ियां काटने वाले का क्षेत्र कहते हैं, और शल्य वाले का मृग ॥ ४४ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेतिह ।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥ ४५ ॥
न निष्क्रय विसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापति निर्मितम् ॥ ४६ ॥
सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥ ४७ ॥
यथा गोश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ।
नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥ ४८ ॥

* यद्यपि पृथिवी के अनेक मालिक होचुके हैं, पर पहले पहल पृथु ने ही इसे खेती के योग्य बनाया, इस लिए इसको पृथिवी वा पृथ्वी अर्थात् पृथु की भार्या कहते हैं ।

जो पत्नी पुत्र और अपना आप है यह पूरा पुरुष है, * इसलिये विद्वान् कहते हैं, जो भर्त्ता है, वह स्त्री कही गई है ॥४५॥ न निष्कृति (चुकाव) ले लेने से, न छोड़ देने से भार्या भर्त्ता से छूट सक्ती है, इसप्रकार हम पूर्वकाल में प्रजापति से बनाई मर्यादा जानते हैं † ॥ ४६ ॥ एकवार (भाइयों का) विभाग होता है ‡ एकवार कन्या दीजाती है, एकवार देने का वचन कहा जाता है, यह तीनों सत्पुरुषों के एकवार होते हैं § ॥४७॥ जैसे गौ, घोड़ा, ऊंटनी, दासी, भैंस, बकरी और भेड़ में उत्पन्न करनेवाला, प्रजा का भागी नहीं होता, वैसे दूसरी स्त्रियों में भी॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ।
ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥४९
यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥५०॥
तथैवाऽक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ।
कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ॥५१॥
फलं त्वनभिसन्धाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा ।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

---

* अर्थात् पत्नी अर्धाङ्गी होने से, और पुत्र आत्मज होने से अपना रूप ही है देखो आप०२।१४।१६ † आर्य धर्मशास्त्रों में तलाक किसी तरह नहीं है, और यह मर्यादा आदि सृष्टि से मानी गई है ‡ भाई जो एकवार बांट लेते हैं, उसी को स्थिर मानते हैं, पछताकर उलट पलट नहीं करते

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ।
तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिकएव च॥ ५३ ॥

जो बीजवाले क्षेत्र के स्वामी न होकर पर क्षेत्र में बोते हैं, वह उत्पन्न हुई खेती का कहीं (किसी देश में भी) फल नहीं पाते हैं ॥ ४९ ॥ अपना सांड यदि दूसरों की गौओं में सौ बछड़े भी उत्पन्न करें, वह गौओं के स्वामियों के ही बछड़े होते हैं, सांड का वीर्य सेचन (मालिक के लिये) व्यर्थ जाता है*॥५०॥ वैसे ही अक्षेत्री का बीज (निष्फल होता है) पर क्षेत्र में बोने वाले क्षेत्रवालों का काम संवारते हैं, बीजवाला फल नहीं पाता है ॥ ५१ ॥ क्षेत्रवालों और बीजवालों में फल का संकेत (कि इसकी उपज हमारी सांझी होगी) न हुआ हो, वहां प्रत्यक्ष क्षेत्रवालों का काम बनता है, इसलिए बीज से योनि बड़ी है ॥ ५२ ॥ हां पहले नियम करके जब यह (क्षेत्र) बीज (बोने) के लिए दिया जाता है, उसके इस लोक में बीजवाला और क्षेत्रवाला दोनों भागी देखे गये हैं ॥

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥
एषधर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ।
विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रभवं प्रति ॥ ५५ ॥
एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥

* याज्ञ० १। ६१ ; वासि० १७।८

जो बीज प्रवाह और आंधी द्वारा (कहीं से) लाया हुआ जिसके क्षेत्र में उगता है, वह बीज क्षेत्रवालेका ही होजाता है, बोने वाला फल नहीं पाता है ॥ ५४ ॥ *यही मर्यादा गो, घोड़े, दासी, ऊंट, भेड़, बकरी, भैंस और पक्षियों की सन्तान के लिए जाननी चाहिए ॥ ५५ ॥ यह तुम्हें बीज और योनि की प्रधानता अप्रधानता कही है, इससे आगे आपत्ति में † स्त्रियों का धर्म कहूंगा ॥ ५६ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥५७
ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान् वाग्रजास्त्रियम् ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥५८॥
देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताऽधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥५९॥

जो बड़े भाई की भार्या है, वह छोटे की गुरुपत्नी ‡ है, जो छोटे की भार्या है, वह बड़े की स्नुषा (पुत्र वधू) है ॥ ५७ ॥ आपत्काल के बिना (=सन्तान के होते हुए) बड़ा छोटे की भार्या और छोटा बड़े की भार्या के पास जाए, तो पतित होते हैं, चाहे वह नियुक्त भी हों § ॥ ५८ ॥ (अपने पति से) सन्तान के अभाव में भली भान्ति नियुक्त ¶ हुई स्त्री को चाहिए,

*यही मर्यादा जो ४८-१४ में कही है † जब उनके सन्तान न हो ॥

‡ गुरु से अभिप्राय यहां पिता है, (राघ०) § ५८—६३ वासि० १७।५६-६१ गौत० १८।४-८ बौधा० २।४।९-१० याज्ञ० १।६८-६९ ¶ नियुक्त =आज्ञा दी हुई-पुत्र के अभाव में पत्नी अपने पति से आज्ञा दी जासक्ती है, और पति के मरने के पीछे दूसरे ज्ञातियों से (गोवि०)

कि देवर से, वा सपिण्ड से अभीष्ट * सन्तान उत्पन्न करे॥५९॥

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन ॥ ६० ॥
द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ।
अनिर्वृत्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥
विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम्॥ ६२ ॥

विधवा † के साथ नियुक्त पुरुष (शरीर पर) घी मलकर वाणी को रोके हुए एक पुत्र उत्पन्न करे दूसरा किसी तरह नहीं॥६०॥ पर दूसरे उस (नियोग विधि) के जानने वाले (एक से) नियोग का प्रयोजन न सिद्ध हुआ मानते हुए ‡ उन दोनों का दूसरा (गर्भ धारण) धर्म से मानते हैं ॥ ६१ ॥ विधवा में विधि अनुसार नियोग का अर्थ (गर्भ धारण) सिद्ध होने पर वह दोनों § परस्पर गुरु की तरह और स्नुषा की तरह वर्तें ॥ ६२॥

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः ।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥ ६३ ॥

---

* अभीष्ट=अर्थात् पुत्र, न कि कन्या वा नपुंसक। सो यदि पुत्र न हो, तो पुत्र के लिये फिर प्रवृत्ति इसी से कही गई (नारा०)

† विधवा=सन्तानोत्पादन के योग्य न पतिवाली, क्योंकि पति के जीते हुए भी अयोग्य पति से आज्ञा दीजाती है, जैसे कुन्ती पाण्डु से (टीकाकार) ‡ एक पुत्र न के बराबर होता है, यह शिष्ट कहते हैं (मेधा०, गोवि०, कुल्लू० राघ०) § वह दोनों बड़ा भाई और छोटे की भार्या ॥

नियुक्त जो (स्त्री पुरुष) विधि त्याग कर अपनी कामना से वर्तें, वह दोनों पतित होते हैं अर्थात् (वड़ा हो तो) पुत्रवधू गामी होगा, [छोटा हो तो] गुरुपत्नी गामी होगा ॥ ६३ ॥

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥६५॥

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥

समहीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥

यस्या म्रियेत्कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥

यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ७० ॥

द्विजातियों को विधवा स्त्री दूसरे के साथ नियुक्त नहीं करनी चाहिये, क्योंकि दूसरे के साथ नियुक्त करते हुए

सनातन धर्म का हनन करेंगे * ॥ ६४ ॥ विवाह वाले मन्त्रों में

* यह नियोग का विषय यहां मनु में विशेषतः विचारणीय है। ५९-६३तक नियोग का स्पष्ट विधान है। ६४से६८तक निषेध है। फिर ६९ में एक नया विधान है। यह परस्पर विरोध कैसे? इसके उत्तर यह दिए गए हैं-श्लोक ५९ में सन्तान के अभाव में नियोग कहा है, चाहे स्त्री विधवा हो,वा नपुंसक वा सदा रोगी पतिवाली सधवा। पर श्लोक६४में विधवा के नियोग का निषेध है। नपुंसक वा रोगी पति वाली का नहीं, इसलिए नपुंसक वा रोगी पतिवाली का नियोग हो, विधवा का न हो, यह व्यवस्था है, (इति के चित्) इसका खण्डन- 'विधि वाक्य(श्लोक५९में)नियोग का निमित्त सन्तानका अभाव कहा है, वह जैसे व्याधित और नपुंसक पतिवाली के लिए है, वैसे मृत पति वाली के लिए भी है, इसलिए विधवा का अर्थ पति संबन्ध से रहित है। वह मृतपति की तरह व्याधित नपुंसक पतिवाली के भी तुल्य ही है। अवश्य यही अर्थ लेना चाहिए, अन्यथा श्लोक ६० में कहा घी मलकर जाने आदि का नियम भी विधवा के विषय में होगा, व्याधित नपुंसक पतिवाली के विषय में नहीं, इसलिए यह व्यवस्था ठीक नहीं है, (मेधा०) तो फिर क्या व्यवस्था है? 'व्यासादि के दृष्टान्त से क्षेत्रज सन्तान के लिए सपिण्डों को बड़ों के नियोग (हुक्म) की ज़रूरत है (जैसा कि व्यास माता के हुक्म से विचित्रवीर्य की स्त्री के पास गया—सम्पादक) इस अभिप्राय से देवरादि से नियोग है,क्योंकि महात्माओं की प्रवृत्ति राग से माननी उचित नहीं। और निषेध जो है, वह काम=राग से प्रवृत्ति के लिए है, जो राजा वेन के समय होगई थी, (देखो ६७) ऐसी प्रवृत्ति ही प्रायः लोगों की होसक्ती है, इसलिए निषेध किया है, जो श्लोक ६५ में कहा है, कि विवाह सम्बन्धी मन्त्रों में नियोग नहीं कहा, इस से विवाह सम्बन्धी मन्त्रों में नियोग का आज्ञा नहीं, सो ठीक है, वहां आज्ञा नहीं, पर वहां निषेध भी नहीं। और आज्ञा अन्यत्र स्पष्ट है,—'को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ' (ऋग्० १०। ४०

कहीं नियोग नहीं कहा है, न विवाह के विधान में विधवा का

२) अर्थात् जैसे विधवा स्त्री देवर को अपना पति बनाकर एक शय्या पर अपनी ओर झुकाती है (मेधा०) (अर्थात् मेधा० के आशय से नियोग=बड़ों का हुक्म मानकर प्रवृत्ति है, न कि राग से प्रवृत्ति । प्रायः लोगों में राग प्रबल होता है, सो नियोग की खुली आज्ञा देने में सच्चा नियोग तो कहीं होगा । झूठे नियोग प्रायः हुआ करेंगे, इसलिए कहकर निषेध कर दिया-सम्पादक)'जो यह नियोग कहा है उसका अनुष्ठान आजकल के लोगों से कठिन है, इसलिये अनुष्ठान नहीं करना चाहिए, यह ६४—से ६८ तक पांच श्लोकों से कहा है (नन्दन) नियोग का विधान करके पुनर्विवाह का निषेध है, नहीं तो विधि और निषेध का परस्पर विरोध होगा । सो नियोक्तव्या =विवाह की आज्ञा नहीं देनी चाहिए, उद्वाहक मन्त्र ' अर्यमणं नु देव इत्यादि । विवाह विधि=ब्राह्मोदेव इत्यादि । पशुधर्म=पुनर्विवाह। प्रमीतपतिका=जिसका पति मर गया है,पर पुत्र है।अपत्यार्थ=संतान के लिए,जब कि संतान पहले है(राघ०)(सो राघवानन्द के अभिप्राय से नियोग उचित है,पुनर्विवाह निन्दित है,पर अर्थ बहुत खींचा हुआ है-संपादक) श्लोक ६४ में दूसरे के साथ अर्थात् देवर वा सपिण्ड से भिन्न के साथ नियोग का निषेध है, यह भी व्यवस्था कीगई है, (पर अगले श्लोकों से स्वरसतः खण्डन ही झलकता है-संपादक) श्लोक ६९-७० के विषय में टीकाकार कहते हैं, कि नियोग के प्रकरण से वाग्दत्ता (सगाई की हुई) के विषय में यह नियम है, कि यदि वाग्दत्ता का पति मर जाए, तो उसे देवर विवाह ले, और एक ऋतु में एक ही वार उसके पास जाए, और वह स्त्री वस्त्र श्वेत रक्खे । मिताक्षरा में यह व्यवस्था की है, कि विधवा के नियोग का विधान करके फिर निषेध कर दिया, तिस पीछे श्लोक ६९-७० से यह बतलाया, कि वाग्दत्ता का नियोग ठीक है, विधवा का नहीं (याज्ञ० १ । ६९ पर मिताक्षरा) (पर आचार इसके विरुद्ध है । वाग्दत्ता को फिर निःशंक अन्यत्र विवाह देते हैं, न कि देवर ही के साथ नियुक्त ही करते हैं—संपादक)॥

पुनर्विवाह कहा है ॥ ६५ ॥ यह निन्दित, पशुओं का धर्म वि-

संपादक की स्वतन्त्र सम्मति(१) नियोग स्मृति विहित है; यह निर्विवाद धर्मसूत्रों में भी विधान है, दृष्टान्ततया गौतम धर्मसूत्र अध्याय १८- " अपतिरपत्यलिप्सुर्देवरात् ॥ ४ ॥ "=पतिहीना स्त्री देवर से सन्तान पाने की इच्छा करे। " गुरुप्रसूता नर्तुमतीयात् ॥ ५ ॥ " बड़ों से आज्ञा दी हुई ऋतुकाल को न उलांघे। पिण्डगोत्रर्षिसम्बन्धेभ्यो योनिमात्राद्वा ॥ ६ ॥ अथवा सपिण्ड सगोत्र, सप्रवर से, वा योनि मात्र=ब्राह्मणजाति मात्र से (सन्तान पाना चाहे) " नादेवरादित्येके ॥ ७ ॥ " कई कहते हैं, देवर के बिना नहीं। "नातिद्वितीयम् ॥ ८ ॥ " दूसरे को उलांघकर न उत्पन्न करे। " जनयितुरपत्यम् ॥ ९ ॥ " सन्तान उत्पन्न करने वाले की होती है। " समयादन्यस्य ॥ १० ॥ " पर संकेत कर लेने से दूसरे (क्षेत्रवाले) की होती है (जैसे विचित्रवीर्य के क्षेत्र में व्यास से) " जीवतश्च क्षेत्रे ॥ ११ ॥ " जीते हुए के क्षेत्र में भी होती है (जब वह नपुंसक वा व्याधित) हो। इस प्रकार स्पष्ट विधि है। निषेध नहीं (२)पराशर स्मृति आदि में कलियुगमें नियोग का निषेध भी प्राचीन विधि का द्योतक है (३) सारी स्मृतियों में १२ प्रकार के पुत्रों में से क्षेत्रज पुत्र औरस के तुल्य पिता का दाय भागी होता है। (देखो आगे ९। १४५) (४) दायभागी होने में धर्म सन्तान होना हेतु भी दिया है, (९। १९१) (५) निःसन्तान मरे भाई का धन सम्भाल कर उसकी स्त्री में मरे भाई के लिए पुत्र उत्पन्न करके वह धन उसको देने की आज्ञा भी है (९। १४६)। इत्यादि प्रबल हेतुओं से नियोग धर्मशास्त्र विरुद्ध वा मानवधर्म-शास्त्र विरुद्ध नहीं होसक्ता। इसीलिए टीकाकार भी विधि-निषेध की कोई न कोई व्यवस्था करते हैं। और जैसा कि मनु की प्रायः चाल है, कि विषय के आरम्भ में उस के आरम्भ की प्रतिज्ञा करते हैं, और समाप्ति में समाप्ति जितलाते हैं। इसीतरह

द्वारा द्विजों ने मनुष्यों का भी बतलाया, जब वेन राज्य शासन

नियोग के आरम्भ में स्त्रियोंका आपद्धर्म कहने की (५६ में) प्रतिज्ञा करके दायभाग के आरम्भ में पिछले प्रकरण की समाप्ति करते हुए फिर कहा है (१०३ में) कि आपत्काल में (स्त्री के लिए) सन्तान की प्राप्ति कही है। इसलिए नियोग मनु का निःसन्देह अभिमत विषय है। जो व्यवस्था मिताक्षरा में की है। कि नियोग है ठीक, पर वह वाग्दत्ता का पति मरने पर होता है, यह आचार विरुद्ध है। वाग्दत्ता का पति मरने पर तो विवाह देते हैं, नियोग नहीं होता, किञ्च आगे ९७ में कहेंगे, कि जिसका शुल्क दिया गया है, ऐसी वाग्दत्ता का पति मर जाए, तो वह देवर को विवाह दीजाए, पर यदि कन्या मानले। सो जब मूल्य दीहुई, वाग्दत्ता को भी धक्के से देवर के साथ विवाह देना मनु को अभिमत नहीं, तो ऐसी वाग्दत्ता जो पुण्य की गई है, न कि बेची गई, भला उसका धक्के से (न कि उसकी इच्छा से) वह भी नियोग (न कि विवाह) मनुको कब अभिमत होसक्ता है। इसलिए 'वाचा सत्ये कृते, से वाग्दत्ता अभिप्रेत नहीं। किन्तु विवाह की प्रतिज्ञाओं से अभिप्राय है। और कन्या से अक्षता अभिप्रेत है। अर्थात् यदि विवाह मात्र हुआ हो, और कन्या अक्षता हो, तो उसको उसका देवर उक्त विधि से विवाह सक्ता है।

अस्तु जब नियोग विहित है, तो फिर ६४ से ६८ तक निषेध क्यों। सम्भावित तो है, कि यह श्लोक प्रक्षिप्त हों, पर इतने पुराने अवश्य हैं, कि विक्रमादित्य के समय में थे, क्योंकि मिताक्षरा में इन पर विचार है, और उस से भी बहुत पहले बृहस्पति स्मृति के समय में भी थे, क्योंकि उसमें भी इनकी चर्चा है। सो यदि असली ही माने जाएं, तो इसकी व्यवस्था जैसी बृहस्पति ने की है, वही ठीक होगी, जैसा कि कुल्लू० ने ६८ की टीका में उद्धृत किया है, उक्तो नियोगो मुनिना निषिद्धः स्वयमेव तु। युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः = मुनि ने नियोग कहा है, और आपही निषेध किया है, क्योंकि युग के क्रम से अब और लोगों से विधि अनुसार

करता था ॥ ६६ ॥ वह सारी पृथिवी का पालन करता हुआ राजऋषियों में मुखिया, काम से नष्ट बुद्धि होकर वर्ण संकर करता भया ॥ ६७ ॥ तब से लेकर जो कोई पुरुष मोह से मरे पति वाली स्त्री को सन्तान के लिए नियुक्त करता है, उस को भले पुरुष निन्दते हैं ॥ ६८ ॥ जिस कन्या का वाणी से सत्य किया जाने पर पति मरजाए, उसको इस विधि से अपना देवर विवाहे ॥ ६९ ॥ (देवर) विधि अनुसार इसे स्वीकार करके श्वेत वस्त्रों वाली पवित्र व्रतों वाली को गर्भ ग्रहण तक ऋतु २ में एक २ वार एकान्त में गमन करे ॥ ७० ॥

न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥७१॥
विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् ।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मनाचोपपादिताम् ॥७२॥
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ।
तस्य तद्वितथं कुर्यात् कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥७३॥
विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत् कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्शिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥७४॥

कन्या किसी एक को देकर बुद्धिमान् फिर किसी दूसरे को न दे, क्योंकि देकर फिर देता हुआ पुरुष के विषय में झूठ (के अप-

किया नहीं जासक्ता । अर्थात् अब वह समय नहीं रहा, कि केवल आज्ञा मानकर प्रवृत्ति हो, नियुक्त स्त्री पुरुषों में राग का लेश कभी उत्पन्न न हो, इसलिए निषेध किया है ताकि नियोग उच्च उद्देश्य से नचीचे गिर जाए ॥

राध सहस्रपण दण्ड *) को प्राप्त होता है † ॥ ७१ ॥ विधि अनुसार ग्रहण करके भी कन्या का त्यागकर सक्ता है, यदि वह निन्दित हो ‡ रोगिणी हो, (किसी पुरुष से) दूषित हो चुकी हो, वा धोखे से दीगई हो § ॥ ७२ ॥ जो दोषवाली कन्याको विन बतलाए दे देवे, उस दुरात्मा कन्यादाता के उस (दान) को निष्फल कर देवे ¶ ॥ ७३ ॥ काम पड़ने पर पुरुष अपनी पत्नी की जीविका (का प्रबन्ध) करके परदेश जाए, क्योंकि जीविका के अभाव से तंग हुई स्त्री शीलवाली भी बिगड़ जाती है

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियम मास्थिता ।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥७५॥

जीविका देकर पति परदेश जावे, तो नियमों के आश्रित रहे, (शरीर की सजावट, मेले में जाना, वा पर घर जाना आदि न करे) यदि जीविका न देकर परदेश जाए; तो दोष शून्य दस्तकारियों से जीविका करे ‖ ॥ ७५ ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरःसमाः ।
विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तुवत्सरान् ॥७६

धर्म कार्य के लिए परदेश गये पुरुष की आठ वर्ष, विद्या (प्राप्ति) और यश (विद्यादान वा विजय) के लिए छः वर्ष, और उपभोग (सैर आदि) के लिये तीन वर्ष(स्त्री) प्रतीक्षा करे**

---

* देखो पूर्व ८।९८ † याज्ञ० १ । ६५ विष्णु० २५।९—१० ‡ दुष्कुलीना § कुलवहरी आदि दोष ढांप कर दीगई हो ¶ देखो पूर्व ८। २०५, २२४ ‖ याज्ञ० १।८४ ।

** वासि० १७।७५—८० गौत० १८।१५, १७। इतने २ वर्ष प्रतीक्षा करके फिर क्या करे, यह यहां कुछ नहीं कहा । कुल्लू०

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥७७॥
अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तमेव वा ।
सा त्रीन्मासान्परित्याज्या सविभूषणपरिच्छदा ॥७८॥

द्वेष करती हुई स्त्री की पति एक वर्ष प्रतीक्षा करे वर्ष के पीछे दिया (भूषण आदि) लेकर इसे साथ न वसाए (अलग करके अन्न वस्त्र देता रहे) ॥ ७७ ॥ जो स्त्री प्रमादी (जुए आदि में लगे), शराबी, रोग पीड़ित पति को उलांघे *, उसे भूषण और शय्यादि से रहित करके तीन महीने त्याग देना चाहिए ॥७८॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्त्तनम् ७९
मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाऽधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ॥८०॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥८१॥

हां पागल, पतित,नपुंसक, बीजसे रहित, और पाप रोगी से द्वेष करती हुई का न त्याग हो, न दिये (भूषण आदि) का

राघ०, कहते हैं, फिर पति के पास चली जाय। नन्दन कहता है, कि इस अवधि के पीछे दूसरा पति कर लेने में दोष नहीं है, यह अभिप्राय है,और जो मरे पति वालियों के लिये ब्रह्मचर्य बतलाया है। वह बहुत बढिया फल चाहने वालियों के लिये है, दूसरियों के लिये नहीं, इस लिए उस से इस वचन का विरोध नहीं ॥

* उलांघना=अपमान करना, वा पथ्य औषध आदि न करना ।

छीनना हो ॥ ७९ ॥ मद्य पीनेवाली, खोटे आचार वाली और जो (पति के) प्रतिकूल हो, सदा रोगिणी हो, (नौकरों और बच्चों को) ताड़नेवाली, और धन के नाश करनेवाली हो, इन पर दूसरी विवाह ले ॥ ८० ॥ पहली स्त्री बांझ हो, तो आठवें वर्ष, बच्चे मर जाते हों, तो दसवें वर्ष, निरी कन्याएं जने, तो ग्यारहवें वर्ष, अप्रिय वादिनी हो तो बहुत ही जल्दी दूसरी विवाह ले

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ।
सानुज्ञाप्याऽधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥८२
अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद् रुषिता गृहात् ।
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥८३

जो रोगिणी हो, पर पति के अनुकूल हो; और शीलवाली हो, उससे अनुज्ञा लेकर उस पर दूसरी विवाहे, और कभी उसका अपमान न करे ॥ ८२ ॥ जिस पर विवाह हुआ है वह स्त्री यदि रूठकर घर से निकल जाए, तो उसे उसी समय (जबरदस्ती) रोक लेना चाहिए, वा उसे उसके पिता आदि के पास छोड़ देना चाहिए ॥ ८३ ॥

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ॥८४
यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन् योषितो द्विजाः ।
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥८५॥

(पति आदि से) मना की हुई भी जो स्त्री (विवाह आदि) उत्सवों में भी मद्य पीवे, वा मेले तमाशे में जावे, उसको राजा छः

स्त्री दण्ड देवे ॥ ८४ ॥ यदि द्विज अपनी और दूसरी (अपने वर्ण की और निचले वर्ण की) स्त्रियों को विवाहें, तो उन का वड़प्पन, आदर सत्कार, और घर वर्ण क्रम से हों ॥ ८५ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यिकम् ।
स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नाऽस्वजातिः कथंचन ॥८६॥
यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयाऽन्यया ।
यथा ब्राह्मणचण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ८७ ॥

पति की शरीर सेवा * और नित्य का धर्म-कार्य (अग्निहोत्र अतिथि सेवादि) सब (वर्णों) की सजातीया ही करे, विजातीया कभी नहीं † ॥ ८६ ॥ जो फिर सजातीया की स्थिति में दूसरी से यह (कर्म) करवाए, वह बड़ों से ऐसा माना गया है, जैसे ब्राह्मण चाण्डाल (ब्राह्मणीसे शूद्र का पुत्र)होता है ‡ ।८७॥

उत्कृष्टायाऽभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि॥८८॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यापि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०॥
अदीयमाना भर्तारमधि गच्छेद्यदि स्वयम् ।
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ॥९१

* पति के लिये रोटी पकाना लाना आदि (मेधा०, कुल्लू०, राघ०) † याज्ञ० १।८८ विष्णु० २६।१ ‡ विष्णु० २६।२।

अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥९२॥
पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन्।
स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥९३॥
त्रिंशद्वर्षोवहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥

(जो गुणों से) उत्कृष्ट, सुन्दर, सजातीय हो, ऐसे वर को न पहुंचती हुई भी * कन्या यथाविधि दे देवे †॥८८॥ चाहे कन्या ऋतुवाली होकर भी मरण पर्यन्त घर में रहे, पर इसे गुणहीन को कभी न दे ॥ ८९ ॥ (पिता से न दी हुई) कन्या ऋतुमती होकर भी तीन वर्ष प्रतीक्षा करे। इस समय से पीछे अपने तुल्य पति को स्वयं वरले ॥ ९० ॥ (पिता आदि से) न दी हुई यदि स्वयं पति को पाले, तो उसे कोई दोष नहीं होता, न उसको, जिस को वह वरती है ॥९१॥ किन्तु यह स्वयंवर वरने वाली कन्या पिता, माता, भाई से दिए हुए अलंकार को न लेजाए, यदि उसको लेजाए, तो यह चोरिणी ‡ होगी ॥९२॥ (इधर वर भी) ऋतुवाली कन्या को लेता हुआ उसके पिता को कुछ शुल्क न दे,

---

* विवाह के अयोग्य आयुवाली भी (मेधा०) अथवा माता की छः पीढ़ी में से हों तो भी इत्यादि । †८८-९२ वासि० १७। ६९-७१ गौत० १८।२०-२३ बौधा० ४।१।११—१४ याज्ञ० १।६४ विष्णु० २४।४०—४१ ‡ मेधा०, नन्द के अनुसार ' स्तेयं '=चोरी पाठ, पढ़ा है। कुल्लू०, नारा०, राघ० ' स्तेना ' पढ़ते हैं । अर्थात् वह चोरिणी होगी, मेधा० ' स्तेनः ' वर चोर होगा, पाठान्तर भी देता है ।

क्योंकि ऋतुओं के रोकने से वह (पिता) स्वामित्व से अलग होचुका है*॥९३॥ जब धर्म (पालने में) हानि पहुंचती हो, तो जल्दी करता हुआ † तीस वर्ष का पुरुष बारह बरस की सुन्दरी को और चौबीस वर्ष का आठ वर्ष की (सुन्दरी) को विवाह ले॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ।
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥९५

पति देवताओं से ‡ दी स्त्री को पाता है, न कि (निरा) अपनी इच्छा अनुसार, सो देवताओं का प्रिय आचरण करते हुए उसको सदा उस सती का पालन करना चाहिए ॥ ९५ ॥

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः ।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥९६॥
कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७ ॥
आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत् ।
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥९८॥

* 'केचिदाहुरमानवोऽयं श्लोकः' = कई कहते हैं यह श्लोक मनु का नहीं है, (मेधा०) † जब ब्रह्मचर्य समाप्त कर स्नान कर चुका है, तो गृहस्थाश्रम के प्रति विलम्ब न करे, क्योंकि ब्रह्मचारी के धर्म समाप्त कर चुका है, और गृहस्थ के धर्म गृहाश्रम के बिना नहीं कर सकेगा और अनाश्रमी रहना नहीं चाहिये (कुल्लू०, नारा०, राघ०) ‡ भगोऽर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः, इत्यादि से कहे भग, अर्यमा सविता आदि देवताओं से (कुल्लू०, राघ०) 'रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्' = इसके अनुसार-देवता से = अग्नि से (नारा०) सोम, गन्धर्व और अग्नि से (मेधा० नन्द०)।

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरऽन्यस्य दीयते ॥ ९९ ॥
नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ।
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥१००॥

गर्भ ग्रहण के लिए स्त्रियें रची हैं, और गर्भ धारण के लिए पुरुष, इसलिए (गर्भोत्पादन की तरह अग्न्याधानादि भी पुरुष का) धर्म श्रुति में पत्नी के साथ कहा है ॥ ९६ ॥ कन्या का शुल्क देकर यदि शुल्क देने वाला मरजाए, तो वह देवर को दे देनी चाहिए, यदि कन्या स्वीकार करले ॥ ९७ ॥ शूद्र भी कन्या देता हुआ शुल्क न लेवे, क्योंकि शुल्क ग्रहण करता हुआ कन्या की गुप्त बिक्री करता है ॥ ९८ ॥ यह (काम) न पहले भले पुरुष करते रहे, न अब के करते हैं, कि एक के लिए प्रतिज्ञा करके फिर दूसरे को दीजाए ॥ ९९ ॥ पहली सृष्टियों में भी यह नहीं सुना है, कि शुल्क नामवाले मूल्य से कन्याओं का गुप्त विक्रय हुआ हो ॥ १०० ॥

अन्योन्यास्याऽव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्री पुंसयोः परः ॥१०१॥
तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ता वितरेतरम् ॥१०२॥
एष स्त्री पुंसयो रुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥ १०३ ॥

मरण पर्यन्त (पति पत्नी का) परस्पर व्यभिचार नहीं

हो, यह संक्षेप से स्त्री पुरुषका परमधर्म जानना चाहिए ॥१०१॥ विवाह करके स्त्री पुरुष सदा वैसा यत्न करें, कि वियुक्त होकर एक दूसरे से व्यभिचारी न हों ॥ १०२ ॥ यह स्त्री पुरुष का प्रेम भरा धर्म और आपत्काल में (नियोग से) सन्तान की प्राप्ति बतलादी है, अब दायभाग जानो ॥ १०३ ॥

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥१०४॥
ज्येष्ठएव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥ १०५ ॥
ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।
पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥१०६॥
यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ।
सएव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥१०७॥
पितेव पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठोभ्रातॄन् यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्त्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥१०८॥
ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः॥१०९॥
योज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेवसपितेवसः ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्ससंपूज्यस्तु बन्धुवत् ॥११०॥
एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥१११॥

पिता माता के पीछे * मिलकर भाई, माता पिता के धन को एक जैसा बांटें, क्योंकि उन दोनों के जीते हुए वह (उन के धनों के) मालिक नहीं हैं ॥ १०४ ॥ अथवा बड़ा ही पिता के सारे धन को लेलेवे † दूसरे उसके आश्रित रहें, जैसे पिता के (आश्रित थे) ‡ ॥ १०५ ॥ बड़े के उत्पन्न होने मात्र से ही पुरुष पुत्रवाला बन जाता है, और पितरों का उऋण होजाता है; इससे वह (बड़ा) सारे के योग्य है ॥ १०६ ॥ जिसके होने पर (पितृ-) ऋण को चुकाता है,और जिससे अमृतत्व को भोगता है § वही धर्म से उत्पन्न हुआ पुत्र है, दूसरों को काम से उत्पन्न हुआ जानते हैं ॥ १०७ ॥ पिता की तरह बड़ा छोटे भाइयों को पुत्र की तरह पालन करे, और वह भी बड़े भाई के प्रति पुत्र की तरह धर्म से वर्ते ॥ १०८ ॥ बड़ा कुल को बढ़ाता है, बड़ा ही नाश करता है, (सो गुणवान्) बड़ा लोक में पूज्यतम है बड़ा श्रेष्ठों से अनिन्दित होता है ॥ १०९ ॥ जो बड़ा बड़ों के से बर्ताव वाला हो ¶ वह माता के तुल्य है, वह पिता के तुल्य है, पर जो बड़ों के से बर्ताव वाला नहीं, वह बन्धुवत् पूजनीय है ‖ ॥ ११० ॥ इसप्रकार इकट्ठे बसें, वा धर्म की इच्छा से अलग अलग बसें, क्योंकि धर्म अलग २ बढ़ता है इसलिए अलग होना धर्म युक्त है ** ॥ १११ ॥

---

* पिता के मरने पीछे पिता के धन को, माता के मरने पीछे माता के धन को † यदि वह धार्मिक है (कुल्लू० राघ०) ‡ गौत० २८।३ बौधा० २।३।१३ § पुत्रवाले को ही मोक्ष का अधिकार है, मिलाओ वा १७।१ विष्णु २५।४५ ¶ अर्थात् पिता का सा बर्ताव करे। ‖ चाचे, मामे, आदि की तरह उसका अभिवादन और प्रत्युत्थान आदि करें ‖ अलग २ अग्निहोत्र और अतिथि पूजा आदि होने से धर्म अधिक होता है ** गौत० २८।४ ॥

ज्येष्ठस्य विंशउद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ।
ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥११२॥
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ।
येऽन्येज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥११३
सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः ।
यच्च सातिशयं किञ्चिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ ११४
उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ।
यत्किञ्चिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥ ११५
एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान् प्रकल्पयेत् ।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥११६॥
एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥११७

(जायदाद में से) बीसवां भाग और सब वस्तुओं में से जो श्रेष्ठ वस्तु हो, यह दो सब से बड़े लड़के का उद्धार (हिस्से से अलग भेंट) हो, इससे आधा (चालीसवां भाग) मंझले का हो, और चौथाई (अस्सीवां भाग) सब से छोटे का हो, (शेष सब बराबर बांट लें) * ॥ ११२ ॥ (तीन से अधिक भाई हों तो) सब से बड़ा और सब से छोटा पूर्व कहे अनुसार लेवें, जो ज्येष्ठ कनिष्ठ से भिन्न हैं, उन सब का मंझले वाला (चालीसवां

*गौत० २८।५–७ बौधा २।३।९ विष्णु १८।३७ याज्ञ २।११४ मेधातिथि कहता है, कई इस नियम का बर्ताव पिछले युगों में मानते हैं, पर कलियुग में विषम विभाग न होकर बराबर२ विभाग ही होने चाहियें

भाग उद्धार) हो ॥ ११३ ॥ सब प्रकार के धनों में जो श्रेष्ठ धन है उसको बड़ा लेलेवे, और जो बहुत बढ़िया वस्तु है, उस को भी, और दस से * एक श्रेष्ठ लेलेवे, (यह नियम यदि बड़ा गुण वाला और दूसरे निर्गुण हों उस विषय में है। सब तुल्य गुणों वाले हों, तो) † ॥११४॥ जो यह दस पीछे उद्धार कहा है, यह यदि अपने कर्तव्यों में सभी एक-जैसे सावधान हों, तो नहीं होता, किन्तु मान बढ़ाने के लिये यत्किञ्चित् वस्तु बड़े के प्रति देनी चाहिये ‡ ॥ ११५ ॥ इसप्रकार उद्धार के निकलजाने पर फिर बराबर२ भाग करें, यदि उद्धार न निकाला जाए, तो फिर इन (भाइयों) की भाग कल्पना यह हो § ॥११६॥ ज्येष्ठ पुत्र एक अधिक भाग लेवे (अर्थात् दो भाग लेवे) उससे छोटा डेढ़ भाग, उससे छोटे सब एक२ भाग यह धर्म मर्यादा है॥

स्वेभ्योऽंशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥११८
अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ।
अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ ११९
यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ।
समस्तत्र विभागःस्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१२०
उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥१२१

* गौत २८।१२ के अनुसार दश पशुओं में से एक पशु लेवे (कुल्लू. नारा० राघ) † गौत २८।११-१३ बौधा २।३।६ ‡ आप० २।१३।१३ § गौत २८।८ ¶ गौत २८।९-१० वासि १७।४२

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ।
कथं तत्र विभागः स्यादितिचेत्संशयो भवेत् ॥१२२॥
एकं वृषभ मुद्धारं संहरेत सपूर्वजः ।
ततोऽपरेज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥ १२३ ॥

भाई अपने भागों में से चौथा भाग अलग २ बहिनों को देवें*, न देना चाहते हुए पतित होंगे † ॥ १०८ ॥ भेड़ बकरी और एक खुर वाले (घोड़े आदि) विषम (न बराबर=बराबर बांट कर बचे) को कभी न बांटें ‡, किन्तु जो विषम भेड़बकरी आदि है, वह बड़े का ही विधान किया है ॥ ११९ ॥ छोटा भाई यदि बड़े भाई की स्त्री में से (नियोग विधि से) पुत्र उत्पन्न करे, वहां (चचा के साथ क्षेत्रज का) विभाग सम हो § (बड़े भाई को उद्धार मिलना था, वह अब चचा से भतीजा नहीं पाए) यह धर्म व्यवस्था है ॥ १२० ॥ अप्रधान (क्षेत्रज पुत्र) प्रधान के धर्म (बड़े को दिये जाने वाले उद्धार) से युक्त नहीं होता, इसलिये पूर्व कही मर्यादा से उसको भाग देवे. क्योंकि उत्पन्न

---

* 'अलग २ बहिनों को देवें' अर्थात् जब भिन्न २ वर्ण की स्त्रियों में से पुत्र हों, तो उनमें से हरएक अपने २ वर्ण की बहिन को अपने भाग का चौथा हिस्सा देवे, ब्राह्मण ब्राह्मणी की कन्या को, क्षत्रिय क्षत्रिय कन्या को। पर यह भाग अविवाहिताओं को मिलता है, विवाहिताओं को नहीं (टीकाकार) † याज्ञ २।१२४ विष्णु १८।३५ ‡ अर्थात् बेचकर वा उसका मूल्य डालकर न बांटें (मेधा० कुल्लू० नारा० राघ०) § इससे यह भी सिद्ध होता है, कि पोते का भी दादा के धन में पितृव्यों की तरह भाग है, यद्यपि

करने में पिता प्रधान होता है * ॥ १२१ ॥ यदि बड़ी (पहिले विवाही) में से पुत्र छोटा हो, और छोटी (पीछे विवाही) में से बड़ा हो, तो वहां किस प्रकार विभाग होना चाहिये (क्या माता के विवाह क्रम से पुत्र का बड़प्पन हो, वा जन्म क्रम से) यह संशय हो तो ॥ १२२ ॥ पहली में उत्पन्न हुआ वह (छोटा) एक बैल उद्धार लेवे, उस (बैल) से भिन्न जो अच्छे बैल हैं, वह अपनी माता (के क्रम) से उससे छोटों के होते हैं (अर्थात् माता के विवाह के क्रम से बड़प्पन होता है) † ॥ १२३ ॥

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद् वृषभषोडशाः ।
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥१२४॥

पर यदि बड़ी में से उत्पन्न हुआ (आयु में भी) सब से बड़ा हो, तो वह पन्द्रह गौएं और एक सांड लेवे, तब शेष (पुत्र) अपनी माता के (विवाह के) क्रम से बांटें, यह निश्चय है ॥१२४॥

सदृश स्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ।
न मातृतोज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतोज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥१२५
जन्म ज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् ।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥१२६॥

---

१०४ में 'भाई मिलकर बांटें' कहा है * यदि कहो, कि बड़े भाई का पुत्र होने से बड़े का स्वत्व उद्धार भी इसको मिलना चाहिये, तो उत्तर यह है पिता प्रधान ठीक है, पर यदि स्वयं पुत्र को उत्पन्न करे। किन्तु उस पुत्र के लिये उसकी प्रधानता नहीं होसकी, जो क्षेत्रज है। †ं १२३-१२४ गौत २८।१४-१५। इन दो (१२३-१२४) श्लोकों में पहिले पीछे विवाहियों के आश्रय... और

समान जाति की बहुतसी स्त्रियों में उत्पन्न हुए पुत्रों का बिना किसी अपने विशेष के माता से बड़प्पन नहीं है, जन्म से बड़प्पन कहा जाता है ॥ १२५ ॥ सुब्रह्मण्या * में भी जन्म से बड़े के द्वारा (इन्द्र का) आव्हान बतलाया है, और सभी गर्भों में जोड़े उत्पन्न हुए दो पुत्रों में जन्म से बड़प्पन कहा है † ॥१२६॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥१२७॥

जिसके पुत्र न हो, वह अपनी कन्या को (विवाहने के समय) इस विधि से पुत्रिका बनाए, कि (जामाता को कहे) जो सन्तान इसमें से हो, वह मेरा स्वधा (पिण्ड श्राद्ध) करने वाला हो * ॥

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥१२८॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥१२९॥

अन्यजाति की स्त्रियों से है * ज्योतिष्टोम यज्ञ में 'सुब्रह्मण्योऽम् इन्द्रागच्छ' इत्यादि (ऐत० ब्रा० ६।३ के) सुब्रह्मण्या निगद द्वारा जब इन्द्र का आव्हान किया जाता है, तो यजमान का नाम उसके बड़े पुत्र के पिता के तौर पर लिया जाता है, 'अमुकस्य पिता यजते'। यहां उस बड़े का नाम लिया जाता है, जो जन्म से बड़ा है, चाहे पहिली विवाही का पुत्र हो, वा पीछे विवाही का, हां सवर्णा में से हो † जोड़े भाइयों में यद्यपि पीछे जन्मने वाला पहिले निषिक्त हुआ था, तथापि जन्म से बड़ा ही बड़ा होता है। सो जब माता के वर्ण से बड़ाई छुटाई किसी में न हो, तब सवर्णा में से जन्म से बड़ा ही बड़ा होता है।

* वासि० १७। १७ गौत० २८।१८ बौधा० २।३।१५ विष्णु० १५।५

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥१३०॥

इस विधि से पहिले स्वयं दक्षप्रजापति ने अपने वंश की वृद्धि के लिये पुत्रिकाएं की हैं ॥ १२८ ॥ उसने प्रसन्न होकर सत्कार करके दस धर्म को दीं, तेरह कश्यप को, और सत्ताईस राजा चन्द्र को ॥१२९॥ जैसा अपना आप है वैसा पुत्र है, और कन्या पुत्र के तुल्य है, उस अपने आप (पुत्रिका बनाई कन्या) के होते हुए कैसे कोई और (अपुत्र मरे पिता के) धन को लेवे *

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।
दौहित्रएव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ १३१॥
दौहित्रोह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ।
सएव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च॥१३२
पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ।
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥ १३३ ॥

माता का जो धन है, वह कंवारियों का ही भाग होता है, और अपुत्र के सारे धन को दोहता † ही लेवे ‡ ॥ १३१ ॥ दोहता ही अपुत्र पिता का सारा धन लेवे § वही दो पिण्ड देवे, एक पिता को, दूसरा नाना को ॥ १३२ ॥ पोते और दोहते का लोक में धर्म से¶ कोई भेद नहीं है, क्योंकि

---

* यहां सब टीकाकार कन्या से पुत्रिका बनाई हुई कन्या लेते हैं, क्योंकि प्रकरण उसी का है †दोहता=पुत्रिका का पुत्र ‡ गौत० २८ । २४ विष्णु० १७।२१ § दोहता=पुत्रिका का पुत्र, यदि उसका और भाई न हो, तो वही अपने अपुत्र पिता का और वही नाना का धन लेवे, और दोनों को पिण्ड देवे (कुल्लू०) ¶ धर्म से, न्याय से, (राघ० नन्द०) धर्म कार्थ=पिण्ड दानादि में (कुल्लू०)

इन दोनों के माता पिता उसके शरीर से उत्पन्न हुए हैं॥

पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ।
समस्तत्रविभागःस्याज्ज्येष्ठतानास्तिहिस्त्रियः॥१३४॥
अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथञ्चन ।
धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाऽविचारयन् ॥ १३५॥
अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम् ।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥१३६॥

पुत्रिका करने पर यदि पीछे (पिता के घर) पुत्र होजाए, वहां दोनों का विभाग बराबर हो, (बड़े को देने योग्य उद्धार पुत्रिका को न दिया जाए) क्योंकि कन्या की ज्येष्ठता नहीं होती है॥ १३४॥ पुत्रिका यदि विना पुत्र के मरजाए, तब उसके धन को भर्त्ता ही * विना विचार ग्रहण करे॥१३५॥ (पुत्रिका) कीहुई वा न कीहुई भी † जिस पुत्र को अपने सदृश (पति से) पावे; उससे नाना पुत्र वाला होता है, वह ही पिण्ड देवे और धन लेवे॥ १३६॥

याज्ञ० २।१२८ * न कि वक्ष्यमाण १८५ के अनुसार मरने वाले के भाई † (मेधा०, कुल्लू०, राघ०) का अर्थ यह है, पुत्रिका दो प्रकार की होती है, कीहुई अर्थात् कन्यादानकाल में वर की अनुमति से पुत्रिका कीहुई, और न की हुई अर्थात् वर की अनुमति से न की हुई, किन्तु अपने मन में कीहुई, क्योंकि ऐसी भी पुत्रिका होती है, जैसाकि गौत० २८।२० में कहा है। अतएव विवाह प्रकरण में जिस का भाई न हो, उसके विषय में लिखा है 'पुत्रिका धर्मशंकया'। गोवि० और नन्द० यह सीधा अर्थ लेते हैं, कि पुत्रिका कीहुई, वा न कीहुई। पुत्रिका न की कन्या के पुत्र से भी पिता पुत्र वाला हो, वही सन्तान नाना को पिण्ड देवे और उसका धन लेलेवे।

पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥१३७॥
पुन्नाम्नोनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात्पुत्रइति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥१३८॥
पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत ॥१३९॥
मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः॥१४०॥

पुत्र (के होने) से लोकों * को जीतता है, पोते से अनन्तता को प्राप्त होता है, † और पुत्र के पोते से सूर्यलोक को प्राप्त होता है ‡ ॥१३७॥ पुत्र जिसलिए पुत् नामी नरक से पिता को बचाता है, इसलिये स्वयं ब्रह्मा ने(उसे) पुत्र कहा है §॥१३८॥ पोते और दोहते ¶ का लोक में कोई विशेष नहीं है, क्योंकि दोहता भी पोते की तरह इसको (नाने को) नरक से बचाता है ॥१३९॥ पुत्रिका का पुत्र पहला पिण्ड माता को दे, दूसरा उसके (माता के) पिता को, तीसरा उसके पिता के पिता को॥ ॥१४०

---

* स्वर्गादि दस लोक जो विशोक (शोक से रहित) हैं (मेधा०) † अर्थात् उन्हीं लोकों में चिरकाल रहता है, (मेधा०, कुल्लू०) ‡ दायभाग प्रकरण में ऐसा कहने का यह अभिप्राय है, कि पिता के धन में पुत्र का अधिकार है, चाहे उसकी पत्नी आदि भी हो। पुत्र के अभाव में पोते का, पोते के अभाव में प्रपोते का, (कुल्लू०) वासि० १७।५ याज्ञ० १।७८ विष्णु० १५।४६ § विष्णु० १५।४४ ¶ पुत्रिका के पुत्र दोहते का (मेधा०, कुल्लू०) ‖ बौधा० २।३।१६॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः ।
स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥१४१॥
गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः क्वचित् ।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥१४२॥
अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ।
उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातक कामजौ॥१४३॥
नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितोहि सः ॥१४४॥
हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ।
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥१४५॥
धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ।
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥१४६॥
याऽनियुक्ताऽन्यतः पुत्रं देवराद्वाऽप्यऽवाप्नुयात् ।
तं कामजमऽरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ १४७ ॥

जिस का दत्तक पुत्र सारे गुणों से युक्त है वह दूसरे गोत्र से आया भी उस (पिता) के धन को अवश्य लेवे * ॥ १४१ ॥ दत्तक पुत्र उत्पन्न करनेवाले (पिता) का गोत्र (नाम) और

* वासि० १५ । ९-१० दत्तक=जिसको माता पिता ने दे दिया है । धन के अधिकारी मुख्यतया औरस और क्षेत्रज हैं, उनके अभाव में दत्तक आदि अधिकारी होते हैं, यह (१६१ में) कहेंगे । पर इस श्लोक का यह तात्पर्य है, कि औरस के होते हुए भी यदि दत्तक पुत्र, पुत्र के सारे गुणों से युक्त है, तो उसे भाग मिलना चाहिए,

धन कभी न लेवे, और देनेवाले (पिता) का (उस पुत्र द्वारा) पिण्ड और श्राद्ध निवृत्त होजाता है क्योंकि वह गोत्र और धन का अनुगामी है (जिसका गोत्र और धन लेवे, उसी को पिण्ड और श्राद्ध देना होता है) ॥१४२॥ (बड़ों से) नियुक्त न की हुई का पुत्र, और पुत्रवाली ने देवर से पाया पुत्र, वह दोनों भाग के योग्य नहीं होते, क्योंकि पहला जार से उत्पन्न हुआ है, और दूसरा काम से उत्पन्न हुआ है ॥ १४३ ॥ नियुक्ता नारी में से भी जो पुरुष विना विधि † के उत्पन्न हुआ है, वह पिता के धन के योग्य नहीं होता, क्योंकि वह पतित से उत्पन्न किया गया है ॥ १४४ ॥ नियुक्ता में उत्पन्न हुआ पुत्र औरस की तरह (धन) लेवे, जिसलिए वह क्षेत्रवाले का बीज है, ‡ और उसी का धर्म से सन्तान है § ॥ १४५ ॥ जो मरे भाई के धन की रक्षा और उसकी स्त्री का पोषण करे, वह (नियोग धर्म से) भाई के सन्तान उत्पन्न करके उसी को उसका धन देवे ¶ ॥ १४६ ॥ जो नियुक्त हुई देवर से वा अन्य से पुत्र उत्पन्न करे, पर यदि वह काम से उत्पन्न हुआ है, तो उसे धन का अनधिकारी वृथा उत्पन्न हुआ कहते हैं ‖ ॥ १४७ ॥

(मेधा०, कुल्लू०) † विधि=घृत मलकर जाना आदि। देखो पूर्व ६० ‡ क्योंकि क्षेत्रवाले के लिए वह बीज डाला गया है § १२० में तो क्षेत्रज का चचा के साथ सम भाग कहा है, यहां औरस के तुल्य कहने से गुणवाले क्षेत्रज को अपने पिता के बड़प्पन का उद्धार भी मिलना चाहिए, (मेधा०, कुल्लू०) ‖ यह नियम वहां लगता है, जब दोनों भाई अलग २ हो चुके हों, पूर्व १२० वाला वहां लगता है, जब वह अभी इकट्ठे हों ‖ नियुक्त को मुख से मुख वा छाती आदि से छाती आदि नहीं मिलाने चाहियें, यदि वह ऐसा करें, तो उनका पुत्र कामज होगा ॥

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु ।
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥१४८॥
ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ।
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिःस्मृतः ॥१४९॥
कीनाशो गोवृषो यानमलङ्कारश्च वेश्म च ।
विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥ १५० ॥

एक जाति की स्त्रियों में से एक (भर्त्ता) से उत्पन्न हुए पुत्रों के विभाग की यह विधि जाननी चाहिए, अब नाना जाति की बहुत सी स्त्रियों में से एक से उत्पन्न हुए पुत्रों के विभाग की विधि जानो ॥ १४८ ॥ ब्राह्मण की क्रम से यदि चारों स्त्रियें हों, तो उनके उत्पन्न हुए पुत्रों के विषय में विभाग की यह विधि कही है * ॥ १४९ ॥ खेती करनेवाला (दास), गौओं के लिए रक्खा सांण्ड, यान, भूषण † और घर, और (हिस्सों में से) एक प्रधान हिस्सा ‡ ब्राह्मण को उद्धारतया देना चाहिए,

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ।
वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतोहरेत् ॥ १५१ ॥
सर्वंवा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ।

---

* १४९–१५६ वासि० १७ । ४८–५० गौत० २८। ३५–३९ बौधा० २।२ । १० याज्ञ० २।१२५ विष्णु० १८।१–३३, ३८–३० † यान = गाडी (मेधा०) घोड़ा आदि (कुल्लू०) भूषण = अंगूठी आदि जो उसके पिता का हो, (मेधा० कुल्लू०, राघ०) ‡ जितने हिस्से हैं उनमें से एक प्रधान हिस्सा (कुल्लू०) प्रधान द्रव्य में से एक हिस्सा (जो आगे तीन हिस्से कहने हैं, उन हिस्सों के बरावर का हिस्सा)

धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित्॥१५२॥
चतुरोंशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः।
वैश्यापुत्रो हरेद्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥१५३॥
यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपिवाभवेत्।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥ १५४ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ॥१५५

(शेष) धन में से ब्राह्मणी का पुत्र तीन हिस्से लेवे, क्षत्रिया का दो हिस्से, वैश्या का डेढ़ हिस्सा, और शूद्रा का पुत्र एक हिस्सा लेवे ॥ १५१ ॥ अथवा सारे धन के दस हिस्से कल्पना करके मर्यादा का जाननेवाला इस विधि से धर्म युक्त विभाग करे ॥ १५२ ॥ चार हिस्से ब्राह्मण लेवे, तीन हिस्से क्षत्रिया का पुत्र, दो हिस्से वैश्या का पुत्र, एक हिस्सा शूद्रा का पुत्र लेवे ॥ १५३ ॥ यद्यपि और पुत्र उसके विद्यमान हों, वा और पुत्र न हों, पर शूद्रा के पुत्र को दसवें से अधिक धर्म से न दे, ॥ १५४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का धन भागी शूद्रा का पुत्र नहीं होता, जो इसको पिता दे, वही इसका धन हो§

(नारा०) § पूर्व दसवां भाग कहा, यहां निषेध किया, यह गुणी और गुणहीन पुत्र की अपेक्षा से है, अथवा न विवाही शूद्रा में से पुत्र के विषय में है (कुल्लू०) यह दसवें से अधिक जो पिता ने दिया है, उससे अभिप्राय है, अर्थात् भाई उसको दसवां हिस्सा दें, और जो पिता ने दिया हो, वह भी उसके पास रहे, 'धन भागी नहीं' का अर्थ है, 'दसवें से अधिक धन का भागी नहीं' (नारा०)॥

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ।
उद्धारं ज्यायसे दत्वा भजेरन्नितरे समम् ॥१५६॥
शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ।
तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतंभवेत् ॥१५७

द्विजातियों के समान जाति की स्त्रियों में जो पुत्र हुए हों, वह सारे बड़े को उद्धार देकर दूसरे (फिर बड़े के साथ) बराबर बांट लेवें ॥ १५६ ॥ शूद्र की अपने वर्ण की ही भार्या कही है दूसरी नहीं उसमें उत्पन्न हुए बराबर हिस्सोंवाले होते हैं, चाहे सौ पुत्र भी हों ॥ १५७ ॥

पुत्रान् द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः ।
तेषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥१५८॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमएव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥१५९॥

स्वायम्भुव मनु ने मनुष्यों के जो बारह पुत्र कहे हैं, उन में से छः बान्धव और दायभागी हैं, छः दायभागी न होकर बान्धव हैं * ॥ १५८ ॥ औरस (असली पुत्र) क्षेत्रज (नियोगज) दत्तक (माता पिता से दिया हुआ) कृत्रिम (आप बनाया हुआ) गूढोत्पन्न (गुप्त उत्पन्न हुआ) अपविद्ध (त्यागा हुआ पाला गया) यह छः बान्धव हैं और दायभागी हैं ॥ १५९ ॥

* १५८-१५९ वासि० १७। २५-३८ गौत० २८। ३१-३६ बौधा० २।३।३१-३२ अदायाद बान्धव=न दायभागी न बान्धव (मेधा०) दायभागी न होकर बान्धव होते हैं, क्योंकि बौधायन ने उनका बान्धव होना माना है। बान्धव होने से उनका उदकदान का अधि-

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतःपौनर्भवस्तथा।
स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः॥ १६०॥

कानीन (कंवारी का पुत्र) सहोढ़ (गर्भ में विवाह के साथ आया) क्रीत (खरीदा हुआ) पौनर्भव (विधवा विवाही का पुत्र) स्वयंदत्त (अपने आप आकर पुत्र बना) शौद्र (विवाही शूद्रा में से पुत्र) यह छः दायभागी न होकर बान्धव हैं॥ १६०॥

यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम्।
तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः॥ १६१॥
यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरस क्षेत्रजौ सुतौ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद् गृह्णीत नेतरः॥१६२॥
एकएवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम्॥ १६३॥
षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्।
औरसोविभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा॥ १६४॥

निकम्मी नौकाएं लेकर पानी से पार होता हुआ जैसे फल को पाता है, वैसा ही फल कुपुत्रों † द्वारा अन्धकार से पार होता हुआ पाता है॥ १६१॥ यदि औरस और क्षेत्रज पुत्र एक के धन के भागी हों, तो जो धन जिसके पिता का है, उसको वह ग्रहण करे, दूसरा नहीं ‡॥ १६२॥ एक औरस पुत्र ही पिता

कार होता है (कुल्लू०, नारा०, राघ०) † कुपुत्र=अनियुक्ता के पुत्र (कई, मेधा०) औरस से भिन्न पुत्र (कुल्लू०) ‡ न अलग हुआ भाई यदि मर जाए, और उसकी स्त्री में से देवर भाई के लिए सन्तान उत्पन्न करे, और पीछे उसके अपनी स्त्री में अलग लड़का

के धन को स्वामी होता है, दूसरों § को वह दयाभाव से जीविका देवे ॥ १६३ ॥ औरस पुत्र दाय को वांटता हुआ क्षेत्रज को पिता के धन से छटा वा पांचवां हिस्सा देवे ॥ १६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ।
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांश भागिनः ॥१६५॥

औरस और क्षेत्रज पुत्र पिता के धन के भागी होते हैं, दूसरे दस गोत्र भागी और क्रमशः ॥ धन भागी होते हैं ** ॥१६५।

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ १६६ ॥
यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः॥१६७॥
माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः ॥१६८॥
सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ १६९ ॥
उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः।
स गृहे गूढउत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ १७० ॥

भी हो तो वह अपने २ पिता का भाग लेवें (नारा०) § क्षेत्रज से भिन्न दूसरों को, क्षेत्रज को (१६४ में) छटा पांचवां कहेंगे, (कुल्लू) ‖क्रमशः अर्थात् पहले२ के अभाव में, क्षेत्रज न हो, तो दत्तक, दत्तक न हो, तो कृत्रिम इत्यादि। * " वासि० १७। ३९ ॥

(बारह पुत्रों के लक्षण कहते हैं) (विवाह विधि से) संस्कार कीहुई अपनी भार्या में से जिसको स्वयं उत्पन्न करे, उसको औरस जाने, वही मुख्य पुत्र है * ॥ १६६॥ नियोग के धर्म से नियुक्त हुई—मरे हुए, वा नपुंसक वा रोगी की भार्या—में से उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रज कहाता है †॥१६७॥ माता वा पिता ‡ (लेने वाले के) सदृश§ जिस पुत्र को आपत्काल॥ में प्रीति पूर्वक¶ जल से देवे,वह दत्तक पुत्र जानना चाहिए **॥ १६८ ॥ जो जिस सदृश, गुण दोष के जाननेवाले, पुत्र के गुणों से युक्त को आप पुत्र बनाए, वह कृत्रिम जानना चाहिए †† ॥१६९॥ जिसके घर में उत्पन्न होवे, पर निश्चित न हो सके, कि किसका है, वह घर में गुप्त उत्पन्न हुआ पुत्र उसका हो, जिसकी भार्या से हुआ है ‡‡ ॥१७०

---

* वासि० १७।१३ आप० २। १८ । १ बौधा० २।३।१४ याज्ञ० २। १२८ विष्णु० १५।२ (मेधा०, गोवि०, नारा०) 'प्राथमकल्पिकं' पढ़ते हैं, राघ०, प्रथम कल्पकस, यहां 'अपनी भार्या' से अपने वर्ण के भार्या अभिप्रेत है, क्योंकि बौधायन में ऐसा कहा है, (कुल्लू०) यदि सजातीय ही पुत्र हों, तो विजातीय पुत्र द्वादश पुत्रों में आ ही न सकेंगे, इसलिए सजाती मुख्य पुत्र है, दूसरे गौण पुत्र हैं, यही बौधायन का अभिप्राय है, (राघ०) † वासि० १७। १४ बौधा० २। ३। १८ याज्ञ० १।६९ ; २।१२७-१२८ विष्णु १५।३ ‡ माता वा पिता एक दूसरे की अनुमति से (कुल्लू०) पिता न हो, तो माता (नारा०) § सदृश = समान जातीय (कुल्लू०, नारा०, राघ०, नन्द) 'सदृश' जाति से नहीं लेना, किन्तु अपने कुल के योग्य गुणों वाला, ऐसा क्षत्रियादि भी ब्राह्मण का दत्तक होसक्ता है, (मेधा०) ¶ जब लेने वाले के घर सन्तान न हो, (कुल्लू०, राघ०) अथवा जब माता पिता अकाल से पीडित हों, (नारा०) ॥ प्रीति पूर्वक, न कि धक्के से वा (भय लोभादि) से ** वासि० १७। २९ बौधा० २। ३। २० याज्ञ० २। १३० विष्णु०

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः सउच्यते ॥ १७१ ॥
पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥१७२॥
या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१७३॥
क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात् ।
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोपि वा ॥१७४॥

माता पिता से त्यागे हुए वा उन दोनों में से एक से त्यागे हुए * जिस पुत्र को स्वीकार करे, वह अपविद्ध कहलाता है † ॥ १७१ ॥ पिता के घर में कन्या जिस पुत्र को गुप्त उत्पन्न करे, उस, कन्या से उत्पन्न हुए को विवाहनेवाले का पुत्र,नाम से कानीन कहते हैं ‡ ॥ १७२ ॥ जो गर्भवती जानी हुई, वा न जानी

१९।१८–१९ † † बौधा० २।३। २१ याज्ञ० २। १३१ यहां भी सदृश=गुणों से सदृश (मेधा०) समान जातीय (कुल्लू०) ‡ वासि० १७।२४ बौधा० २।३।२२ याज्ञ० २। १२९ विष्णु० १५। १३-१४ ऋतुकाल में पति के सवर्णों (न कि नीच वर्णवालों) अनेक पुरुषों का संसर्ग निश्चित हो, और किसका यह गर्भ है, ऐसा निश्चय न हो, (नारा०) * सन्तान के पालने में असमर्थ होने से वा माता पिता की भक्तिहीन होने आदि दोष से त्यागा हुआ (मेधा०) दो में से=एक से एक के मरने पर दूसरे से त्यागा हुआ † वासि० १७।३७ बौधा० २।३।२३ याज्ञ० २।१३२ विष्णु० १५।२४—२५ ‡ वासि० १७।२२—२३ बौधा० २।३।२४ याज्ञ० २।१२९

हुई भी विवाही जाती है, उसका वह पुत्र विवाहने वाले का होता है, और सहोढ कहलाता है § ॥ १७३ ॥ पुत्र के अर्थ जिसको माता पिता के पास से खरीदे, वह उसका क्रीतक पुत्र होता है, चाहे उसके सदृश हो, वा असदृश हो, ¶ ॥ १७४ ॥

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा सपौनर्भवउच्यते ॥ १७५ ॥
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनःसंस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥
मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु सस्मृतः ॥ १७७ ॥
यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।
स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥ १७८ ॥

जो पति से त्यागी हुई, वा मरे पति वाली अपनी इच्छा से फिर किसी की भार्या होकर जिसको उत्पन्न करे, वह (उत्पादक का) पौनर्भव कहलाता है * ॥ १७५ ॥ (पुनर्भू का पुनर्विवाह कहते हैं) वह (पति से त्यागी हुई वा विधवा हुई) यदि अक्षतयोनि हो यद्वा गई, और वापिस आई भी हो, वह पौनर्भव भर्ता के साथ

विष्णु० १५ । १०-११ यह समान वर्ण वा उत्तम वर्ण से उत्पन्न हुए के निश्चय में जानना, (नारा०) § वासि० १७ । २६-२७ बौधा० २ । ३ । २५ याज्ञ० २ । १३१ विष्णु० १५ । १५-१६ ‖ वासि० १७ । ३०-३२ बौधा० २ । ३ । २६ याज्ञ० २ । १३१ विष्णु० १५ । २०-२१ यहां सदृश असदृश गुणों से न कि वर्ण से (कुल्लू०, राघ०) जातिसे (नारा०) , , *वासि० १७-१८ बौधा०२।३।२७ याज्ञ०

पुनः संस्कार के योग्य होती है † ॥ १७६ ॥ जो माता पिता से हीन हुआ वा बिना कारण त्यागा हुआ स्वयं जिस के तांई अपना आप सौंप दे, वह उसका स्वयंदत्त कहाता है ‡ ॥१७७॥ जिसको ब्राह्मण शूद्रा में से काम से उत्पन्न करे, वह जीता हुआ ही मृत सदृश है, इसलिए पारशव कहाता है § ॥ १७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१७९॥

पर शूद्र का पुत्र जो उसकी दासी से हो वा दास की दासी से हो वह (पिता से) अनुज्ञा दिया हुआ भाग लेवे, यह धर्म मर्यादा है ॥

---

* ।१३० विष्णु० १५।७--९। † अभिप्राय यह है, कि पति ने जिस से विवाह मात्र किया है, संसर्ग नहीं किया, उसको यदि वह त्याग दे, वा वह विधवा होजाए, तो उसका पुनर्विवाह होना चाहिए, और उसका भी, जो आप पति को त्यागकर चली गई और फिर उसी के पास वापिस आई, पर अक्षत योनि है, पुनर्विवाह हो। हां क्षतयोनि हो, तो फिर विवाह नहीं होसक्ता। पुनर्भू दोनों प्रकार की होगी, इनमें से उत्पन्न हुआ पुत्र पौनर्भव वह बीजवाले का पुत्र होगा। यहां पौनर्भव शब्द भर्ता का विशेषण है, अर्थात् जिस पति के पास वह टिक गई है, वह पति (नारा०) राघ० यहां वा शब्द से क्षत योनि का भी ग्रहण करता है। ‡ वासि० १७। ३३-३५ बौधा० २। ३। २८ याज्ञ० २। १३१ विष्णु० १५। २२-२३ § वासि० १७। ३८ बौधा० २। ३। ३० विष्णु० १५। २७ यहां शूद्रा अपनी विवाहिता ही अभिप्रेत है, काम से इसलिए कहा है, कि द्विजों का शूद्रा को विवाहना काम से ही होता है, (टीकाकार) ब्राह्मण यहां क्षत्रिय वैश्य का भी उपलक्षण है, (नारा० जीता हुआ मृत इस लिए कहा है, कि श्राद्ध आदि का अधिकारी होकर भी धन का अधिकारी नहीं, ‖ याज्ञ० २। १३२ पिता के जीते हुए औरस पुत्रों के सम भाग लेवे,

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् ।
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥१८०॥

इन यथोक्त क्षेत्रज आदि ग्यारह पुत्रों को बुद्धिमान् पुत्र के प्रतिनिधि कहते हैं, जिससे कि कर्त्तव्य का लोप न हो * ॥ १८० ॥

यएतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसंगादन्यबीजजाः ।
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ १८१ ॥

(औरस के) प्रसंग से यह जो दूसरे के बीज से उत्पन्न हुए पुत्र कहे हैं, वह जिसके बीजसे उत्पन्न हैं, उसके होते हैं, दूसरेके नहीं †

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणोमनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥
सर्वासामेक पत्नीनामेकाचेत्पुत्रिणी भवेत् ।
सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ १८३ ॥
श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान् रिक्थमर्हति ।
बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥१८४॥
न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ।

मरे पीछे बांटे, तो आधा भाग (मेधा०) * पुत्र कर्त्तव्य श्राद्ध आदि का लोप न हो, (कुल्लू०) † आप० २ । १३ । ७ बौधा० २ । ३ । ३४–३५ औरस के होते हुए यह नहीं करने चाहिए, (मेधा०) औरस और पुत्रिका के पुत्र के होते हुए यह नहीं करने चाहिए, (कुल्लू०) पर नारा० इसप्रकार अन्वय करता है । 'यस्य ते बीजतो जाता तस्य ते न भवन्ति' 'इतरस्य तु भवन्ति'=जिसके वह बीज से उत्पन्न हुए हैं उसके वह नहीं होते, किन्तु दूसरे के (ग्रहण करने वाले के) होते हैं ।

पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातरएव च ॥ १८५ ॥
त्रयाणा मुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्त्तते ।
चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १८६ ॥
अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ।
अतऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्यएव वा ॥१८७॥
सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ।
त्रैविद्याःशुचयोदान्तास्तथा धर्मो न हीयते ॥१८८॥

भाई जो एक पिता की सन्तान हैं, उनमें से यदि एक भी पुत्रवाला हो, तो उन सब को उस पुत्र से मनु ने पुत्रवाले कहा है * ॥ १८२ ॥ और एक जाति वाली सब स्त्रियों में से यदि एक भी पुत्रवाली हो, तो उन सब को उस पुत्र से मनु ने पुत्रवती कहा है † ॥ १८३ ॥ उत्तम २ ‡ के अभाव में निचला (पुत्र) धन के योग्य होता है, बहुत से यदि एक तुल्य (एक दर्जे के) हों, तो सभी धन के भागी हैं ॥१८४॥ न भाई, न चाचे ताए, किन्तु पुत्र पिता के धन के भागी हैं, जिसका पुत्र नहीं, उसके धन को पिता (माता) और (उनके अभाव में) भाई लेवें ॥१८५॥ तीनों

* वासि० १७।१० विष्णु० १५।४२ किसी भी भाई के घर पुत्र हो, तो दूसरों को बनावटी पुत्र नहीं बनाने चाहिए, भतीजा ही पिण्ड दे और वही भाग ले। (क्षेत्रज भी नहीं बनाना चाहिए-नारा०) पर यह याज्ञ० २। १३५ के अनुसार पत्नी कन्या, पिता, माता और भाइयों के अभाव में होता है (कुल्लू०राघ०) † वासि० १७।११ विष्णु० १५।४१ इसलिए सपत्नियों में से किसी के भी पुत्र हो, तो दूसरियों को दत्तक आदि नहीं बनाना चाहिये, (कुल्लू० राघ०) नियोग नहीं करना चाहिए (नारा०) ‡ उत्तम=पहला २

(पिता, पितामह और प्रपितामह) को जलाञ्जलि देवे, और तीनों में पिण्ड प्रवृत्त होता है, चौथा इनको देने वाला है, पांचवां नहीं बन सक्ता है * ॥१८६॥ सपिण्डों में से जो समीपी हो, उस २ का धन हो, इसके पीछे उस वंश का कोई हो, पीछे आचार्य और शिष्य का॥१८७॥ सब के अभाव में वेदवेत्ता, शौचवाले जितेन्द्रिय ब्राह्मण धन भागी होते हैं, इसप्रकार धर्म की † हानि नहीं होती है ‡

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥१८९॥
संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्र माहरेत्।
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥१९०॥
द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥१९१॥

ब्राह्मण का धन राजा को नहीं लेना चाहिए, यह मर्यादा है § दूसरे वर्णों का सब के अभाव में राजा लेवे, ॥ ॥१८९॥ निःसन्तान मरे की पत्नी सगोत्र ¶ से पुत्र लेवे, और वहां (मरे) का जो धन हो, वह इसको देवे ॥१९०॥ अलग २ दो से उत्पन्न हुए जो दो (पुत्र) स्त्री के धन में विवाद करें उनमें से जो जिसके

---

* इसलिए अपुत्र पितामह आदि के धन में गौण पोते का अधिकार है (कुल्लू०) † पिण्डादि धर्म की (कुल्लू०) ‡ वासि० १७।८४-८६ गौत० २८। ४१ बौधा० १। १३-१४ विष्णु० १७। १३-१४॥

§ यदि पूर्वोक्त वेदज्ञ ब्राह्मण न मिलें, तो ब्राह्मणमात्र को देदे, (कुल्लू० राघ०)॥ वासि० १७।८३ गौत० २८। ४२ आप० २। १४।५ बौधा० १।१३।१५-१६ ¶ देवर वा सपिण्ड के साथ पूर्व नियोग कहा है, यह उनके अभाव में सगोत्र के साथ प्राप्ति के लिये

पिता का हो, उसको वह ग्रहण करे, दूसरा नहीं *॥१९१॥

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः ।
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥ १९२ ॥
यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ।
मातामह्या धनात्किञ्चित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥१९३॥
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीति कर्मणि ।
भ्रातृमातृपितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनंस्मृतम्॥१९४॥
अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैवयत् ।
पत्यौजीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥१९५॥

माता के मरने पर सारे सहोदर भाई और सहोदर बहिनें मिलकर माता के धन को बांटें † ॥१९२॥ जो उन (बहिनों) की कन्याएं हों ‡ उनको भी यथायोग्य नानी के धन से प्रीति पूर्वक कुछ देना चाहिए ॥ १९३ ॥ (वैवाहिक होम पर) अग्नि

है, (कुल्लू०, राघ०)* न नियुक्त हुई भी यदि सगोत्र से लेवे, तब वह सन्तान चाहे गोलक है, तौ भी और समीपियों के अभाव में वह क्षेत्रपति के धन का भागी हो, (नारा०) प्रथम पति से पुत्र होने पर पति मर गया, उस विधवा ने यदि दूसरा पुत्र दूसरे की पत्नी बनकर पौनर्भव उत्पन्न किया है, वा जार से गोलक उत्पन्न किया है, और उस पति वा जार के मरने पर उसका धन भी सम्भाला है, अब दोनों धन स्त्री के पास हैं, उन धनों के विषय में यदि विवाद हो तो ॥

† कुल्लू० बृहस्पति के वचनानुसार यह कहता है, कि बहिनें जो अविवाहिता हैं, विवाहिता हों, तो उनको चौथा हिस्सा मिले ॥कुल्लू०

के सामने (जिस किसी से) पाया धन, पति के घर जाते समय जो मिला धन, पति ने जो प्रीति के काम में दिया, माता, पिता और भाई ने जब कभी दिया धन यह छः प्रकार का स्त्री धन कहा है * ॥ १९४ ॥ विवाह के पीछे जो (पति वा बन्धु से) पाया धन, और प्रसन्न हुए, पति ने जो (प्रीति कर्म से अन्यदा) दिया, वह दोनों (धन दोनों प्रकार का यद्यपि स्त्री धन नहीं, तथापि) पति के जीते मरी का उसकी सन्तान का हो †॥१९५॥

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वं प्राजापत्येषु यद्वसु ।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥ १९६ ॥
यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ।
अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥१९७॥
स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथञ्चन ।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ १९८ ॥
न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥१९९॥
पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥२००॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व और प्राजापत्य विवाहों में जो स्त्री का धन है, वह निःसन्तान मरने पर पति का ही माना है (संतान हो, तो सन्तान का होता है) ‡ ॥ १९६ ॥ पर जो इसको

यहां दौहित्रियें आविवाहिता लेता है। नारायण कहता है, कि विवाही बहिनों को जो मान के लिये देना है, वही उनकी कन्याओं को देवे,

* याज्ञ० २ । १४३ विष्णु० १७ । १७ † याज्ञ० २ । १४४

‡ १९६-१९७ याज्ञ० २।१४५ विष्णु० १७ । १९-२०

आसुरादि विवाहों में धन दिया गया है, वह, निःसन्तान मरने पर उसके माता पिता का होता है ॥ १९७ ॥ (ब्राह्मण की) स्त्री को जो धन उसके पिता ने दिया है, वह ब्राह्मणी कन्या लेवे, (चाहे वह धन क्षत्रिया, वैश्या, वा शूद्रा स्त्री का भी हो) अथवा उसकी सन्तान का हो * ॥ १९८ ॥ बहुतों के सांझे कुटुम्ब (के धन) से स्त्रियें अपने आप कुछ न निकालें, अपने (न सांझे = निरे पति के) धन से भी अपने पति की आज्ञा विना नहीं ॥१९९॥ पति के जीते हुए स्त्रियों ने जो भूषण धारण किया हो, उसको वारिस न बांटें, बांटें तो पतित होंगे †॥२००॥

अनीशौ क्लीबपतितौ जात्यन्ध बधिरौ तथा ।
उन्मत्तजडमूकाश्चयेचकेचिन्निरिन्द्रियाः ॥ २०१ ॥

नपुंसक, पतित, (महा पातकी) जन्मान्ध, बहिरा, पागल, जड़, गूंगा, और जो (लूला, लंगड़ा आदि) विकल इन्द्रियोंवाले हैं, यह (पिता आदि के धन के) भागी नहीं होते ‡॥ २०१ ॥

सर्वेषामपितु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितोह्यदद्भवेत् ॥ २०२ ॥
यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथञ्चन ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥ २०३ ॥

*कुल्लू०नारा० दोनों कहते हैं,ब्राह्मणी कन्या हो, तो उसी को मिले, भाइयों को नहीं, न हो, तो भाइयों को मिले । राघ० उसकी सन्तान से अभिप्राय ब्राह्मणी कन्या की सन्तान लेता है † विष्णु० १७।२२ ॥

‡ २०१–२०३ वासि० १७ । ५२–५३ गौत० २८ । २३, ४०, ४३ आप० २ । १४ । १–१५ बौधा० २ । ३ । ३७–४० याज्ञ० २ । १४०–

यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधि गच्छति।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः॥ २०४॥
अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत्।
समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्यइति धारणा॥२०५॥
विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत्।
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च॥ २०६॥

किन्तु (धन लेने वाले) बुद्धिमान् को चाहिए, कि इन सब (नपुंसक आदि) को सदा * शक्ति अनुसार अन्न वस्त्र देवे, न दे, तो पतित होता है॥२०२॥यदि कथञ्चन † इनको (क्लीवादि को) स्त्रियों से प्रयोजन हो, तो इनके जो सन्तान उत्पन्न हो, वह सन्तान दाय के योग्य है॥ २०३॥ पिता के मरने पर बड़ा भाई जो कुछ धन कमाता है, उसमें छोटों का भाग होता है, यदि वह विद्या पढ़ रहे हों ‡ ॥२०४॥ यदि सभी विद्याहीन भाइयों की चेष्टा (खेती वा वाणिज्य आदि) से धन हुआ हो, तो उस धन में जो पिता से नहीं आया (आप कमाया है) उस में विभाग सम हो, (बड़े को उद्धार न मिले) यह मर्यादा है § ॥ २०५॥ विद्या से, मित्रता से, और मधुपर्क के समय जो धन जिसको मिला हो, वह उसी का हो॥

---

१४१ विष्णु० १५। ३२। ३७ * अत्यन्त=सदा नारा० इस शब्द को 'अदवत्' के साथ आन्वित करके यह अर्थ करता है, अत्यन्तं अदत्,=बिल्कुल न दे, तो पापी होता है, † 'कथञ्चन' कहने से 'नपुंसक आदि विवाह के अयोग्य हैं, यह सूचित किया है। नपुंसक आदि की सन्तान क्षेत्रज होगी (कुल्लू०, राघ०) ‡ यह नियम वहां लगता है, जब भाई अलग हुए २ न हों (कुल्लू०) § गौत०२८।३१ ॥ याज्ञ० २। ११८-११९

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।
सनिर्भाज्यःस्वकादंशात्किञ्चिद्दत्त्वोपजीवनम्॥२०७

जो अपने कर्म से (कमाने के) समर्थ हुआ भाइयों के (सांझे) धन के लिये चेष्टा न करे, उसको अपने भाग से कुछ जीवन देकर अलग कर देना चाहिए * ॥ २०७ ॥

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ।
स्वयमीहित लब्धं तन्नाकामो दातु मर्हति ॥२०८॥
पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।
न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥२०९॥
विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन् पुनर्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते॥२१०॥
येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ।
म्रियेतान्यतरोवापि तस्य भागो न लुप्यते ॥२११॥

पिता के धन को खर्च न करके जो निरे परिश्रम (खेती आदि) से कमाया है, उस निरे अपने उद्यम से कमाए धन को न चाहे, तो (भाइयों को बांट) न दे † ॥ २०८ ॥ खोए हुए पैतृक धन को यदि पिता (अपने पौरुष से) पावे, तो उस अपने कमाए को, न चाहे, तो पुत्रों के साथ न बांटे ‡ ॥ २०९॥ (भाई)

*याज्ञ० २।११६ † पूर्व २०५ में मिलकर कमाए में सब का भाग कहा है। २०८—२०९ याज्ञ०२।११८—११९ विष्णु०१८।४२—४३ ‡ पिता यदि जीते जी पुत्रों को अलग करे, तो अपने कमाए धन में उसका पूरा अधिकार है, जिसतरह चाहे दे,वा न दे,पर उसके पिता के धन पर, उसके तुल्य ही उसके पुत्रों का स्वत्व भी है। हां यदि कोई डूबी

पहले अलग होकर फिर (धन को) इकट्ठा करके, फिर इकट्ठे होकर रहें, वह यदि फिर विभाग करें, तो वह सम विभाग हो, बड़े का उद्धार वहां नहीं होता है, * ॥ २१० ॥ जिन (भाइयों) में से (विभाग के समय) छोटा वा बड़ा भाई अपने हिस्से से हीन होजाए † वा कोई मर जाए, उसका हिस्सा लुप्त नहीं होता है

सोदर्याविभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ॥२१२॥
यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ।
सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥२१३॥
सर्वएव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ।
न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥२१४॥

किन्तु सारे सहोदर भाई और सांझे भाई, और सहोदर बहिनें सब इकट्ठे मिलकर बराबर २ बांट लें ‡ ॥ २१२ ॥ जो बड़ा भाई लोभ से छोटे भाइयों को ठगे, वह बड़ा (पूजनीय) नहीं रहता, अधिक भाग का भागी नहीं रहता, और राजा से दण्ड-

---

हुई रक़म वह प्राप्त करे, तो उस पर अपनी कमाई के तुल्य उसका स्वत्व होगा। २०८-२०९ में 'अकामःऽन चाहे' कहने का यह अभिप्राय है, कि है तो बांट देना ही अच्छा, हां न्याय उसको बांटने पर अनुरोध नहीं कर सकता * विष्णु० १८। ४१ † कारण कि पतित होजाए, वा संन्यासी होजाए, ‡ गौत० २८। २१ याज्ञ० २। १३८ सहोदर भाई, और वैमात्र भाइयों में सभी जो उसके साथ सांझी हों (कुल्लू०) उसका स्वत्व सहोदर भाई लेवे, उसके अभाव में वैमात्र भी जो उसके साथ सांझी हों, उनके अभाव में सहोदर बहिनें पर यह सब पुत्र, पत्नी, कन्या, माता, और पिता के अभाव में है।

नीय होता है ॥ २१३ ॥ विरुद्ध कर्मों में प्रवृत्त जितने हों, वह सभी भाई, धन के योग्य नहीं होते, और न छोटों को न देकर बड़ा अलग धन करले * ॥ २१४ ॥

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथञ्चन ॥२१५॥

भाई जो (पिता के साथ रहते हैं) अलग नहीं हुए, उन सब का यदि (धन कमाने में) मिलकर उद्योग हो, तो विभागकाल में पिता किसी को भी न्यून वा अधिक भाग न दे † ॥२१५॥

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेवहरेद्धनम् ।
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥२१६॥
अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥२१७॥
ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ।
पश्चाद् दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत्॥२१८॥
वस्त्रं पत्रमलङ्कारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ।
योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥ २१९ ॥
अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः ।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥२२०॥

इनके होने में तो इन्हीं को मिले, (नारा०) * गौत० २८। ४० आप० २। १४। १९ बौधा० २। ३। ३८ ॥

† किसी का अधिक प्रयास देखकर अधिक न दे। (नारा०) इससे यह भी सिद्ध है, कि पिता को न्यून अधिक विभाग करने में

विभाग से पीछे जो उत्पन्न हुआ है, वह पिता के ही धन को लेवे, अथवा जो उस (पिता) के साथ सांझी हों, उन (भाइयों) के साथ विभाग करे * ॥ २१६ ॥ निःसन्तान मरे पुत्र के धन को माता लेवे, और माता के भी मर जाने पर पिता की माता लेवे † ॥ २१७ ॥ जब सारा ऋण वा धन यथाविधि बांट लिया हो, पीछे जो कुछ (ऋण वा धन का) पता लगे, वह सारा बराबर २ बांटें ‡ ॥२१८॥ वस्त्र, सवारी, भूषण, पका अन्न, जल, स्त्रियें, लाभ और रक्षा और मार्ग इनको बांटने योग्य नहीं कहते § ॥२१९॥ यह तुम्हें विभाग और क्षेत्रज आदि पुत्रों के करने की विधि क्रमशः कही है, अब जुए की व्यवस्था जानो ॥

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।
राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥२२१॥

द्यूत और समाह्वय को राजा अपने राष्ट्र से हटाए, क्योंकि

अधिकार है, जैसा याज्ञ० २ । ११६ में कहा है । (मेधा०) * गौत० ३८ । २८ याज्ञ० २ । १२२ विष्णु० १७ । ३ † याज्ञ० २ । १३५ विष्णु० १७ । ७ पूर्व १८५ में अपुत्र का धन पितृ गामि कहा है यहां मातृ-गामि, याज्ञ० ने (२ । १३५ में) माता पिता दोनों इकट्ठे कहे हैं, इसलिए व्यवस्था यह है, कि अपुत्र मरे का धन उसकी विधवा लेवे, विधवा न हो तो कन्या लेवे, कन्या भी न हो, तो माता पिता बांट कर लेवें, माता पिता न हों, तो दादी लेवे (कुल्लू०) पुत्र, पोता, प्रपोता, पत्नी, कन्या न हों, तब माता लेवे (नन्द०) ‡ याज्ञ० २ । १२६ § गौत० २८ । ४६-४७ विष्णु० १८ । ४४ यहां वस्त्र आदि जो जिसका है, वह उसी का रहे, जल=कूप आदि और स्त्रियें दासी आदि सांझी रहने दें । लाभ=राजा आदि से वजीफ़ा आदि । क्षेम=घर के चारों ओर कोट आदि । प्रचार=चरागाह वा खेत बाग आदि में जाने आने का मार्ग ॥

यह दो दोष राजाओं के राज्यको नाश करनेवाले हैं *॥२२१॥

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ।
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥२२२॥
अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः॥२२३॥
द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥२२४
कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाखण्डस्थांश्च मानवान् ।
विकर्मस्थान्शौण्डिकांश्चक्षिप्रंनिर्वासयेत्पुरात् ॥२२५
एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।
विकर्म क्रियया नित्यं वाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६

यह सामने चोरी है, जो द्यूत और समाह्वय है, इन दोनों के रोकने में राजा यत्नवान् हो ॥ २२२ ॥ अप्राणियों (नर्द कौड़ी, आदि) से जो खेला जाता है, वह लोक में द्यूत कहा जाता है, और जो प्राणियों (कुक्कड़, मेढ़े, भैंसे, आदि) से खेला जाता है, वह समाह्वय कहलाता है ॥ २२३ ॥ द्यूत और समाह्वय को जो करे, और करवाए, उन सब को राजा ताड़े (अपराधानुसार पिटवाए वा हाथ आदि कटवाए) और द्विजों के चिन्हधारी शूद्रों को भी † ॥२२४॥ जुआरिये, नाचने गाने वाले, क्रूर, पाखण्डी, विकर्म्मी ‡ शराब वेचनेवाले, इनको जल्दी नगर से बाहर कराए ॥ २२५ ॥ यह गुप्त चोर राजा के राष्ट्र

* २२१–२२९ गौत० १५ । १८ आप० २ । २५ । १२–१५ बौधा० २ । २ । १६ याज्ञ० २ । १९९–२०३ † याज्ञ० २। २०४ ‡ क्रूर = निर्दय

में रहते हुए अपने उलटे कामों से भली प्रजाओं को पीड़ा देते हैं*

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥२२७
प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः।
तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा॥२२८॥
क्षत्रविट् शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन्।
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः॥२२९

यह जुआ पूर्व समय में बड़ा वैर उत्पन्न करनेवाला देखा गया है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष जी बहलाने के लिए भी जुआ न खेले॥ २२७॥ जो मनुष्य गुप्त वा प्रकट इसका सेवन करे, उसको राजा जैसा चाहे वैसा दण्ड दे॥२२८॥ क्षत्रिय वैश्य शूद्र दण्ड न दे सकें, तो उचित कर्म करके दण्ड चुका दें, ब्राह्मण धीरे २ दे देवे†

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम्।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम्॥२३०॥

स्त्री, बालक, पागल, वृद्ध, कङ्गाल और रोगी इनको राजा (वृक्ष की-) जड़, बांस की लाठी वा रस्सी आदि से ताड़े॥२३०॥

येनियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम्।
धनोष्मणा पच्यमानांस्तान्निस्स्वान् कारयेन्नृपः॥२३१

बर्ताव वाले, वेद विरोधी (कुल्लू०) "केरान्" बड़ी टेढ़ी चाल वाले (नारा०)। बिना आपत् के पर-धर्म से जीविका करनेवाले (कुल्लू०)

* पीड़ा देते हैं=दुःशील बना देते हैं, (नन्द०)

† याज्ञ० २। ४३ और मिलाओ ८। १७७ से॥

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद् द्विट्सेविनस्तथा ॥२३२
तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत् ।
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद् भूयो निवर्तयेत् ॥२३३॥

जो अधिकारों पर लगाए हुए पुरुष, धन की गर्मी से बिगड कर * कामवालों के काम बिगाड दें, उनका राजा सर्वस्व छीन ले † ॥२३१॥ झूठी राजाज्ञा बनानेवाले, मन्त्रियों में फोटक डालनेवाले, स्त्री बालक और ब्राह्मण की हत्या करनेवाले, और (राष्ट्र के) शत्रुओं से मिले हुओं को राजा मार डाले ‡॥२३२॥ जहां कहीं जो कार्य निर्णीत होचुका, और न्यायानुसार उस पर दण्ड होचुका उसको (राजा) किया हुआ जाने, उसको फिर न लौटाए § ॥२३३॥

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ।
तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥२३४॥
ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥२३५॥
चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ।
शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥२३६॥
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेये श्वपदकं कार्यं ब्रह्महण्याशिराः पुमान् ॥ २३७

* उत्कोच (रिश्वत) लेकर † मिलाओ पूर्व ७।१२४ विष्णु० ५। १८० ‡ याज्ञ० २। २४० विष्णु० ५। ९, ११ § यह किसी पहले राजा से किए के विषय में है (नारा०) अपने जजों से किए के विषय में

असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याऽविवाहिनः ।
चरेयुः पृथिवीं दीना सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ २३८॥

हां (राजा के) मन्त्री वा जज निर्णय ठीक न करें, तो उसको स्वयं राजा फिर करे, और उनको सहस्र दण्ड देवे * ॥ २३४ ॥ ब्राह्मण का मारनेवाला, शराब पीनेवाला; † (ब्राह्मण का सोना) चुरानेवाला और गुरु स्त्री गामी, यह सारे मनुष्य अलग २ महा पातकी जानने चाहिए ‡ ॥ २३५ ॥ इन चारों को ही, यदि यह प्रायश्चित्त न करें, तो शारीर दण्ड, और धन दण्ड, धर्मानुसार देवे ॥ २३६ ॥ गुरु स्त्री गमन में (तपे लोहे के साथ ललाट पर भग का चिन्ह बनावे, शराब पीने में शराब घर का, चोरी में कुत्त के पाओं का, और ब्रह्महत्या करनेवाले में बे सिर का पुरुष बनावे § ॥ २३७ ॥ इनके साथ बैठकर न भोजन करें, न इनको यज्ञ कराएं, न पढ़ाएं, न इनसे विवाह सम्बन्ध करें, यह सारे धर्मों से अलग किए हुए दीन होकर पृथिवी पर घूमें ॥ २३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ।
निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥२३९॥
प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ।
नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥२४०

है (मेधा०, कुल्लू०) * याज्ञ० २ । ३०५ मेधा० कुल्लू० के अनुसार यह नियम उत्कोच से भिन्न विषय में है, यह छोटे कार्य में दण्ड है, बड़े कार्य में अधिक दण्ड हो † ब्राह्मण (मेधा० राघ०) द्विजाति (कुल्लू०, नारा०) ‡ २३५—२४२ बौधा० १।१८। १८ विष्णु० ५।३-७ § २४० में ललाट पर निषेध कहने से सिद्ध है, कि यह चिन्ह ललाट पर बनाने चाहियें ।

इन चिन्हवालों को ज्ञाति और सम्बन्धी त्याग देवें, न यह दया के पात्र, न नमस्कार के योग्य रहते हैं, यह मनु की आज्ञा है ॥ २३९ किन्तु शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करते हुए सारे वर्णों को * राजा ललाट पर चिन्ह न दे, उत्तम साहस दण्ड देवे ॥ २४० ॥

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ।
विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥२४१॥
इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यऽकामतः ।
सर्वस्वहार मर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥२४२॥

ऐसे अपराधों में ब्राह्मण को मध्यम साहस (५०० पण) दण्ड देना चाहिए। अथवा धन और दूसरे सामान समेत उसे देश से निकाल देना चाहिए † ॥ २४१ ॥ (ब्राह्मण से) दूसरे यदि इन पापों को विना इच्छा के करें; तो उनका सर्वस्व छीनने के योग्य है, जान बूझकर करें; तो देश निकाले ‡ के योग्य हैं॥२४२॥

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ।
आददानस्तुतल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ २४३ ॥

धार्मिक राजा महापातकी के धन (दण्ड) को आप न लेवे, यदि

* सारे वर्ण=आर्य तीन वर्ण=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। नारा०, नन्द० 'पूर्वे वर्णाः'=पहले तीन, वर्ण पाठ पढ़ते हैं ॥

† अगले श्लोक में 'विन इच्छा' और 'इच्छा से' कहने से यहां भी, इच्छा में गुणवान् ब्राह्मण को मध्यम साहस (निर्गुण को २४० में कहा उत्तम साहस) और इच्छा से किये में देश निकाला हो (कुल्लू०) ‡ कुल्लू० यहां प्रवासनं का अर्थ वध करता है, पर यहां वध अर्थ नहीं हो सका, पूर्व २३८ में उन को पृथिवी पर घूमने

लालच से ले लेवे; तो महापातक के दोष से युक्त होता है ॥२४३॥

अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत ।
श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ २४४ ॥

उस दण्ड को जल में (नदी आदि में) डालकर वरुण के अर्पण करें अथवा वेद और व्रत से सम्पन्न ब्राह्मण को देवे, * ॥ २४४ ॥

ईशो दण्डस्यवरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ २४५ ॥

दण्ड का स्वामी वरुण है, क्योंकि वह राजाओं का भी दण्डधारी है, और वेद के पार पहुंचा ब्राह्मण सारे जगत का स्वामी है †॥२४५

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम् ।
तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः॥२४६॥

जहां राजा पापियों से धन की प्राप्ति त्यागता है, वहां मनुष्य (ठीक) समय पर उत्पन्न होते हैं और दीर्घ जीवी होते हैं ॥२४६॥

निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ।
बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥२४७

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ २४८ ॥

यावानवध्यस्यवधे तावान्वध्यस्यमोक्षणे ।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तुविनियच्छतः ॥२४९॥

देना कह आए हैं, किन्च स्वयं कुल्लू० ही पूर्व ८।२८४ की टीका में प्रवास्यः, का अर्थ देश निकाला करता है * याज्ञ २। ३०७

† वरुण राजाओं का अधिराज है, इसके लिये देखो तैत्ति ब्रा० ३।१।२।७ और विद्वान् ब्राह्मण के लिये देखो पूर्व १।९८-१०१

और वैश्यों की खेतियें जैसे बोई हों, वैसे अलग २ (समय २ पर) पकती हैं, बालक नहीं मरते हैं, और कोई विकार वाला (लूला लंगड़ा आदि) नहीं होता है ॥ २४७ ॥ जान बूझकर ब्राह्मणों को तंग करते हुए * शूद्रों को राजा तरह २ के वध के उपायों से मारे ॥ २४८ ॥ न मारने योग्य के मारने में जितना पाप राजा को देखा गया है, उतना मारने योग्य के छोड़ देनेमें है, और दण्ड देने वाले को, धर्म होता है † ॥२४९॥

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ।
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥
एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ।
देशानलब्धाँल्लिप्सेत लब्धाँश्च परिपालयेत् ॥२५१॥
सम्यङ् निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ २५२ ॥
रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥२५३॥
अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ २५४ ॥
निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥ २५५ ॥

नारा०'कालेन' के स्थान 'लोकेतु' पढता है, उस लोक में । *धन स्त्री आदि छीनते हुए (मेधा०) अत्यन्त दुःख देते हुए (नारा०) † मिलाओ पूर्व ८।१९, ३१०-३११, ३१७ ॥

द्विविधांस्तस्करान् विद्यात्परद्रव्याऽपहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥२५६॥

* (ऋणका न देना आदि) अठारह मार्गों में परस्पर झगड़ते हुए (वादी प्रतिवादी) के व्यवहार का निर्णय विस्तार से कह दिया है ॥ २५० ॥ इस प्रकार धर्म युक्त व्यहारों को निर्णय करता हुआ राजा (अपनी प्रजा में राज भक्ति बढ़ाकर) नए देशों को पाने की इच्छा करे, और पाए हुवों का पालन करे ॥ २५१ ॥ (रहने के लिये) भली भांति (उत्तम) देश का आश्रय लेकर और शास्त्रानुसार उसमें दुर्ग बनाकर कांटों के हटाने में पूरा २ यत्न करे † ॥ २५२ ॥ सदाचारियों की रक्षासे और कांटों के शोधने से प्रजा पालने में तत्पर राजा स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ‡ ॥ २५३ ॥ जो राजा चोरों को दण्ड न देता हुआ बलि लेता है, उसके देश में हल चल पड़जाती हैं, और वह स्वर्ग से हीन हो जाता है ॥ २५४ ॥ जिस के भुजबल का आश्रय लेकर देश निर्भय होता है, उसका देश सदा इसतरह बढ़ता जाता है, जैसे जल सेचन से वृक्ष ॥ २५५ ॥ दूसरों के धन ठगने वाले, गुप्त और प्रकट इन दो प्रकार के चोरों को राजा गुप्तचररूपी आंखों से जानता रहे ॥ २५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥२५७॥
उत्कोचकाश्चौपाधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ।
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैःसह ॥२५८॥

* अठारह व्यवहारों का उपसंहार करते हुए राजा के कर्तव्य का परिशिष्ट कहते हैं (राघ०) † देखो पूर्व ७।६९-७० कांटे = चोर, ठग, राजद्रोही आदि ‡ २५३-२५४ देखो पूर्व ८।३०७,३८६-३८७ ॥

असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाःपण्ययोषितः॥२५९॥

एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककण्टकान् ।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः ॥२६०॥

उन में से प्रकट ठग वह हैं, जो नाना विध व्यवहार्य वस्तुओं में (खोट मिलाने) से जीविका करने वाले हैं, और जो चोर दस्यु (धाड़वी) आदि हैं, यह गुप्त ठग हैं।२५७। रिश्वत खोर, छलिये*, ठग, जुआरिये, मंगल † की सूचना से जीविका करने वाले मक्कार ‡, भाग्य बतलाने वाले।२५८। ठीक काम न करने वाले उच्च अधिकारी और वैद्य, अपने हुनर की महारत दिखला कर जीविका करने वाले §, और चालाक वेश्याएं।२५९। इस प्रकार के लोगों को प्रकट लोक के कांटे जाने, और भी आर्यों के चिन्ह (संन्यासादि) धारकर छिपकर विचरते हुए अनार्य ॥२६०॥

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्म कारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत्॥२६१॥
तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ।
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥२६२॥

* अपने ऊपर दूसरे का विश्वास उत्पन्न करा कर धोखा दे जाने वाले, (मेधा०) भय दिखला कर ठगने वाले (कुल्लू० राघ०) स्तुति आदि से फुसलाकर ठगने वाले (नारा०) † धन पुत्रादि का लाभ (कुल्लू० राघ०) ‡ अन्दर से पापी और बाहर से सदाचारियों के चिन्ह धारे § हुए अनुपयोगी हुनर (मेधा०)॥
का पूरा पता लगाकर ।

न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥२६३॥

इनको, अपने विश्वासी, (उन्हीं में मिलकर) उन २ कर्मों के करने वाले, गूढ़ गुप्तचरों से, और अनेकवेषधारी गुप्तचरों से (जानकर और) उखाड़ कर वस में लाए ॥२६१॥ अपने २ कर्म में जो उनके सच्चे दोष हैं, उन को प्रकट करके राजा बल और अपराध के अनुसार भली भांति दण्ड देवे ॥२६२॥ क्यों कि पृथिवी पर (भले वेष में) छिपे फिरते हुए दुष्ट-संकल्प चोरों की दुष्टता का रोकना दण्ड से बिना नहीं होसक्ता ॥२६३॥

सभाप्रपाऽपूपशाला वेशमद्यान्नविक्रयाः ।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥२६४॥
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥२६५॥

सभा, प्रपा (प्याऊ=सबील), हलवाई का हट्ट, चकला, मद्य और अन्न के विकने के स्थान, चौराहे, प्रसिद्ध वृक्ष, समाज (लोगों के इकट्ठ), तमाशे ॥२६४॥ पुराने बगीचे, जंगल, कारीगरों की दुकानें, उजाड़ घर, असली और बनावटी वन ॥२६५॥

एवं विधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥२६६॥
तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥२६७॥

इस प्रकार के स्थानों में राजा ठहरे रहने वाले और चलने फिरने

वाले सिपाहियों को और गुप्तचरों को चोरों के रोकने के लिये फिराता रहे ॥ २६६ ॥ उनके साथी बनजाने वाले, उनके पीछे लग जाने वाले, भांति२ के कर्मों के जानने वाले बड़े होश्यार जो पुराने चोर हों, उन गुप्तचरों से चोरोंको जाने और निर्मूल करे*

भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।
चौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ २६८ ॥
ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ।
तान्प्रसह्य नृपो हन्यात् समित्रज्ञातिबान्धवान्॥२६९॥
न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः ।
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥

वह (गुप्तचर) उन चोरों को भक्ष्य भोज्य (चलो हमारे घर प्रीतिभोजन करो) के बहाने से, ब्राह्मणों के दर्शन (के बहाने) से (अमुक स्थान पर सिद्ध ब्राह्मण है,) शूर वीरता के कर्म (अमुक स्थान पर एक पुरुष बहुतों के साथ युद्ध करेगा) के बहाने से उन (चोरों) का (राज पुरुषों से) समागम करादें (पकड़वा दें) ॥ २६८ ॥ जो (पकड़े जाने की शंका से) वहां न जावें, और गुप्तचरों के विषय में सावधान हो जाएं, उनको राजा बल से पकड़कर मित्र ज्ञातिबान्धवों समेत मारडाले ॥ २६९ ॥ धार्मिक राजा चुराई वस्तु (वा चोरी के साधनों=संधेवे आदि) के बिना चोर को न मारे, चोरी का माल वा साधन निकल आएं, तो बिन विचारे मरवाडाले ॥२७०॥

* "उत्सादयेत्" के स्थान पाठ 'उत्साहयेत्'=उत्साह दे (चोरी करने में) (गोवि० नारा० नन्द)

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥२७१॥
राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ।
अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्शिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥२७२॥

गाओं में भी जो कोई चोरों को (जानकर) अन्न देते हैं, वा सामान (रखने) के लिये-स्थान देते हैं, * उन सबको भी मरवा दे ॥ २७१ ॥ देश में जो रक्षा के काम पर लगाए गए हैं (पुलीस), और हद्दों पर रहने वाले जो सहायता के लिये नियत हैं, वह यदि (चोरों वा डाकुओं से की) मारपीट में मध्यस्थ रहें (सहायता के लिये न जाएं, वा पास खड़े देखते रहें) तो उनको भी जल्दी चोर की तरह दण्ड देवे ॥ २७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ।
दण्डेनैव तमप्योषेत स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥ २७३ ॥
ग्रामघाते हिताभंगे पथि मोषाभिदर्शने ।
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥२७४

जो धर्म (पुरोहिताई आदि से) जीविका करनेवाला अपने कर्तव्य के नियम से फिसलजाए, उसको भी अपने कर्तव्य से फिसले को, दण्ड से ही संतप्त करे ॥ २७३ ॥ गाओं के लूटने, जल का बांध टूटने, और मार्ग में मोस खोस देखने में जो (आस पास वाले) शक्ति अनुसार (सहायता के लिये) नहीं दौड़ते हैं, वह अपने माल असबाब समेत देश से निकाल देने चाहियें †

---

* (वस्त्रादि खरीदने के लिये) मूल धन देते और स्थान देते हैं (नारा०) † विष्णु ५ । ७४

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥२७५॥
सन्धिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूलेनिवेशयेत् ॥२७६॥
अंगुलीग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥ २७७ ॥
अग्निदान् भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।
संनिधातॄंश्च मोपस्य हन्याच्चोरमिवेश्वरः ॥२७८॥

राजा के खज़ाने को चुराने वाले, और (राजा के) प्रतिकूल स्थित, और शत्रुओं को भेद बतलाने वालों को राजा नाना प्रकार के दण्डों से मरवाए ॥ २७५ ॥ जो चोर रात को सेन्ध देकर चोरी करते हैं, राजा उनके हाथ काटकर तीक्ष्ण सूली पर चढ़ावे * ॥ २७६ ॥ गांटकतरने वाले की पहली पकड़ में अंगुलियें † कटवादे, दूसरी में हाथ और पाओं, तीसरी में वध के योग्य होता है ‡ ॥ २७७ ॥ (जान कर भी) जो इन को अग्नि § और अनाज देते हैं, शस्त्रों के रखने के लिये स्थान देते हैं और चोरी के माल को अपने पास रखते हैं, उनको भी राजा चोर की तरह मरवाए ॥ २७८ ॥

---

* याज्ञ० २।२७३ † दो अंगुलियें अंगूठा और तर्जनी (कुल्लू० राघ० नारा०) तर्जनी और मध्यमा (नन्द०)

‡ याज्ञ २।२७४ विष्णु ५।१३६

§ अग्नि शीतादि हटाने के लिये (मेधा०) घर आदि को लगाने के लिये (नारा०)

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥२७९॥

(बड़े उपकारक) तालाब के फोड़ने वाले को जल में (डुबाने से) वा शुद्ध वध * से मारे, यद्वा (तालाव को) फिर बनवादे और उत्तम साहस (सहस्रपण) दण्ड दे † ॥२७९॥

कोष्ठगारायुधागार देवतागार भेदकान् ।
हस्त्यश्वरथहर्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ २८० ॥
यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरत ।
आगमं वाप्यपां भिन्द्यात्सदाप्यः पूर्वसाहसम्॥२८१॥
समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वऽमेध्यमनापदि ।
स द्वोकार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥२८२॥
आपद्गतो ऽथवा वृद्धो गर्भिणी बालएव वा ।
परिभाषण मर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥२८३॥

(राजकीय) गोदाम घर, शस्त्रघर, और मन्दिरों के तोड़नवालों और (राजकीय) हाथी, घोड़े और रथों के चुरानेवालों को बिन विचारे मार ही दे ‡ ॥ २८० ॥ जो पूर्व समय के बने तालाब का जल ही ग्रहण करे, वा जलों के आने के मार्ग को नष्ट करे, उसे उत्तम साहस दण्ड देवे § ॥ २८१ ॥ जो विना आपत (रोग आदि) के राजमार्ग पर मल त्यागे, वह दो कार्षापण दण्ड दे और मल को जल्दी शोधे ¶ ॥ २८२ ॥ आपत् में पड़ा हुआ वा

* शुद्ध वध=सिर काटना (नारा० राघ०) † याज्ञ २।२७८
‡ याज्ञ २।२७३ § और मार्ग को ठीक करे (नारा०)
¶ विष्णु ५।१०६-१०७

वृद्धा वा गर्भिणी स्त्री वा बाल यह झिड़कने योग्य हैं, और मल शोधदें, यह मर्यादा है ॥ २८३ ॥

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या प्रचरतां दमः ।
अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २८४ ॥
संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥२८५॥
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा ।
मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥२८६॥

बिनजाने इलाज करने वाले सभी चिकित्सकों को दण्ड हो, मनुष्यों से भिन्न (पशु आदि) के विषय में प्रथमसाहस (अढ़ाई सौ) और मनुष्यों के विषय में मध्यम साहस (पांच सौ) हो * ॥ २८४ ॥ पुल, ध्वज, लकड़ी † और मूर्तियों का तोड़ने वाला उस हर एक वस्तु को नया बनवा दे और पांच सौ दण्ड दे ‡ ॥२८५॥ न निर्दोष वस्तु (केसर आदि) को (मिलावट मिलाकर) दूषित करने, (न फोड़ने योग्यों माणिक आदि को) फोड़ने, और मणियों के खराब छेद करनेमें प्रथम साहस दण्ड हो§

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ।
समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥ २८७ ॥

---

* याज्ञ २ । २४१ विष्णु ५ । १७५-१७७ पर यह मृत्यु न होने पर है, मृत्यु हो, तो अधिक दण्ड हो (नारा०) † गाओं आदि की झंडी (नारा०) पोहकर से पार होने की लकडी (कुल्लू०)

‡ याज्ञ २ । २९७ विष्णु ५ । १७४

§ याज्ञ २ । २४५-२४६ विष्णु ५ । १२४ (दण्ड के सिवाय वस्तु का मूल्य स्वामी को देवे)

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत्।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥२८८॥

जो सरल पुरुषों के साथ बेईमानी वर्ते वा मूल्य में विषमता करे*
(घट वस्तु का अधिक मूल्य ले, वा उनकी वस्तु का घट मूल्य दे)
उसको प्रथमसाहस वा मध्यम साहस दण्ड हो ॥ २८७॥ राजा
बन्धनगृहों को सड़क के ऊपर बनवाए, जहां पापकारी दुखिया
और विकराल (लंबे बालों नखों वाले) दीखते रहें ॥ २८८॥

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम्।
द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥२८९॥

कोट (फसील) के तोड़ने वाले, खाइयों के भरने वाले और
द्वारों के तोड़ने वाले को जल्दी ही देस से निकाल दे ॥२८९॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्त्तव्यो द्विशतो दमः।
मूलकर्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च ॥२९०॥

सारे अभिचारों (मारने के होमों) में, असम्बन्धियों से किये †
मूल कर्म (जड़ से किये जादू) में, और अनेक प्रकार के टोनों
(मारण, मोहन, उच्चाटनादि) में दो सौ दण्ड देवे ॥ २९० ॥

अबीजाविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥ २९१ ॥

अबीजों (न उगने योग्यों) का, और, (निकृष्टों को) उत्कृष्ट
बीज करके बेचने वाला, (ग्राम नगर आदि की) सीमा का तोड़ने
वाला विकराल वध (नासा छेद आदि) को प्राप्त हो ॥२९१॥

---

* एक जैसा मूल्य देने वालों के साथ विषम वर्ते (कुल्लू०)

† भर्ता आदि के वश करने में दोष नहीं (नारा०)

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ।
प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥ २९२ ॥
सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत॥२९३॥

सब कांटों में से अधिक पापी सुनारे को जब वह अन्याय (खोट मिलाकर देने) में प्रवृत्त हो, तो राजा छुरों से टुकड़े २ कटवाए ॥२९२॥ खेती करने की वस्तुओं (हल आदि) के शस्त्रों के और औषध के चुराने में राजा समय और प्रयोजन को * देखकर दण्ड नियत करे ॥२९३॥

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्त प्रकृतयोह्येताः सप्तांगं राज्यमुच्यते ॥ २९४ ॥
सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ २९५ ॥
सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्नकिञ्चिदातिरिच्यते॥ २९६ ॥

राजा, मन्त्री, पुर, देश, कोश, दण्ड (हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे) और मित्र यह सात प्रकृतियें मिलकर † सात अंगों वाला राज्य कहलाता है ॥२९४॥ राज्य की इन सात प्रकृतियों में से यथा क्रम (परले २ से) पूर्व २ (के विनाश) को भारी व्यसन जाने ॥२९५॥ यह सात अंगोंवाला राज्य जो (यति के) त्रिदण्ड की तरह एक दूसरे से जकड़ा हुआ है, इन में से एक दूसरे से

* खेत बोने के दिनो में अधिक दण्ड हो अन्यदा न्यून इत्यादि । इसी प्रकार अधिक काम की वस्तु में अधिक दण्ड हो

† देखो पूर्व ७।२५७ याज्ञ १ ।३५२

(अपने २) गुण की विशेषता से कोई भी बढ़कर नहीं है *

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ।
येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिञ्श्रेष्ठमुच्यते ॥ २९७॥

(क्यों कि अपने२) उन२ कामों में, वह २ अंग विशेष है, जिस से जो काम सिद्ध होता है, उसमें वह श्रेष्ठ कहाता है ॥

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥२९८॥
पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ।
आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥ २९९ ॥
आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ ३०० ॥
कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥

गुप्तचरों से, उत्साह के सम्बन्ध से, और कर्मों के अनुष्ठान से राजा अपनीशक्ति और शत्रु की शक्ति को सदा जानता रहे ॥२९८॥ सारी पीड़ाएं (=अकाल आदि), व्यसन (प्रकृतियों में क्षोभ आदि) और उनकी गुरुता लघुता सोच कर राजा कार्यों (सन्धि विग्रह आदि) का आरम्भ करे ॥२९९॥ थक२ कर फिर २ कामों को आरम्भ करे, काम करने वाले पुरुष को

---

* पूर्व २९५ में जो पूर्व २ बड़ा कहा है, वह एक दूसरे के उपयोग की बहुमूल्यता से है, पर इन में से एक के बिना भी काम नहीं चल सक्ता, इस लिये अत्यावश्यक होने से सब एक जैसे हैं ।

लक्ष्मी सेवन करती है ॥ ३०० ॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि यह सब राजा के बर्ताव हैं, राजा ही युग कहलाता है ॥

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम् ।
कर्मस्वभ्युद्यत स्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ ३०२ ॥

सोया हुआ (निरुद्यमी पड़ा हुआ) वह कलि होता है, निरा जागता हुआ (जानकर भी न करता हुआ) द्वापर, कर्मों में उद्यत हुआ त्रेता और करता हुआ सत्य युग होता है * ॥ ३०२ ॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥ ३०३ ॥
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
तथाभिवर्षेत्स्वंराष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ३०४ ॥

इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि, और पृथिवी के तेज के योग्य राजा बर्ताव करे ॥ ३०३ ॥ इन्द्र जिस तरह बरसात के चार महीने बरसता है, वैसे इन्द्र के व्रत का आचरण करता हुआ देशपर कामनाओं (के पूरा करने) की वर्षा करे ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथाहरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हितत् ॥ ३०५ ॥

जैसे सूर्य आठ महीने रश्मियों द्वारा जल खींचता है, वैसे देशसे सदा † कर लेवे, यह सूर्य का व्रत है ॥ ३०५ ॥

प्रविश्य सर्वभूतानि यथाचरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ३०६ ॥

* मिलाओ ऐत० ब्रा० ७।१५ ॥
† नन्द० 'नित्यं' के स्थान 'सम्यक्' भलीभान्ति, पढ़ता है ॥

जैसे वायु सब जन्तुओं के अन्दर प्रवेश करके विचरता है, वैसे गुप्तचरों के द्वारा (सब के अन्दर) प्रवेश करे, यह वायु का व्रत है॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्या प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥३०७॥
वरुणेन यथा पाशैर्बद्धएवाभिदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रत मेतद्धि वारुणम् ॥ ३०८ ॥
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ३०९ ॥
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥
यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥३११॥
एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ।
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात् स्वराष्ट्र परएव च ।

जैसे यम समय आने पर (निष्पक्ष हो अपराधानुसार) दण्ड देता है, वैसे राजा से प्रजा दण्डनीय होनी चाहिये, यह यम का व्रत है ॥ ३०७ ॥ वरुण से जैसे फांसों द्वारा बांधा हुआ ही दीखता है (पहले कुछ पता नहीं लगता) इस प्रकार पापियों को दण्ड दे, यह वरुण का व्रत है ॥ ३०८ ॥ जैसे पूर्ण चन्द्र को देखकर मनुष्य प्रसन्न होते हैं, वैसे जिसपर प्रकृतियें प्रसन्न हैं, वह राजा चन्द्र व्रत वाला है ॥ ३०९ ॥ पाप करने वालों पर सदा प्रचण्ड

और तेजस्वी हो, और दुष्ट सामन्तों (हद पर रहने वालों) के मारने वाला हो, यह अग्नि का व्रत है ॥३१०॥ पृथिवी जैसे सब भूतों (उच्च नीचों) को तुल्य धारण करती है, वैसे (उच्च, नीच, दीन, अनाथ) सब भूतों को धारण करे, यह पृथिवी का व्रत है ॥३११॥ इन उपायों से और (अपनी बुद्धि से समझे) अन्य उपायों से युक्त राजा सावधान हो अपने देश में (रहते हुए) और दूसरे (देश) में (रहते हुए अपने देश में आकर चोरी करने वाले) चोरों को रोके ॥३१२॥

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ।
ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥३१३॥
यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥

(कोश के क्षय आदि से) बड़ी आपदा में पड़ा हुआ भी ब्राह्मणों को (धनग्रहणादि से) प्रकुपित न करे, क्योंकि वह कुपित हुए इसको जल्दी सेना और वाहनों समेत मार सक्ते हैं ॥

जिन्हों ने अग्नि को सर्वभक्षी और समुद्र को अपेय (खारी) बना दिया, चन्द्र को क्षीण होने और पूरा होनेवाला बना दिया, उनको प्रकुपित करके कौन नहीं नष्ट होगा * ॥ ३१४ ॥

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ।
देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥३१५॥

* इस श्लोक में जिन कथाओं की ओर इशारा है, वह महाभारत मोक्ष धर्म १२ । ३४४, ५१, ५७—५८, ६०—६१ में दी हैं कि भृगु ने शाप से अग्नि को सर्वभक्षी बनाया, वडवामुख ऋषि ने समुद्र को खारी बनाया, और दक्ष ने चन्द्र को घटने बढ़ने वाला ।

यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ।
ब्रह्मचैवधनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः॥३१६॥
अविद्वांश्चैवविद्वांश्च ब्राह्मणोदैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥३१७॥
श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभि वर्धते ॥ ३१८ ॥
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हितत् ॥३१९॥

जो कुपित हुए दूसरे लोकों और दूसरे लोकपालों को रच दें,और देवताओं को अदेवता बना दें, उनको पीड़ा देता हुआ कौन बढ़ सक्ता है † ॥ ३१५ ॥ जिनके आश्रय लोक और देवता सदा खड़े हैं, और धन जिनका वेद है, कौन जीना चाहता हुआ उन को पीड़ा दे ‡ ॥ ३१६ ॥ जैसे स्थापन किया, और न स्थापन किया अग्नि बड़ा देवता है, इसप्रकार अविद्वान् और विद्वान् ब्राह्मण बड़ा देवता है ॥ ३१७॥ जैसे तेजस्वी अग्नि श्मशानों में भी दूषित नहीं होता है, किन्तु यज्ञ में बुलाया हुआ फिर भी बढ़ता ही है ॥ ३१८ ॥ इसप्रकार यद्यपि सारे ही अनिष्ट कर्मों में वर्त्तमान हों, तथापि ब्राह्मण सर्वथा पूजनीय हैं, यह बड़े देवता हैं ॥

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ।
ब्रह्मैव संनियन्तृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसम्भवम् ॥३२०॥

† दूसरे लोकों को विश्वामित्र ने रचा, दूसरे इन्द्र (लोक पाल) को बालखिल्यों ने, और माण्डव्य के शाप से यम (देवता) विदुर बना (महाभारत १ । १०८, १६) ‡ देखो पूर्व १ । ९३—९९

ब्राह्मणों के प्रति सब प्रकार से बहुत ऊंचे आए क्षत्रबल का, ब्रह्मबल ही रोकनेवाला है, क्योंकि क्षत्रबल ब्रह्मबल से उत्पन्न हुआ है

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥३२१॥
नाऽब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाऽक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ।
ब्रह्मक्षत्रं च संयुक्तमिहचामुत्र वर्धते ॥ ३२२ ॥
दत्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥३२३॥
एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥३२४॥

जलों से अग्नि, ब्रह्म से क्षत्र, और पत्थर से शस्त्र प्रकट हुआ है, उनका सब जगह पहुंचने वाला तेज अपने कारणों में ठण्डा होजाता है ॥ ३२१ ॥ विना ब्रह्म के क्षत्र नहीं बढ़ता, और विना क्षत्र के ब्रह्म नहीं बढ़ता है, ब्रह्म और क्षत्र मिला हुआ लोक परलोक में बढ़ता है * ॥ ३२२ ॥ दण्ड से उत्पन्न हुआ सारा धन (जो विनियोग से बचा हुआ हो) ब्राह्मणों को देकर, राज्य भारको पुत्र पर डालकर रण में प्राणत्याग करे॥३२३॥ इसप्रकार राजधर्मों में सदा सावधान होकर विचरता हुआ राजा सब भृत्यों को प्रजा के हित में लगाए रहे ॥ ३२४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ।
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥३२५॥

* वासि० १९।४ गौत० ११।१४ ॥

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ।
वार्त्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥३२६॥

यह राजा का सारा सनातन कर्मानुष्ठान कह दिया, अब क्रमशः वैश्य और शूद्र की यह कर्म विधि जाने ॥ ३२५ ॥ वैश्य जिसका संस्कार (उपनयन) होचुका है, विवाह करके व्यापार में और पशुओं के पालन में सदा सावधान हो * ॥ ३२६ ॥

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ।
ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाःपरिददे प्रजाः ॥३२७॥
न च वैश्यस्य कामःस्यान्न रक्षेयं पशूनिति ।
वैश्ये चेच्छति नाऽन्येन रक्षितव्याः कथञ्चन ॥३२८॥
मणिमुक्ताप्रवालानां लौहानां तान्तवस्य च ।
गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥३२९॥
बीजानामुप्तिविच्चस्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः॥३३०॥
सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ।
लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥ ३३१
भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ।
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥३३२॥

ब्रह्मा ने पशु रचकर वैश्य को सौंपे हैं, और ब्राह्मण और क्षत्रिय को सारी प्रजाएं सौंपी हैं ॥३२७॥ वैश्य की ऐसी इच्छा कभी न

* देखो आगे १०। ७७-७८

हो, कि मैं पशुओं की रक्षा न करूं, और जब वैश्य चाहता है, तो फिर दूसरे से कभी रक्षा न कराए ॥ ३२८ ॥ मणि, मोती, गुलियें, धातें, वस्त्र, गन्ध और रसों के भाओं के बल अबल को जाने रहे ॥ ३२९ ॥ (सब प्रकार के) बीजों के बोने को और क्षेत्र के गुण दोष को जाननेवाला हो, सब प्रकार के माप और तोल को जाने ॥ ३३० ॥ वस्तुओं के सार असार, देशों के गुण अवगुण और व्यवहार्य वस्तुओं के लाभ अलाभ और पशुओं का बढ़ाना जाने ॥ ३३१ ॥ (भिन्न २ योग्यता के) नौकरों की भृति (तनख्वाह) जाने, मनुष्यों की नाना भाषाएं जाने, वस्तुओं के रखने की युक्ति और क्रय विक्रय को जाने ॥ ३३२ ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३३ ॥
विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥ ३३४ ॥

धर्म से धन के बढ़ाने में पूरा प्रयत्न करे, और सब भूतों को अन्न ही प्रयत्न से दे ॥ ३३३॥ वेद के जाननेवाले यशस्वी गृहस्थ ब्राह्मणों की सेवा ही शूद्र का परम कल्याणकारी धर्म है † ॥ ३३४॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहङ्कृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥३३५
एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ।
आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तं निबोधत ॥३३६॥

† ३३४—३३६ देखो आगे १०। १२१--१२९

स्वच्छ रहनेवाला, ऊंचे (वर्णों) की सेवा करनेवाला, मृदु बोलने वाला, निरहंकार, ब्राह्मणादि का आश्रय लिए, * (शूद्र) उत्कृष्ट जाति को प्राप्त होता है ॥ ३३५॥ यह वर्णों का विना आपत्काल के कर्मानुष्ठान कहा, अब आपत्ति में जो उनका धर्म है उसको (मिश्रित वर्णों के वर्णन के पीछे) जानो ॥ ३३६ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

अधीयीरंस्त्रयोवर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥
सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधिः ।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥ २ ॥
वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठयान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥३॥
ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थएकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ ४ ॥

† अपने कर्मों में स्थित द्विजाति तीनों वर्ण (वेद को) पढ़ें, ब्राह्मण इनको पढ़ाए, न कि दूसरे दोनों (क्षत्रिय, वैश्य पढ़ाएं) यह निश्चय है ॥ १॥ ब्राह्मण सब (वर्णों) की जीविका के उपायों को शास्त्रानुसार जाने, और दूसरों को उपदेश करे, और आप

* "ब्राह्मणोपोश्रयः" पाठ, (मेधा० गोवि० नारा०)।

† चारों वर्णों के कर्त्तव्य कहकर अब वर्णों की और वर्णसंकरों की उत्पत्ति और उनकी वृत्तियें बतलाते हैं ॥ अब्राह्मण से अध्ययन

वैसा हो (शास्त्रानुसार जीविका करे)* ॥ २ ॥ (अपने गुणों की) विशेषता से, अपने कारण की श्रेष्ठता से, और (विशेष) नियम † के धारने से, और संस्कार (उपनयन) की विशेषता से ब्राह्मण सारे वर्णों का स्वामी है ‡ ॥३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजाति (द्विजन्मा) हैं, चौथा एक जाति (एक जन्मा) है शूद्र, पांचवां (कोई वर्ण) नहीं है § ॥ ४ ॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्तएव ते ॥५॥
स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥
अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमंविधिम् ॥७॥
ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥८॥
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तु रुग्रोनाम प्रजायते ॥ ९ ॥
विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेवर्णयोर्द्वयोः ।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

आपत्काल में विहित हैं, देखो पूर्व २ । २४१–२४२ * वासि० १ । ३९–४१ गौत० ११ । २१ † स्नातक के नियम जो चौथे में कहे हैं (मेधा० गोवि०, नारा०, राघ०) नियम = वेद (कुल्लू०) ‡ देखो पूर्व १ । ९३ § वासि० २ । १—२ आप० १ । १ । ३ याज्ञ० १ । १०

सारे वर्णों में अपने तुल्य वर्ण की अक्षतयोनि(कंवारी,विवाही)पत्नियाँ में से अनुलोमता से जो उत्पन्न हुए हों, वह जाति से वही जानने चाहिए * ॥५॥ बिना व्यवधान (निचले वर्ण में) उत्पन्न हुई स्त्रियों में से जो पुत्र द्विजों ने उत्पन्न किये हैं, उनको माता की निवाई से नीच होने के हेतु सदृश ही कहते हैं † ॥ ६ ॥ व्यवधान रहित स्त्रियों में से उत्पन्न हुओं की यह सनातन विधि है, दो वा एक (वर्ण) के व्यवधान वालियों में से उत्पन्न हुओं की यह धर्मयुक्त विधि जाने ‡ ॥ ७ ॥ ब्राह्मण से वैश्य की कन्या में से अंबष्ठ उत्पन्न होता है, शूद्र की कन्या में से निषाद जो पारशव कहलाता है § ॥ ८ ॥ क्षत्रिय का शूद्र की कन्या में से क्रूर आचार विहार वाला, क्षत्रिय शूद्र के स्वभाव वाला उग्रनामी उत्पन्न होता है ॥९॥ ब्राह्मण का तीनों वर्णों (की स्त्रियों) में से, क्षत्रिय का दोनों में से, और वैश्य का एक में से यह छः 'अपसद' कहे हैं ॥१० ॥

१६। * आप० २।१३। १ याज्ञ० १। ९० विष्णु० १६ । १ इसमें अक्षतयोनि और अनुलोमता यह दो शब्द विचारणीय हैं । यदि अक्षत योनि के ही पुत्र उस वर्ण के होते हैं, तो सहोढ और कानीन, तथा कुण्ड और गोलक किस वर्ण के होंगे ? राघ० ने यह उत्तर दिया है, कि उनका द्विज होना गौण है । अनुलोमता से अभिप्राय सीधे क्रम से है अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी में से, क्षत्रिय का क्षत्रिया में से, (मेधा०, गोवि०, कुल्लू०) बड़ी आयु के वर द्वारा छोटी आयु की स्त्री में से (नारा०, राघ०) † ६-१६ वासि० १८ गौत० ४ । १६-२८ बौधा० १ । १६ । ६-१७ याज्ञ० १ । ९१-९५ विष्णु० १६ । २-१५ सदृश ही = पिता के सदृश न कि पिता के सजातीय (कुल्लू०) माता के समान वर्ण ही (नन्द०) मिलाओ आगे १४ ‡ दो का व्यवधान जैसे ब्राह्मण का शूद्रा में से, एक का व्यवधान जैसे ब्राह्मण का वैश्या में से § देखो पूर्व ९ । १७८ यहां पारशव अलग संज्ञा का प्रयोजन यह है, कि यह निषाद उस निषाद से अलग है, जो प्रतिलोमज है और मछलियें पकड़ना जिसकी जीविका है ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।
वैश्यान्मगधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ ॥ ११ ॥
शूद्रादायोगवःक्षत्ता चण्डालश्चाऽधमोनृणाम् ।
वैश्यराजन्य विप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

(अनुलोम कहकर प्रतिलोम कहते हैं) क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में से जाति से सूत उत्पन्न होता है, वैश्य से क्षत्रिया और ब्राह्मणी के पुत्र मागध और वैदेह होते हैं ॥ ११ ॥ शूद्र से वैश्या, क्षत्रिया और ब्राह्मणी में से आयोगव, क्षता और चण्डाल जो मनुष्यों में नीच है, यह वर्ण संकर उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ।
क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥
पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

अनुलोमता में एक के व्यवधान में जैसे अम्बष्ठ और उग्र माने हैं, प्रतिलोम उत्पत्ति में वैसे क्षत्ता और वैदेह हैं * ॥१३॥ द्विजों के पुत्र जो क्रम से एक ही वर्ण नीचे की स्त्रियों में से उत्पन्न हुए हैं, उनको माता की निचाई से माता के वर्ण से बुलाते हैं † ॥१४॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतोनाम जायते ।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यामायोगव्यांतुधिग्वणः ॥ १५ ॥

---

* बिन व्यवधान के प्रतिलोम की अपेक्षा एक का व्यवधान होने से निन्दित हैं ॥ † माता की जाति के अनुसार उनके संस्कार हों (मेधा० गोवि० कुल्लू० नारा० नन्द०) देखो आगे ४१ ।

आयोगवश्च क्षत्ताच चण्डालश्चाऽधमो नृणाम् ।
प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥ १६ ॥
वैश्यान्मागध वैदेहौ क्षत्रियात्सूतएव तु ।
प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥

ब्राह्मण से उग्रकन्या (शूद्रा में से क्षत्रिय की कन्या) में से आवृत, अंबष्ठ कन्या (वैश्या में से ब्राह्मण की कन्या) में से आभीर और आयोगवी (वैश्या में से शूद्र की कन्या) में से धिग्वण उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ शूद्र से आयोगव, क्षत्ता और मनुष्यों में से नीच चण्डाल, प्रतिलोमता से यह तीन निकृष्ट उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥ वैश्य से (ब्राह्मणी क्षत्रिया में से) मागध और वैदेह और क्षत्रिय से (ब्राह्मणी कन्या में से) सूत यह दूसरे तीन भी प्रतिलोमता से निकृष्ट उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

जातोनिषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः ।
शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥१८॥
क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ।
वैदेहकेनत्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ॥ १९ ॥

निषाद से शूद्रा में से उत्पन्न हुआ जाति से पुक्कस होता है, शूद्र से निषादी में से उत्पन्न हुआ कुक्कटक कहा गया है ॥ १८ ॥

(शूद्र का वैश्या में से उत्पन्न पुत्रक्षत्ता, और क्षत्रिय की शूद्रा में से उत्पन्न कन्या उग्रा) क्षत्ता का उग्रा में से उत्पन्न हुआ पुत्र श्वपाक कहलाता है, वैदेहक से अम्बष्ठी में से उत्पन्न हुआ वेण कहलाता है ॥ १९ ॥

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तुयान् ।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यानितिविनिर्दिशेत् ॥२०॥
व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ।
आवन्त्यवाटधानौच पुष्पधःशैखएवच ॥ २१ ॥
झल्लो मल्लश्चराजन्याद् व्रात्यान्निच्छिविरेव च ।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविडएवच ॥ २२ ॥
वैश्यात्तुजायतेव्रात्यात्सुधन्वाचार्यएवच ।
कारूषश्चविजन्माच मैत्रः सात्वतएव च ॥२३॥

द्विज अपने वर्ण की स्त्रियों में से जिन पुत्रों को उत्पन्न करते हैं, वह यदि (उपनयन) व्रत से हीन हों, तो उन, सावित्री से भ्रष्ट हुओं को व्रात्य बतलाएं * ॥ २० ॥ व्रात्य ब्राह्मण से दुष्टात्मा भूर्जकण्टक, आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध वा शैख उत्पन्न होता है † ॥२१॥ क्षत्रिय व्रात्य से झल्ल, मल्ल, निच्छिवि नट, करण, खस वा द्रविड होता है ॥ २२ ॥ वैश्यव्रात्य से सुधन्वाचार्य,कारूष,विजन्मा मैत्र वा सात्वत उत्पन्न होता है॥२३॥

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसङ्कराः ॥ २४ ॥

वर्णों के परस्पर व्यभिचार से, न विवाहने योग्य (सगोत्रा आदि) को विवाहने से, और अपने कर्मों के त्याग से वर्ण संकर होते हैं (इस लिये इस प्रकरण में व्रात्यों का कथन है) ॥२४॥

---

* देखो पूर्व २।३९. † यह एक के ही देश भेद से भिन्न नाम है (इसी तरह अगले दोनों श्लोकों में भी) (कुल्लू०). यहां भूर्ज कण्टक के स्थान, (मेधा०) भृज्जकण्टक कहता है ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमाऽनुलोमजाः ।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२५॥
सूतोवेदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ।
मागधःक्षत्तृजातिश्च तथाऽऽयोगव एव च ॥ २६ ॥

अब जो संकरजातियां प्रतिलोम और अनुलोमों के परस्पर मिलाप से होती हैं, उनको पूर्णतया कहूंगा ॥२५॥ सूत, वैदेहक, और मनुष्यों में नीच चण्डाल,मागध, क्षत्ता, और आयोगव ॥२६॥

एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ।
मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥
यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्माऽस्यजायते ।
आनन्तर्यात्स्वयोन्यांतु तथा बाह्येष्वपिक्रमः॥२८॥
ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान् ।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥
यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ।
तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥
प्रतिकूलं वर्त्तमाना बाह्या बाह्यातरान्पुनः ।
हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥३१॥

यह छः अपनी जाति में, माता की जाति में और उत्कृष्ट जाति में अपने सदृश वर्णों को उत्पन्न करते हैं ॥ २७ ॥ जैसे तीनों वर्णों में से दो में (क्षत्रिय वैश्य में) ब्राह्मण का पुत्र द्विज होता है, और अपनी जाति में भी द्विज होता है, वैसे बाह्यों में

भी क्रम है * ॥२८॥ वह (वाह्य छः) भी एक दूसरे की स्त्रियों में अधिक दोष वाले निन्दित अनेकप्रकार के वाह्यों को उत्पन्न करते हैं ॥ २९ ॥ जैसे शूद्र ब्राह्मणी में से वाह्य जन्तु (चण्डाल) को उत्पन्न करता है, वैसे वह वाह्य चारों वर्णों में वाह्यतर को उत्पन्न करता है॥३०॥प्रतिकूल वर्तते हुए वाह्य फिर पन्द्रह वाह्यतरों को उत्पन्न करते हैं और हीन पन्द्रह हीनों को उत्पन्न करते हैं†॥३१॥

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

---

* छपे पुस्तकों में 'क्रमात्' पाठ मिलता है। टीकाकारों के अनुसार 'क्रमः' होना चाहिये, सो कर दिया है। श्लोक का आशय यह है, कि प्रतिलोम जातियां वाह्य जातियां हैं, अर्थात् विद्या सम्वन्ध और योनि सम्वन्ध से अलग कीहुई हैं। कि जैसे ब्राह्मण का पुत्र द्विजों में (क्षत्रिया वा वैश्या में से वा अपनी योनि में से) द्विज ही होता है। वैसे प्रतिलोम में भी द्विजों की सन्तान द्विज ही होती है, अर्थात् क्षत्रिय का ब्राह्मणी में से और वैश्य का क्षत्रिया या ब्राह्मणी में से द्विज ही होता है। द्विज होने का फल यह है, कि इन छः (ब्राह्मण के २ पुत्र क्षत्रिया वैश्या में से, + क्षत्रिय का १ वैश्या में से + १ क्षत्रिय का ब्राह्मणी से + २ वैश्य के क्षत्रिया ब्राह्मणी में से) उपनयन के योग्य हैं (मेधा०)॥

† शूद्र से प्रतिलोम आयोगव, क्षत्ता और चाण्डाल यह तीन होते हैं। इनमें से आयोगव, आयोगवी में और चारो वर्णों में इन पांच में पांच सन्तान उत्पन्न करता है, वह पांच आयोगव से निकृष्ट होते हैं, इसलिये वाह्यतर हैं। इसी तरह क्षत्ता, और चण्डाल भी अपनी २ जाति और चारो वर्णों में पांच २ सन्तान मिलाकर तीनों वाह्यों की १५ वाह्यतर जातियां वनजाती हैं। इसी प्रकार तीन जो हीन हैं (वाह्य नहीं) सूत, मागध, वैदेह (देखो ११) यह भी अपनी जाति और चारों वर्णों में १५ हीनों को उत्पन्न करते हैं॥

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते ।
नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥
निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम् ।
कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ॥३४॥
मृतवस्त्र भृत्स्वनार्यासु गर्हितान्नाशनासु च ।
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः ॥३५॥
कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते ।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥
चाण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ।
आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥ ३७ ॥

दस्यु * आयोगवी (=शूद्र से वैश्या की कन्या) में से सैरिन्ध्र को उत्पन्न करता है, जो (बालों को) सजाने और (अंगों को मलने आदि) सेवा को जानता है, दास न होकर, दासों की जीविका करता है, वा फांसों से (हिरण आदि पकड़ कर) जीविका करता है ॥ ३२ ॥ (वैश्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ) वैदेह मीठा बोलने वाले 'मैत्रेयक' को उत्पन्न करता है, जो प्रातःकाल घण्टा बजाकर राजाओं की स्तुति पढ़ता है॥३३॥(ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न हुआ) निषाद आयोगवी में से)नौका चलाने से जीविका करने वाले'मार्गव''दास'को उत्पन्न करता है,जिसको आर्यावर्त निवासी कैवर्त कहते हैं॥३४॥ मृतकों के वस्त्र पहनने वाली, निन्दित अन्न (लहसन आदि वा जूठा आदि)

---

* 'दस्यु' देखो आगे ४५।

खाने वाली अनार्या * आयोगवी में से अलग यह तीनों हीनजाति के (सैरिन्ध्र, मैत्रेयक, मार्गव) उत्पन्न होते हैं॥३५॥ वैदेही में से निषाद से 'कारावर' 'चमार'। वैदेहिक से अन्ध्र और मेद, जो गाओं से बाहर रहते हैं, चण्डाल से 'पाण्डुसोपाक' जो बांस के व्यवहार वाला है, और निषाद से वैदेही में ही आहिण्डिक उत्पन्न होता है॥३६-३७॥

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान् ।
पुक्कस्यां जायते पापः सदासज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥
निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ।
श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपिगर्हितम् ॥ ३९ ॥
सङ्करे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ।
प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः॥४०॥

चण्डाल से पुक्कसी (निषाद से शूद्रा की कन्या) में से सज्जनों से सदा निन्दित पापात्मा 'सोपाक' उत्पन्न होता है, जिसकी वृत्ति मारने योग्यों को (राजा की आज्ञा से) मारना है†॥३८॥ निषाद की स्त्री चण्डाल से श्मशान में रहने वाले 'अन्त्यावसायी' पुत्र को जनती है, जो बाह्यों का भी निन्दित है ॥ ३९ ॥ वर्णसंकर में जो यह जातियें पिता माता के द्वारा दिखलाई हैं, यह गुप्त वा प्रकट अपने २ कर्मों से जाननी चाहियें ॥ ४० ॥

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः ।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥४१॥

*मेधा०गोवि०कुल्लू०नन्द० के अनुसार 'मृतवस्त्रभृत्स्वनार्यासु' पाठ पढ़ा है † मूल खोदकर उनके बेचने से जीविका करने वाला (नारा० नन्द० राम०) ॥

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगेयुगे ।
उत्कर्षंचापकर्षं च मनुष्येष्विहजन्मतः ॥ ४२ ॥

(आर्यों के) सजाति में से उत्पन्न हुए (ब्राह्मण के ब्राह्मणी में से, क्षत्रिय के क्षत्रिया में से, वैश्य के वैश्या में से) और अनन्तर जाति में से उत्पन्न हुए (ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्या में से, क्षत्रिय का वैश्या में से) यह छः पुत्र द्विजों के धर्म वाले हैं (उपनयन के योग्य हैं) और प्रतिलोम से उत्पन्न हुए सभी शूद्रों के समान धर्मी कहे हैं ॥४१॥ यह सब तप के प्रताप से (विश्वामित्र की तरह) और बीज के प्रताप से (ऋष्यशृंग की तरह) समय २ पर मनुष्यों में से यहां ऊंची नीची जाति को प्राप्त होते हैं*॥४२।

शनकैस्तुक्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाःशकाः ।
पारदा पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥४४॥
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥४५॥

(जैसाकि) यह क्षत्रिय जातियें (उपनयन आदि) क्रियाके लोप से, और ब्राह्मणों के (कर्म कराने के अर्थ) न मिलने से† लोक में धीरे २ शूद्रता को प्राप्त हुई हैं ॥ ४३ ॥ पौण्ड्रक, ओड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद और खश ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की जो

*देखो आगे ६४ † मेधा० गोवि० ने ' ब्राह्मणातिक्रमेण=ब्राह्मणों को उलांघने से' पाठ माना है ।

जातियें (धर्म से) बाहर होगई हैं, वह चाहे म्लेच्छ भाषा बोलती हैं, चाहे आर्य भाषा बोलती हैं, वह सब दस्यु कहे गए हैं ॥ ४५ ॥

ये द्विजानामपसदा येचापध्वंसजाःस्मृताः ।
ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥
सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानांचिकित्सनम् ।
वैदेहकानांस्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥
मत्स्यघातोनिषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च ।
मेदान्ध्रचुञ्चुमुद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥ ४८ ॥
क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु विलौकोवधबन्धनम् ।
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥४९॥
चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ।
वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥

जो द्विजों के अपसद हैं, और जो अपध्वंसज कहे हैं, वह द्विजों के ही निन्दित कर्मों से जीविका करें *॥ ४६ ॥ सूतों का (कर्म) घोड़ों का सिधाना चलाना, अम्बष्ठों का चिकित्सा करना, वैदेहिकों का अन्तःपुर की रक्षा, मागधों का वणिज ॥ ४७ ॥ निषादों का मछलियें मारना, आयोगव का तरखाना काम, मेद, अन्ध्र, चुञ्चु और मुद्गु का जंगली पशुओं का मारना ॥ ४८ ॥ क्षत्ता उग्र और पुक्कसों का बिल में रहने वालों (गोह आदि) का बांधना, मारना, धिग्वणों का चमड़ा बनाना बेचना, वेणों का बर्तन (कंसी आदि) बजाना ॥४९॥ यह (गाओं आदि के पास के) प्रसिद्ध

---

* देखो पूर्व १७ और ४१ ।

वृक्षों के नीचे, श्मशानों में, पर्वतों और उपवनों में अपने कर्मों से प्रकट जीविका करते हुए वसें ॥ ५० ॥

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥
वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥५२॥
न तैःसमयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ।
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहःसदृशैः सह ॥ ५३ ॥
अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद् भिन्नभाजने ।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥
दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिन्हिता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥
वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ।
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥५६॥

चण्डाल और श्वपचों का ग्राम से बाहर निवास हो और यह पात्र से अलग कर देने चाहियें, धन इनका कुत्ते और गधे हों॥५१॥ वस्त्र, मुर्दों के कपड़े हों, भोजन टूटे बर्तनों (टीकरों) में हो, भूषण लोहे के हों, और नित २ घूमते फिरें ॥५२॥ धर्मानुष्ठान करता हुआ पुरुष इनके साथ संगत (बैठना, बोलना आदि) न चाहे, उनका (लेनदेन का) व्यवहार और विवाह आपस में तुल्यों के साथ हो ॥ ५३ ॥ अन्न इनको टूटे बर्तन में दूसरे के आधीन करके

(=दास द्वारा) देना चाहिये, रातको वह गाओं में वा नगरों में न विचरें ॥ ५४ ॥ दिन को कार्य के लिये राजा की आज्ञा से (अपना) चिन्ह * लगाए हुए फिरें, और अनाथ मुरदे को ग्राम से बाहर लेजाएं, यह मर्यादा है ॥ ५५ ॥ राजा की आज्ञा से शास्त्रानुसार सदा वध के योग्य के वस्त्र, शय्या और भूषण लेवें॥५६॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥
अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

वर्ण से अलग हुआ, जो संकर योनि पुरुष, वे मालूम हो, उस अनार्य को जो आर्यों के रूप में हो, अपने कर्मों से जाने ॥५७॥ अनार्यपन, कठोर बोलना, क्रूर होना, कर्म से हीन होना यह (धर्म) इस लोक में संकरयोनि को प्रकट करते हैं ॥ ५८ ॥

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥५९॥
कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः ।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥
यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥ ६१ ॥

---

*लोहे के भूषण वा मोर के पिच्छ आदि (नारा०)। † ५७-५९ वासि० १८।७ विष्णु० १६। १७।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥६२॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥६३॥

(क्योंकि वह) पिता के स्वभाव को, या माता के स्वभाव को वा दोनों के स्वभाव को सेवन करता है, दुष्टयोनिवाला अपने कारण को किसी तरह छिपा नहीं सक्ता है ॥ ५९ ॥ शुद्ध कुल में उत्पन्न हुए का भी जिसका (गुप्त) जाति संकर हो, वह मनुष्य उसके स्वभाव को थोड़ा बहुत लेताही है ॥६०॥ जहां यह वर्णों के विगाड़ने वाले वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं, वह देश देशवासियों समेत जल्दी नष्ट होता है (इसलिये राजा को वर्णसंकर रोकना चाहिये) ॥ ६१ ॥ ब्राह्मण के लिये, गो के लिये, स्त्री वा बाल की सहायता के लिये शुद्ध भावना से देह का त्याग प्रतिलोमजों को सिद्धि (स्वर्ग) देने वाला है *॥ ६२ ॥ किसी को न सताना, सत्य बोलना, किसी का हक न दबाना वा छीनना (मट्टी जल आदि से) शुद्धि, इन्द्रियों का संयम यह संक्षेप से चारों वर्णों में मनु ने धर्म कहा है † ॥ ६३ ॥

शूद्रायांब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचेत्प्रजायते ।
अश्रेयाञ्श्रेयसींजातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥६४॥
शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥

---

*विष्णु०१६।१८ † गौत०८।२३ याज्ञ १।१२२ इस प्रकरण में कहने से संकर जातियों का भी यही धर्म जानना चाहिये (कुल्लू०)।

शूद्रा में से ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ यदि श्रेष्ठ से सन्तान उत्पन्न करे, तो न श्रेष्ठ भी सातवें जन्म में श्रेष्ठ जाति को प्राप्त होता है * ॥ ६४ ॥ शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय से उत्पन्न हुए को और वैसे ही वैश्य से उत्पन्न हुए को जाने † ॥ ६५ ॥

* गौत० ४।२२ आप० २।१०-११ याज्ञ० १।९६ मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ० यह अभिप्राय लेते हैं, कि ब्राह्मण की शूद्रा में से उत्पन्न हुई कन्या, यदि ब्राह्मण को विवाही जाए और उसकी फिर ब्राह्मण को, इसप्रकार छटी पीढ़ी में जाकर जो आगे सन्तान होगी, अर्थात् सातवीं पीढ़ी, वह शुद्ध ब्राह्मण समझे जाएंगे (इस अभिप्राय में 'ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ' यह पुंलिंग जाति के अभिप्राय से है तात्पर्य कन्या से है, पुत्र से नहीं, जैसे पूर्व श्लोक ३२ में 'आयोगव' पुँलिंग स्त्री के अभिप्राय से है-सम्पादक ; नारा० नन्द० के अनुसार ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पारशव, यदि आप भी सदाचारी हो, और सदाचारिणी ही पारशवी को विवाहे, तो इस तरह उसकी सन्तान सातवीं पीढी में शुद्ध ब्राह्मण बनजाती है। † कुल्लू० राघ० के अनुसार पूर्वोक्त रीति से शूद्र अर्थात् ब्राह्मण का शूद्रा में से उत्पन्न हुआ पुत्र सातवीं पीढी में शुद्ध ब्राह्मण होजाता है, और ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण से शूद्रा में से उत्पन्न हुआ आगे यदि शूद्रा स्त्री को ही विवाहता जाए, तो सातवीं पीढी में शुद्ध शूद्र होजाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न हुए में जाति का बदलना जानना चाहिये। किन्तु 'याज्ञवल्क्य १।९६ में पांचवीं पीढी में भी जाति का बदलना कहने से क्षत्रिय द्वारा शूद्रा में से उत्पन्न हुई सन्तान पांचवीं पीढी में शुद्ध शूद्र बनजाती है, और इसी नियम से वैश्य की शूद्रा में से उत्पन्न हुई सन्तान तीसरी ही पीढी में शुद्ध वैश्य वा शुद्ध शूद्र होजाती है। इसी न्याय से ब्राह्मण की वैश्या में से सन्तान पांचवें ही जन्म में, क्षत्रिया में से हुई तीसरे ही जन्म में, और क्षत्रिय की वैश्या में से हुई भी तीसरी पीढ़ी में जाननी चाहिये

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥६६॥
जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद् गुणैः ।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्यइतिनिश्चयः ॥ ६७ ॥

एक पुरुष अनार्या में से यदृच्छा से (काम चार से, न कि विवाह सम्बन्ध से) ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ है, दूसरा ब्राह्मणी में से अनार्य से उत्पन्न हुआ है, इन दोनों में से श्रेष्ठता किस में है? यदि यह (संशय) हो * ॥६६॥ तो निर्णय यह है, कि अनार्या नारी में से उत्पन्न हुआ आर्य गुणों से आर्य होता है, पर अनार्य से आर्या में से भी उत्पन्न हुआ (गुणों से) अनार्य ही होता है ॥६७॥

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः ।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥
सुबीजंचैवसुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ।
तथार्याज्जातआर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥

(कुल्लू० राघ०) । नारा० यहां भी क्षत्रिय की शूद्रा में से सन्तान वा वैश्य की शूद्रा में से सन्तान अपने जैसों में ही विवाह करके भी उत्तम आचरण करते हुए सातवीं वा पांचवीं पीढी में शुद्ध क्षत्रिय और शुद्ध वैश्य बनजाते हैं, और शूद्रों के से कर्म करते हुए शुद्ध शूद्र बनजाते हैं। नन्द० अनुलोमजों की तरह प्रतिलोमजों की भी यही व्यवस्था इस श्लोक से ठहराता है, अर्थात् शूद्र से उत्पन्न हुई प्रतिलोमज संतान भी यदि ब्राह्मणों ही में धंसती जाए, तो सातवीं पीढी में शुद्ध ब्राह्मण बनजाती है। *यहां 'अनार्या' और 'अनार्य' से शूद्र स्त्री और शूद्र पुरुष से अभिप्राय है (मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ० नन्द०) व्रात्य आदि की कन्या और व्रात्य आदि से अभिप्राय है (नारा०) ।

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥
अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति ।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥
यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जाऋषयोऽभवन् ।
पूजिताश्चप्रशस्ताश्च तस्माद्बीजंप्रशस्यते ॥ ७२ ॥
अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ।
संप्रधार्याऽब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥७३॥

वह दोनों ही संस्कार के योग्य नहीं, यह धर्म मर्यादा है, पहिला जन्म की विगुणता से, दूसरा प्रतिलोम होने से ॥६८॥ जैसे उत्तम बीज उत्तम क्षेत्र में उत्पन्न हुआ पूर्ण उत्तम होता है, वैसे आर्य से आर्या में से उत्पन्न हुआ सम्पूर्ण संस्कार के योग्य होता है *॥ ६९ ॥ कई बुद्धिमान बीज की स्तुति करते हैं, दूसरे क्षेत्र की, तीसरे बीज और क्षेत्र दोनों की, किन्तु इसमें यह व्यवस्था है ॥७०॥ अक्षेत्र (कालरी आदि) में बीज बोया मध्य में ही नष्ट होजाता है, विना बीज के क्षेत्र भी निरा चौंतरा ही होता है ॥ ७१ ॥ जिस लिये बीज के प्रताप से तिर्यग्योनि में उत्पन्न हुए ऋषि पूजनीय और प्रशंसनीय हुए हैं†, इससे बीज की प्रशंसा है ॥ ७२ ॥ अनार्य जो आर्य कर्मों वाला है, और आर्य जो अनार्य कर्मों वाला है, इन दोनों का विचार करके

* ६९-७२ मिलाओ पूर्व ९।३३-४१ † यहां टीकाकार ऋष्यशृंग की हरिणी से उत्पत्ति उदाहरणतया बतलाते हैं देखो पूर्व० ९। २३

ब्रह्मा ने कहा न सम हैं, न असम हैं* ॥ ७३ ॥

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ।
ते सम्यगुपजीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ॥७४॥
अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥
षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥
त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥ ७७ ॥
वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७८॥

ब्राह्मण जो ब्राह्मण माता पिता से उत्पन्न हुए अपने कर्मों में स्थित हैं, वह यथाक्रम इन छः कर्मों का आश्रय लें †॥७४॥

---

* सम इसलिये नहीं, कि निरे द्विजों के कर्म करने से शूद्र द्विज बन नहीं गया । असम इसलिये नहीं, कि निषिद्ध के आचरण में दोनों तुल्य हैं (कुल्लू०) नारा० यह भाव लेता है, कि अनार्य=व्रात्य का पुत्र, ब्राह्मण का कर्म करे, और आर्य=अव्रात्य का पुत्र, खेती आदि करे, यह दोनों ब्राह्मण के सम नहीं, दोष वाले होने से, अत्यन्त नीचे भी नहीं, क्योंकि ब्राह्मण ही हैं । † ७४-८० वासि० २।१३-१९ गौत १०।१-७, ४९ आप २।१०।४-७ बौधा० १।१८।१-५ याज्ञ १।११८-११९ विष्णु २।१-७ और पूर्व १।८८-९० यथा क्रम कहने का यह अभिप्राय है, कि आप वेद पढ़े और दूसरों को पढ़ाए, आप यज्ञ करे और दूसरों से कराए, आप दान दे और दूसरों से ले (नन्द०) ।

पढ़ाना, पढ़ना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना यह छः कर्म ब्राह्मण के हैं ॥ ७५ ॥ छः कर्मों में से तीन कर्म इसके जीविका हैं, यज्ञ कराना और पढ़ाना, और शुद्ध से (अपने कर्म में रते) से दान लेना ॥ ७६ ॥ तीन धर्म ब्राह्मण (के धर्म) से क्षत्रिय के लिये हट जाते हैं। पढ़ाना, यज्ञ कराना और तीसरा दान लेना ॥ ७७ ॥ वैसे ही यह वैश्य के लिये भी हट जाते हैं, यह मर्यादा है, प्रजा का स्वामी मनु इन दोनों (क्षत्रिय, वैश्य) के लिये यह धर्म नहीं बतलाता है ॥ ७८ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषीर्विशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥
वेदाभ्यासोब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

(किन्तु प्रजा की रक्षा के लिये) शस्त्र अस्त्र का धारना यह क्षत्रिय का, और बणिज, पशु पालन, और खेती यह वैश्य का जीविका के लिये है, और धर्मार्थ-दान, पढ़ना और यज्ञ हैं ॥७९॥ (जीविका के लिये भी) वेदाभ्यास ब्राह्मण का, प्रजा की रक्षा क्षत्रिय का, व्यापार वैश्य का यह अपने कर्मों में विशेष हैं ॥८०॥

अजीवंस्तुयथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण सह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥
उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥
वैश्यवृत्त्याप्यजीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपिवा ।

हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३ ॥
कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण अपने निज के कर्म से निर्वाह न कर सक्ता हुआ क्षत्रिय के धर्म से जीविका करे, क्योंकि वह (धर्म) इसका समीपी है*॥८१॥दोनों से निर्वाह न करसके, तो फिर कैसे हो, यदि यह संशय हो, तो खेती और पशुपालन का आश्रय लेकर वैश्य की जीविका से जीवे ॥८२॥ वैश्य वृत्ति से भी जीविका न करसके, तो ब्राह्मण वा क्षत्रिय अधिक हिंसा वाली और (वृष्टि आदि के) पराधीन † खेती को यत्न से छोड़ देवे ॥ ८३ ॥ खेती को कई अच्छा समझते हैं, पर यह जीविका श्रेष्ठों से निन्दित है, क्योंकि (इसमें) लोहे का मुखवाला काठ (हल वा कुदाल) भूमि, और भूमि में रहने वाले जन्तुओं की हिंसा करता है‡॥८४॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥
सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नंच तिलैः सह ।
अश्मनो लवणंचैव पशवो ये चमानुषाः ॥ ८६ ॥

जीविका की त्रुटि से धर्म की निपुणता (अपनी सच्ची जीविका) त्यागते हुए (ब्राह्मण और क्षत्रिय) को वैश्य की

---

*८१-९८ वासि० २।२२।२९ गौत० ७।१-२६ आप० १।२०।१०-२१,४ बौधा० २।३।१६-२१ याज्ञ० ३।३५-४० विष्णु० २।१५; ५४।१८-२१ † पूर्व० ४।१५९-१६० में स्नातक के व्रतों में पराधीन कर्म का निषेध है ‡ यह खेती की निन्दा वासि० २।३२-३६ के विरुद्ध है और यजु० १२।७१ में की खेती की प्रशंसा के विरुद्ध है ।

वेचने योग्य वस्तुएं धन के बढ़ाने के लिये वेचनी चाहियें, पर यह वस्तुएं त्याग के योग्य जान त्यागदे ॥ ८५ ॥ सारे रस, पके अन्न, तिल, पत्थर, लवण और पशु, और मनुष्य छोड़दे॥८६॥

सर्वंच तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ।
अपिचेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥ ८७ ॥
अपःशस्त्रं विषंमांसं सोमंगन्धांश्च सर्वशः ।
क्षारंक्षौद्रंदधिघृतं तैलंमधुगुडंकुशान् ॥ ८८ ॥
आरण्यांश्चपशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्चवयांसि च ।
मद्यंनीलिंच लाक्षांच सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥ ८९ ॥

रंगा हुआ हरएक प्रकार का सूती कपड़ा, सन, अलसी और ऊन के वस्त्र चाहे न भी रंगे हुए हों, फल, मूल और औषधियें (छोड़ दे) ॥ ८७ ॥ जल, शस्त्र, विष, मांस, सोम, सब प्रकार के गन्ध (चन्दन इतर आदि) खार, शहद, दही, घी, तेल, मोम, गुड़ और कुशा ॥ ८८ ॥ सारे जंगली पशु (हाथी आदि) दाढ़ों वाले (शेर आदि) और पक्षी (चकोर आदि) मद्य, नील, लाख और एकखुर वाले सभी (घोड़ा आदि) ॥८९॥

काममुत्पाद्यकृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ।
विक्रीणीत तिलाञ्शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥९०॥
भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुतेतिलैः ।
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिःसहमज्जति ॥ ९१ ॥

खेती करने वाला स्वयमेव खेती में उत्पन्न करके बेशक

धर्म के अर्थ तिलों को बेच दे, पर वह शुद्ध * हों, और (अधिक लाभ के लिये) देर तक रखे न हों ॥ ९० ॥ खाने और मलने और दान करने के सिवाय तिलों से यदि कुछ और करता है, तो कृमि बनकर कुत्ते के † विष्ठा में पितरों समेत डूबता है ॥९१॥

सद्यःपतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेणशूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥
इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ।
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥
रसा रसैर्निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः ।
कृतान्नंचाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥९४॥

मांस के, लाख के और लवण (के बेचने) से ब्राह्मण जल्दी पतित होता है, और दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र होजाता है ॥ ९२ ॥ दूसरे (निषिद्ध) व्यवहार्य द्रव्यों के इच्छा पूर्वक ‡ बेचने से ब्राह्मण सातदिन में वैश्य भाव को प्राप्त होता है ॥ ९३ ॥ रस (गुड़ आदि) दूसरे रसों (घृत आदि) से बदल लेने चाहियें, पर लवण दूसरे रसों के साथ नहीं, पका अन्न, कच्चे अन्न से § और तिल धान से उनके बराबर बदले जाएं (न कि भाओ करके न्यून अधिक) ॥ ९४ ॥

---

* किसी दूसरे द्रव्य से मिले न हों (कुल्लू० राघ०) विशुद्ध=श्वेत हों, ऐसा कहने से काले तिलों का सर्वथा निषेध है (नन्द०)
† मेधा० के अनुसार 'श्व=कुत्ता' के स्थान 'सः=वह' पाठ है।
‡ नकि आपत्काल में लाचारी से § 'कृतान्नेन' तय्यार अन्न से, पाठ (मेधा० नन्द)।

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ।
न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥९५॥
योलोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ।
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

आपदा को प्राप्त हुआ क्षत्रिय इस सब से जीविका करे, किन्तु ऊंची जीविका (ब्राह्मण की वृत्ति) कभी न स्वीकार करे ॥ ९५ ॥ जो निचली जाति का लोभ से ऊंचे के कर्मों से जीविका करे, इसको राजा निर्धन करके जल्दी ही निकाल दे॥९६॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ ९७ ॥
वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्त्तयेत् ।
अनाचरन्नकार्याणि निवर्त्तेत च शक्तिमान् ॥९८॥
अशक्नुवंस्तुशुश्रूषां शूद्रःकर्त्तुं द्विजन्मनाम् ।
पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥ ९९ ॥
यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः ।
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च॥१००॥

अपना कर्म विगुण हुआ भी अच्छा है, न कि बेगाना चाहे बहुत अच्छा होसके, क्योंकि बेगाने कर्म से जीविका करता हुआ जल्दी जाति से पतित होजाता है * ॥ ९७ ॥ वैश्य अपनी

*ब्राह्मण को दान, मान के साथ निन्दित व्यवहार वाले से भी मिल-जाए, तो वह उसके लिये अच्छे वणिज की अपेक्षा अच्छा है,(नारा०)

वृत्ति से जीविका न करसके, तो अकार्यों (जूठा खाना आदि) को न करता हुआ शूद्र की वृत्ति से भी जीविका कर सक्ता है, पर सामर्थ्य वाला होकर उसे त्याग दे ॥ ९८ ॥ जब (भूख से) पुत्र स्त्री तंग हों, तो (द्विजों से पूरी जीविका न मिलने पर उनकी) सेवा करने को अशक्त हुआ शूद्र कारुक (दस्तकार-शिकलीगर आदि) के कर्मों से जीविका करे* ॥ ९९ ॥ जिन कर्मों के करने से द्विजों की सेवा होती हो, उन कारुक कर्मों और अनेक प्रकार के शिल्पों (चित्र खींचना आदि) को करे ॥१००॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ।
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १०१ ॥
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद् ब्राह्मणस्त्वनयं गतः ।
पवित्रं दुष्यतीत्येतद् धर्मतो नोपपद्यते ॥ १०२ ॥

अपने मार्ग में स्थित ब्राह्मण, वैश्य की जीविका न करता हुआ, यदि जीविका के अभाव से तंग होकर दुःख उठा रहा हो, तो इस धर्म का आचरण करे † ॥ १०१ ॥ विपदा को प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब से (निन्दिततम से भी) दान लेलेवे, क्योंकि पवित्र वस्तु दूषित हो, यह शास्त्र मर्यादा से युक्त नहीं है‡ १०२

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वाप्रतिग्रहात् ।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥१०३॥
जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पङ्केन नस पापेन लिप्यते ॥ १०४ ॥

* ९९-१०० गौत० १०।६० विष्णु० ३। १४ † १०१-११४ गौत० ७।४-५, २३ आप० ११।८।५-८,१४-१५ देखो उदाहरण १०३ में ‡

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः ।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ १०५ ॥
श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माऽधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ १०६ ॥

(आपद् में) ब्राह्मणों को निन्दित, पढ़ाने, यज्ञ कराने और दान लेने से दोष नहीं होता है, क्योंकि वह अग्नि और जल के तुल्य हैं * ॥ १०३ ॥ प्राण संकट में पड़ा जो (ब्राह्मण) जहां तहां से अन्न खाता है, वह कीचड़ से आकाशवत्, पाप से लिप्त नहीं होता ॥ १०४ ॥ अजीगर्त भूख का मारा हुआ पुत्र के मारने को तय्यार हुआ, वह भूख के दूर करने को ऐसा करने पर भी पाप से लिप्त नहीं हुआ † ॥१०५॥ धर्म अधर्म के जानने वाला वामदेव (भूख से) पीड़ित हो प्राणों की रक्षा के लिये कुत्ते के मांस को चाहता हुआ (पाप से) लिप्त नहीं हुआ ॥१०६॥

भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥१०७॥
क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ १०८ ॥

महातपस्वी भरद्वाज पुत्र समेत भूख से पीड़ित हुआ निर्जन वन में वृधु † तरखान से बहुतसी गौएं दान लेता भया॥१०७॥धर्म

---

* वासि० २७.९ जैसे अग्नि अपवित्र वस्तुओं को भी भक्षण करता हुआ दूषित नहीं होता, और गंगाजल में मैला भी पड़ता हुआ दूषित नहीं करता है। †अजीगर्त की कथा देखो ऐते०ब्रा०७।१३-१६
† गोवि०ने वृबु लिखा है । जो सायण ने ऋग्वेद६।४५।३१पर लिखा है।

अधर्म का जानने वाला विश्वामित्र भूख से पीड़ित हुआ चाण्डाल के हाथ से कुत्ते की टांग लेकर खाने को तय्यार हुआ*॥१०८॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥ १०९ ॥
याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् ।
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥
जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ॥ १११ ॥
शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते॥११२॥

प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन में से प्रतिग्रह निकृष्ट है, जो परलोक में ब्राह्मण के लिये बुरा है (अर्थात् आपत्काल में भी निन्दित याजन अध्यापन से काम चलसके, तो निन्दित प्रतिग्रह न ले) ॥१०९॥ क्योंकि याजन अध्यापन तो (उपनयन) संस्कार वालों के ही किये जाते हैं,पर प्रतिग्रह तो नीच जन्म वाले शूद्र से भी † किया जाता है ॥११०॥ (दुष्टों के) याजन और अध्यापन से किया पाप जप होमों से दूर होता है, (दुष्ट) प्रतिग्रह से हुआ पाप (लिये दान के) त्याग से और तप से (दूर होता है) ‡॥१११॥ ब्राह्मण अपनी वृत्ति से न निर्वाह करसक्ता हुआ, शिल और

*देखो महाभा० १२।१४१।२८ आदि † शूद्र और चण्डाल से भी (नारा०) ‡ वासि० २०।४१ आप० १।२८।११ विष्णु० ५४।२८ तप पर देखो ११।१९३

उञ्छ भी जहां तहां से लेलेवे, दान से शिला अच्छा है और उससे भी उञ्छ उत्तम है ॥ ११२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः ।
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥११३॥
अकृतं च कृतात्क्षेत्राद् गौरजाविकमेव च ।
हिरण्यंधान्यमन्नं च पूर्वपूर्वमदोषवत् ॥ ११४ ॥

स्नातक ब्राह्मण भूख से पीड़ित हों, तो राजा से कुप्य * और धन मांगे, वह न देना चाहे, तो त्याग के योग्य† है ॥११३॥ जोते हुए खेत से बंजर; तथा गौ, बकरी, भेड़, सोना, अनाज और अन्न इनमें से पहला २, थोड़े दोष वाला है ‡ ॥ ११४ ॥

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ ११५ ॥
विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षं विपणिः कृषिः ।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ ११६ ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥११७॥

---

* कुप्य=सोने चांदी से भिन्न धातें अर्थात् कांसी तांबे आदि के वर्तन। इसी तरह अनाज वस्त्रादि भी। राजा यहां शास्त्र को उलांघ कर वर्तने वाला क्षत्रिय राजा, वा शूद्र राजा अभिप्रेत है। मिलाओ पूर्व० ४।३३ ; ४।८४ आदि † अर्थात् जो नहीं देना चाहता, उससे न मांगे (कुल्लू०) उस राजा को त्यागदे, उसके देश में न रहे, (मेधा० गोवि० राघ०) ‡ वासि० १२।३

धन के यह सात आगम धर्मयुक्त हैं, दाय, लाभ, खरीद, जय, प्रयोग, कर्मयोग, और सत्प्रतिग्रह * ॥ ११५ ॥ विद्या (चिकित्सा आदि), शिल्प, (हुनर, चित्र बनाना आदि), मज़दूरी सेवा, पशु रक्षा, व्यापार, खेती, सन्तोष (थोड़े में), भीख और व्याज यह दस जीवन के हेतु हैं † ॥११६॥ ब्राह्मण वा क्षत्रिय व्याज न लेवें, हां (अत्यन्त आपद् में) बहुत निचले पुरुष (सूत आदि) को देवें, वह भी धर्म (पञ्चमहायज्ञादि के पूरा करने) के लिये, और वह भी बहुत थोड़ा व्याज पर देवें‡ ११७

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि ।
प्रजा रक्षन्परंशक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥११८॥
स्वधर्मो विजयस्तस्य नभये स्यात्पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥११९॥

---

* गौत० १०।३९-४२, दाय=बड़ों की जायदाद। लाभ=दबे हुए धन का मिलना, या मित्र वा श्वसुर से धन का मिलना। खरीद= जो वस्तु आप खरीदी हो। जय=जीत में मिला धन। प्रयोग=व्याज पर लगाना। कर्मयोग=खेती वा वणिज। सत्प्रतिग्रह=नेक से दान लेना। सभी टीकाकारों के अनुसार इन सात में से पहिले तीन चारों वर्णों के लिये धर्मयुक्त हैं, जय क्षत्रिय के लिये, प्रयोग और कर्मयोग वैश्य के लिये और सत्प्रतिग्रह ब्राह्मण के लिये। पर नारा० के अनुसार कर्मयोग=शिल्पादि कर्म से धन की प्राप्ति शूद्र का धर्म है। और नन्द० के अनुसार जय=मुकद्दमे का जीतना, प्रयोग= पढ़ाना; कर्मयोग=यज्ञ कराना है † अर्थात् आपत्काल में इन दस में से किसी से कोई जीविका करे। ‡ वासि० २।४०-४३ गोवि० नारा० 'अल्पिकां' के स्थान 'अल्पकं' पाठ पढ़ते हैं अर्थात् थोड़ा धन लगाएं।

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥१२०॥
शूद्रस्तुवृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥१२१॥

क्षत्रिय (राजा) आपदा में (पैदावार का) चौथा भाग लेता हुआ भी, प्रजा की पूरी शक्तिभर रक्षा करता हुआ (अधिक लगान के) पाप से छूट जाता है ॥ ११८ ॥ उसका अपना धर्म विजय पाना है, अतः भय में*पीठ न दे, शस्त्र के साथ वैश्यों की रक्षा करता हुआ उनसे धर्मयुक्त बलि लेवे ॥ ११९ ॥ अर्थात् अनाज में वैश्य से आठवां भाग, (सोने चांदी के लाभ में) वीसवां भाग जो कि घट से घट एक कार्षापण हो, लेवे, शूद्र, सिकलीगर शिल्पी (बढ़ई आदि) अपने कर्म से (राजा का) उपकार करें (उनसे कर न ले) † ॥ १२० ॥ शूद्र वृत्ति चाहता हुआ चाहे क्षत्रिय की सेवा करे, वा धनाढ्य वैश्य की सेवा करके जीना चाहे‡

* छपे 'नाहवे' के स्थान गोवि० 'न भये' पढ़ता है अर्थात् भय में पीठ न दे। 'रण में पीठ न दे' से भी अभिप्राय यही है, कि भय उपस्थित होने पर युद्ध में पीठ न दे। ऐसा ही मेधा० कुल्लू० लिखते हैं, इसलिये 'न भये' पाठ ही रखा है† मेधा० के अनुसार अनाज में आठवां अर्थात् अनाज के व्यवहारी वैश्यों से लाभ में से आठवां, और गोवि० के अनुसार किसानों से अनाज का आठवां अभिप्रेत है। पूर्व० ७।१३० में अनाज में बारहवां कहा है, सो यह आपद् में आठवां है और अत्यन्त आपद् में ११८ में कहा चौथा भाग लेवे। और वहां सोने चांदी का पचासवां कहा है, यह आपद् में वीसवां है। और ७।१३८ में शूद्रादि से महीने २ कर्म कराना लिखा है, यहां आपद् में अधिक भी कराले यह अभिप्राय है। ‡ १२१-१२९ गौत० १०। ५०-६५ याज्ञ० १।१२०-१२१

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः ।
जातब्राह्मणशब्दस्य साह्यस्य कृतकृत्यता ॥१२२॥
विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्यनिष्फलम् ॥१२३॥
प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः ।
शक्तिंचावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम्॥१२४॥
उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदः॥१२५॥
न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥१२६॥

अथवा स्वर्ग (की प्राप्ति) के लिये, वा दोनों (स्वर्ग और जीविका) के लिये के लिये ब्राह्मणों की ही सेवा करे, क्योंकि ब्राह्मण का दास कहलाना इसकी कृतकृत्यता है ॥१२२॥ ब्राह्मण की सेवा ही शूद्र का उत्तम कर्म कहा है, इससे भिन्न जो करता है, वह इसका निष्फल होता है ॥ १२३ ॥ उस (सेवक) की (सेवा की) शक्ति, (काम करने का) उत्साह और उसके पालने योग्यों का खर्च देखकर अपने कुटुम्ब से उसकी जीविका नियत करें ॥ १२४ ॥ झूठा अन्न, पुराने कपड़े, अनाज का तिलछट (वा चावलों की पिच्छ) और पुराने सामान (बर्तन आदि) देने चाहियें ॥ १२५ ॥ शूद्र में कोई पातक* (जाति से गिराने

---

* लहसन खाना आदि (गोवि० कुल्लू०) सूना आदि का पाप नहीं होता ब्रह्महत्या आदि का पाप उसको भी होता ही है (राघ०)

वाला कर्म) नहीं होता है, न वह संस्कार (उपनयनादि) के योग्य है, न इसका (द्विजों के) धर्म में अधिकार है, न धर्म से प्रतिषेध है॥१२६॥

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥१२७॥
यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः।
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥१२८॥

(शूद्र) जो धर्म प्राप्ति की कामना वाले हैं, अपने धर्म को जानते हैं, वह यदि मन्त्र को छोड़कर (और कामों में) नेकों (आर्यों) के आचार में स्थित होते हैं, तो वह पापी नहीं होते, अपितु प्रशंसा पाते हैं ॥ १२७ ॥ (आर्यों का) निन्दक न होकर जैसे २ भलों के आचरण का अनुष्ठान करता है, तैसे २ अनिन्दित हुआ इस लोक और परलोक को प्राप्त होता है ॥ १२८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२९ ॥
एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः।
यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥१३०॥
एषधर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥१३१॥

(धन कमाने में) समर्थ भी शूद्र को धन का सञ्चय नहीं करना चाहिये, क्योंकि शूद्र धन पाकर ब्राह्मणों को ही तंग करता है * ॥ १२९ ॥ यह चारों वर्णों के आपद्-धर्म कहे हैं,

*धन के मद से और सेवा न करने से (मेधा०गोवि०कुल्लू०राघ०)

जिनका पूरा २ अनुष्ठान करते हुए (चारों वर्ण) परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ १३० ॥ यह चारों वर्णों के धर्म की विधि पूर्ण कह दी है, इससे आगे प्रायश्चित्त की शुभविधि कहूंगा ॥ १३१ ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान् धर्मभिक्षुकान् ।
निःस्वेभ्योदेयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥
एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥

* वह जो सन्तान (के लिये विवाह) चाहता है, जिसने यज्ञ करना है, जो पथिक है, जो (विश्वजित् यज्ञ में) सर्वस्व दे चुका है, गुरु के लिये (अर्थी), पिता के लिये (अर्थी), माता के लिये अर्थी, स्वाध्याय (अध्ययन अध्यापन) के लिये अर्थी, और रोगग्रस्त † ॥ १ ॥ इन नौ ब्राह्मणों को धर्म से मांगने वाले स्नातक जाने, इन निर्धनों को इनके विद्याविशेष के अनुसार देना चाहिये ॥२॥ इन नौ ब्राह्मणों को दक्षिणा सहित अन्न (वेदि

---

* पूर्व कहे अनुसार इस अध्याय में प्रायश्चित्त का विधान होना चाहिये था, पर १ से ४३ तक दान का विधान है, यह क्यों ? (उत्तर) दान से भी प्रायश्चित्त होते हैं, यह आगे दिखलाएंगे, इसलिये यहां दान के पात्र आदि का निर्णय आरम्भ में कर दिया है † गौत० ५।२१ आप० २।१०।१-२ बौधा० २।५।१९

के अन्दर) देवे, औरों को वेदि से बाहर पका अन्न देना कहा है(धन के देने में वेदि के अन्दर बाहर का कोई नियम नहीं है)*॥३॥

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥ ४ ॥
कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ।
रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु सन्ततिः ॥ ५ ॥
धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥ ६ ॥

राजा वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को यथायोग्य सारे रत्न और यज्ञ के लिये दक्षिणा (=धन) देवे ॥ ४ ॥ जो स्त्री वाला हुआ (धन) मांगकर और स्त्री विवाहता है, उसको रतिमात्र फल है, (उसमे उत्पन्न हुई) सन्तति तो धनदाता की होती है (अर्थात् होते हुए स्त्री के विवाह नहीं करना चाहिये, न ऐसे को धन देना चाहिये) † ॥ ५ ॥ वेदज्ञ पवित्र ब्राह्मणों को धन यथाशक्ति देवे, इससे मर कर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥
अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ।
स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

जिसके कुटुम्ब के पालन पोषण के लिये अनाज तीन वर्ष के

* गौ.त० ५। २२ बौध० २।५।२० † आप० २। १०। ३ मेधा० गोवि० नारा० राघ० राम० ने इस श्लोक को छोड़ दिया है ।

लिये पर्याप्त हो वा अधिक हो वह सोम पीने योग्य है *॥७॥ इमसे थोड़े धन के होते हुए जो द्विज सोम पीता है, वह जो पहले सोम पीचुका है,† उस का फल भी नहीं पाएगा, क्योंकि ॥८॥

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापातो विषास्वदः स धर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥
यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनांगेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥
योवैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद् द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

जो समर्थ हुआ अपने कुटुम्बियों के भूखे मरते हुए दूसरे लोगों को दान देता है, उसका वह दान धर्माभास है, जो ज़ाहरा शहद है, पर विष के स्वाद वाला है (अन्त में नरक में डालता है) ॥ ९ ॥ कुटुम्बियों को तंग करके जो कुछ परलोक के लिये करता है, वह उसके लिये दुःख परिणाम वाला होता है जीते हुए भी और मरकर भी॥१०॥(क्षत्रिय आदि) यजमान का, विशेष करके ब्राह्मण का यज्ञ (दूसरे अङ्ग पूरे होकर निरा) एक अङ्ग से रुका हुआ हो, तब, जो वैश्य बहुत धन वाला हो,

* वासि० ८।१० याज्ञ० १।१२४ विष्णु० ५९।८ 'सोम पीने योग्य है, सोमयज्ञ कर सकता है। यह काम्य सोमयज्ञ के विषय में निषेध है, नित्य तो यथा कथंचित् अवश्य करना चाहिये (मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ०)। † नित्य यज्ञ में, देखो पूर्व० ४।२६, ६।१०

पर पाक यज्ञों से रहित हो और सोमयाजी न हो, उसके घर से यज्ञ की सिद्धि के लिये धन लेसक्ता है, जबकि राजा धार्मिक है*

आहरेत् त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः ।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥
योऽनाहिताग्निः शतगु रयज्वा च सहस्रगुः ।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥
आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः ।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥ १५ ॥

यदि दो वा तीन अङ्ग रुके हों, तो शूद्र के घर से भी लेसक्ता है, क्योंकि शूद्र का यज्ञों में (स्वतन्त्र) कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ १३ ॥ जो सौ गौ वाला होकर आहिताग्नि नहीं, वा सहस्र गौ वाला होकर सोमयाजी नहीं, उन दोनों के कुटुम्बों से भी बिना विचारे ले आवे † ॥ १४ ॥ जो सदा लेता है, देता नहीं, ‡ उस न देते हुए से (धक्के से) लेवे है, इसप्रकार इसका यश फैलता है और धर्म बढ़ता है ॥ १५ ॥

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडऽनश्नता ।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

---

*११-१५ गौत०१८।२४-२७ 'राजा धार्मिक हो' जो कि इस अंश में शास्त्र पर चलते को दण्ड न दे। †गोवि०के अनुसार यह नियम केवल क्षत्रिय कुटुम्ब से लेने के विषय में है, मेधा० कुल्लू० के अनुसार क्षत्रिय ब्राह्मण दोनों से ‡ 'जो सदा दान लेता है' ऐसा ब्राह्मण (गोवि० कुल्लू० राघ०) 'जो सदा कमाता ही है, दान नहीं करता, ऐसा चारो वर्णों में से कोई (मेधा० नारा०).

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतोवाप्युपलभ्यते ।
आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥१७॥

ऐसे ही जिसने छः भोजन नहीं खाए (=तीन दिन रात भूखा रहा है) वह सातवें भोजन में हीनकर्म वाले * से एक दिन मात्र के लिये हरसक्ता है † ॥ १६ ॥ खल्यान से, खेत से, वा घर से अथवा जहां से मिले (लेवे), हां यदि वह पूछे, तो उसे साफ बतला देना चाहिये, (कि मैंने इस निमित्त चुराया है)॥१७॥

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ।
दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥ १८ ॥
योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥ १९ ॥
यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ २० ॥
न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥२१॥
तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः ।
श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥
कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ।
राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥२३॥

* अपने से हीन कर्म वाले (मेधा०) दानादि धर्म से रहित (कुल्लू०) पतित आदि नारा०) †१६-२३ गौत० १८।२८-३२ याज्ञ० ३।४३-४४

(ऐसे निमित्तों में भी) क्षत्रिय को ब्राह्मण का धन कभी नहीं हरना चाहिये, हां भूख से मरता हुआ वह दस्यु से * और यज्ञ हीन (क्षत्रिय ब्राह्मण) से हरसक्ता है ॥ १८ ॥ जो दुष्टों से धन लेकर भलों को देता है, वह अपने आपको नौका बनाकर उन दोनों को तारता है † ॥ १९ ॥ यज्ञशीलों का जो धन है, उसको बुद्धिमान् (यागादि में लगने से) देवताओं का धन कहते हैं, यज्ञ न करने वालों का जो धन है, वह असुरों का धन कहलाता है ॥ २० ॥ धार्मिक राजा उसको (ऐसे निमित्तों पर हरने वाले को) दण्ड न दे, क्योंकि राजा की ही मूर्खता से ब्राह्मण भूख से पीड़ित होता है ‡ ॥ २१ ॥ (इसलिये) उसके (ब्राह्मण के) कुटुम्ब को देखकर, और उसकी विद्या और आचार को जानकर राजा अपने कुटुम्ब से धर्मयुक्त जीविका नियत करे ॥२२॥ इसकी जीविका नियत करके सब से (शत्रु चोरादि से) इसकी रक्षा करे, क्योंकि रक्षा किये हुए ब्राह्मण से राजा उसके धर्म से छटा हिस्सा पाता है § ॥ २३ ॥

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते॥२४॥
यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ।
सयाति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः॥२५॥

---

* 'दस्यु' देखो १०।३५ नारा० के अनुसार यह हक राजा को है † एक का धन शुभकर्म में लगाने से, दूसरे को शुभकर्म के पूरा कराने से। नन्द० ने १९-२१ श्लोक नहीं लिखे ‡ २१-२२ देखो पूर्व० ७-१३४-१३५ § देखो पूर्व० ८।३०४

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥२६॥
इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ।
क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥
आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥
विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥२९॥
प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते ।
न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

यज्ञ के लिये ब्राह्मण शूद्र से कभी धन न मांगे, क्योंकि मांगकर यज्ञ करता हुआ मरकर चण्डाल होता है * ॥ २४ ॥ यज्ञ के लिये धन मांगकर जो सारा नहीं लगाता है, वह ब्राह्मण सौ वर्षतक भास वा काक बनता है † ॥ २५ ॥ देवता के धन को और ब्राह्मण के धन को जो लोभ से हरता है, वह पापी दूसरे जन्म में गिद्ध की जूठ से जीता है ॥२६॥ नित्य जो पशुयाग और सोमयाग हैं उनके (धनाभाव से) न होसकने में, प्रायश्चित्त के लिये, वर्ष बदलने पर (चैत्र शुक्ल के आरम्भ में) सदा वैश्वानरी इष्टि ‡ करे ॥ २७ ॥ जो द्विज बिना आपद् के आपत्काल की विधि से धर्म करता है, वह परलोक में उसका फल नहीं पाता है,

---

* याज्ञ० १।१२७ विष्णु० ५९। ११ † याज्ञ० १।१२७ ‡ याज्ञ० १।१२६ विष्णु० ५९।१० और मिलाओ पूर्व० २५-२६

यह विचारा हुआ है ॥ २८ ॥ क्योंकि विश्वेदेवों, साध्यों, ब्राह्मणों और महर्षियों ने आपदा में मरने के भय से *(आपद्धर्म) असली कर्म का प्रतिनिधि बनाया है ॥ २९ ॥ सो जो मुख्य-विधि के समर्थ होकर अनुविधि से वर्तता है (प्रतिनिधि से कर्म करता है) उस दुर्मति को पारलौकिक फल नहीं होता है ॥३०॥

न ब्राह्मणो वेदयेत किञ्चिद्राजनि धर्मवित् ।
स्ववीर्येणैव तान् शिष्यान्मानवानपकारिणः ॥३१॥
स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम् ।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥ ३२ ॥
श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः ॥३३॥

धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण कुछ भी(अपकार)राजा से न निवेदन करे, केवल अपनी शक्ति† से ही उन अपकारी मनुष्यों को दण्ड दे‡॥३१॥ (स्वाधीन) अपनी शक्ति से और(पराधीन) राजशक्ति से (स्वाधीन होने से) अपनी शक्ति बलवत्तर है, इसलिये अपनी ही शक्ति से ब्राह्मण वैरियों का निग्रह करे § ॥ ३२ ॥ विना विचारे ॥ अथर्व और अङ्गिरस से देखी श्रुतियों का प्रयोग करे, वाणी ही ब्राह्मण का शस्त्र है, उससे ब्राह्मण वैरियों को मारे ॥ ३३ ॥

* ऐसा न हो, कि भूखा ही मरजाए । † अपनी शक्ति जो आगे ३२ में कही है ‡ मिलाओ पूर्व ९।२९० § मिलाओ पूर्व ९।३१३-३२१ ॥ 'अविचारयन्' के स्थान 'अभिचारयन्' अभिचार कर्म करता हुआ (नारा०) 'अभिचारितं' (नन्द०) अभिचारकर्म=ऐसा कर्म जिसका फल शत्रु का मरना हो ।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः ।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥
विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥ ३५ ॥

क्षत्रिय भुजबल से अपनी आपदा तरे, वैश्य और शूद्र धन से, ब्राह्मण जप और होम से* ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण मर्यादा बनाने वाला, शासन करने वाला (अधर्म का दण्ड-प्रायश्चित्त-देने वाला) आचार्य, और सब का हितैषी कहा है, उसके लिये अनिष्ट वचन न कहे, न कठोर वचन कहे † ॥ ३५ ॥

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः ।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥ ३६ ॥

---

* वासि० २६।१६ † पूर्वार्ध के अर्थ में टीकाकारों का भेद है। विधाता=बनाने वाला (जगत् का, अग्निहोत्र के द्वारा) (मेधा० नारा०) विहित कर्मों का अनुष्ठान करने वाला (गोवि० कुल्लू०) करने, न करने और अन्यथा करने के समर्थ (राघ०) अभिचार आदि का करने वाला (नन्द०) शासिता=निग्रह करने वाला, राजा का भी (मेधा०) पुत्र शिष्यादि का (कुल्लू०) अधर्म का (नारा०) धर्म कराने वाला (नंद०) वक्ता=अध्यापक (गोवि० नारा०) हित का बतलाने वाला (मेधा०) धर्मादि का बतलाने वाला (कुल्लू० राघ०) मुद्रित पुस्तकों में जो 'शुष्कां' पाठ है, उसके स्थान मेधा० गोवि० नारा० नंद० के अर्थानुसार 'शुक्तां' पाठ चाहिये। अनिष्टवचन=इसे मारो बांधो इत्यादि। कठोरवचन, नीच मूर्ख इत्यादि। नारा० 'ब्रूयात्' के स्थान 'कुर्यात्' पढ़ता है। अर्थ-उसके लिये न अनिष्ट करे, न कठोर बोले।

नरके हि पतन्त्येते जुह्वतः स च यस्य तत्।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥ ३७ ॥

न कन्या, न (विवाही हुई) युवति, न थोड़ी विद्यावाला, न मूर्ख, न पीड़ित, न जिसका उपनयन नहीं हुआ वह, अग्निहोत्र का होता हो * ॥ ३६ ॥ यह होम करते हुए नरक में गिरते हैं, और वह (यजमान) भी, जिसका वह कर्म है, इसलिये श्रौत कर्मों में कुशल, वेद के पार पहुंचा हुआ होता होना चाहिये। ३७।

प्राजापत्यमदत्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम्।
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥
पुण्यान्यन्यानिकुर्वीतश्रद्दधानोजितेन्द्रियः।
नत्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथञ्चन ॥ ३९ ॥
इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्त्तिं प्रजाः पशून्।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनोयजेत् ॥ ४० ॥

ब्राह्मण धन के होते हुए यदि प्रजापति देवता के लिये घोड़ा अग्न्याधान की दक्षिणा न दे, तो वह अनाहिताग्नि होता है (आधान का फल नहीं पाता है) ॥ ३८ ॥ श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय हुआ दूसरे पुण्यकर्म करे, किन्तु थोड़ी दक्षिणा वाले यज्ञों से कभी यजन न करे ॥ ३९ ॥ थोड़ी दक्षिणा वाला यज्ञ इन्द्रिय, (जीतेजी) यश, स्वर्ग, आयु, (मरने के पीछे) कीर्ति, प्रजा और पशुओं को हनन करता है, इसलिये थोड़े धनवाला यज्ञ न करे ॥४०॥

* ३६-३७ वासि० ३।६ गौत० ३।४ आप० २।१५।१८-१९ और पूर्व० २।१७२; ५।१५५; ९।१८

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः ।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥
ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते ।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥४२॥
तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि संतरेत् ॥४३॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छा से अग्नियों को त्यागकर (=सायं प्रातः होम न करके) महीनाभर चान्द्रायण करे, क्योंकि वह वीर, * हत्या के तुल्य है † ॥४१॥ जो शूद्र से धन पाकर अग्निहोत्र करते हैं, वह शूद्रों के ऋत्विज हैं, वेद वादियों में निन्दित हैं ‡ ॥४२॥ वह जो सदा शूद्र की अग्नियों को § उपासते हैं, उन मूर्खों के माथे पर पाओं धर कर दाता दुःखों को तर जाता है ॥४३॥

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ ४४ ॥
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥

विहितकर्म को न करता हुआ और निन्दित को करता

---

* वीर=पुत्र (गोवि० कुल्लू० नारा० राघ०) अग्नियें पुत्र इस लिये हैं, कि आप उत्पन्न की होती हैं (नारा०) वीर=क्षत्रिय (नंद०) अथवा वीर=देवता (राघ०) † वासि० १।१८; २१।२७ गौत० २२।३४ विष्णु० ५४।१३ ‡ मिलाओ पूर्व० ११।२४ § शूद्र के धन से अग्निहोत्र करते हैं। नन्द० पूर्वार्ध को इस तरह पढ़ता है 'पापानां सततं तेषामग्निं शूद्रस्य जुह्वतां'

हुआ, तथा इन्द्रियों में फंसा हुआ मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है* ॥४४॥ बुद्धिमान् पुरुष विन इच्छा (विनमर्ज़ी) से किये पाप में प्रायश्चित्त कहते हैं, दूसरे आचार्य इच्छा करके किये में भी कहते हैं, क्योंकि श्रुति में देखते हैं † ॥ ४५ ॥

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति ।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥४६॥
प्रायश्चीत्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥४७॥
इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

बिन इच्छा किया पाप वेदाभ्यास से शुद्ध होता है, और मोहवश इच्छा से किया पाप भिन्न प्रकार के प्रायश्चित्तों से (शुद्ध होता है) ॥ ४६ ॥ प्रमाद से वा पूर्वले (जन्म के) कर्म से ‡ प्रायश्चित्ती होकर द्विज प्रायश्चित्त किये बिना धर्मात्माओं के साथ संसर्ग न करे ॥ ४७ ॥ कई यहां के खोटे कर्मों से, और कई पूर्वले (जन्म में) कियों से रूप के उलट पलट को

---

* ४४-४६ वासि० २०।१-३; २२ गौत० १९ बौधा० ३।१० याज्ञ० ३।२१९, २२६ † ऐत० ब्रा० ७।२८ में लिखा है; कि इन्द्र ने यतियों को भेड़ियों के आगे डाल दिया (भेड़ियों के आगे डालना बिना इच्छा नहीं होसक्ता) उसको हत्या लगी, वह प्रायश्चित्त के लिये ब्रह्मा के पास गया, ब्रह्मा ने उसको प्रायश्चित्त के लिये उपहव्य कर्म बतलाया। ‡ पूर्वले जन्म का पाप, खोटे नख होने इत्यादि शरीर में आई त्रुटियों से अनुमान किया जाता है।

प्राप्त होते हैं (इसलिये भी प्रायश्चित्त करना चाहिये *॥ ७८ ॥

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥ ५० ॥

(ब्राह्मण के) सोने का चुराने वाला खोटे नखों को, शराब पीने वाला काले दांतों को, ब्रह्महत्या करने वाला क्षयरोग को, और गुरुस्त्रीगामी दुष्ट चमड़े को (पाता है) ॥ ४९ ॥ चुगली खाने वाला नाक की दुर्गन्धि को, झूठी निन्दा करने वाला मुंह की दुर्गन्धि को, अनाज का चोर अंगहीनता को और (अनाज) मिलाने वाला अङ्ग की अधिकता को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

अन्नहर्ताऽऽमयावित्वं मौक्यं वागऽपहारकः ।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पंगुतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥
एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः ।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५२ ॥
चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
निन्द्यैर्हिलक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥५३॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥५४॥

अन्न चुराने वाला अग्नि की मन्दता (बदहज़मी) को, वाणी

* ४८-५४ नासि० ११।१८; २०।१; ८।४३-४४ याज्ञ० ३।२०७-२१५

का चुराने वाला * गुंगेपन को, वस्त्रों का चुराने वाला लङ्गड़े पन को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कर्म शेष † से भलों से निन्दित जड़, गूंगे, अन्धे, बहिरे और विकृत आकृति वाले उत्पन्न होते हैं ॥ ५२ ॥ जिस लिये प्रायश्चित्त न किये पुरुष निन्दित लक्षणों से युक्त हुए उत्पन्न होते हैं, इसलिये शुद्धि के लिये सदा प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्या, सुरा (नामी शराब) का पीना, चोरी (ब्राह्मण के सुवर्ण की), गुरु स्त्री के पास जाना, इन (कर्मों) को महापातक कहते हैं, और उन (महा पातकियों) के साथ संसर्ग ‡ भी (पांचवां महापातक है) § ५४

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ५५ ॥
ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ।
गर्हितान्नाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥५६॥
निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५७ ॥

---

* वाणी=वेद, वेद का चुराने वाला, जो बिना आज्ञा लिये दूसरे पढ़ते हुए से सुनकर पढ़ लेता है (गोवि० कुल्लू० राघ०) दूसरे की रचना को अपनी प्रकट करने वाला (नारा०) † कर्मशेष=परलोक में भुक्त कर जो बचा कर्म । छपे पुस्तकों में 'कर्मविशेषण' के स्थान 'कर्मावशेषण' पाठ नारा० नन्द० के अनुसार कर दिया है । मेधा० गोवि० कुल्लू० का अर्थ भी इसी पाठ में ठीक बनता है । ‡ संसर्ग=नाते रिश्ते, और वेद पढ़ने पढ़ाने का लिया जाता है, न कि निरा मिलना वा बात करना । § '५४–७० वासि० १।१९-२३ गौत० २१।१-१२ आप० १ । २१ । ७-१९ बौधा० २।२।१-८ ; १२-१३ ; १५-१६ याज्ञ० ३।२२७-२४२ विष्णु० ३४।१;३५-३८।६, ३९-४२ देखो पूर्व९।२३५

रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीश्वन्त्यजासु च ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥५८॥

ऊंचे जन्म के लिये (अब्राह्मण होकर मैं ब्राह्मण हूं इत्यादि) झूठ बोलना, राजा के पास (प्रजा की) चुगली करना, गुरु पर झूठा अपराध लगाना, ब्रह्महत्या के तुल्य हैं ॥ ५५ ॥ वेद को भुला देना, वेदों की निन्दा, झूठी साक्षिता; मित्र की हत्या, निषिद्ध आहार, वा आहार के लिये अनुचित वस्तु का खाना, * यह छः सुरापान के तुल्य हैं ॥ ५६ ॥ अमानत का, मनुष्य, घोड़े, चांदी, भूमि, हीरे और मणियों का हरलेना सोने की चोरी के तुल्य कहागया है ॥ ५७ ॥ सगी बहिन, कंवारी, चण्डाली, मित्र और पुत्र की स्त्री में वीर्य सेचन गुरु स्त्री के गमन के तुल्य है †

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च॥५९॥
परिवित्तिताऽनुजेऽनूढे परिवेदनमेव च ।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ॥६०॥
कन्याया दूषणंचैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम् ।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६१ ॥

---

* निषिद्ध लहसन आदि, अनुचित विष्ठा आदि (गोवि० कुल्लू० राघ०) निषिद्ध और जिसके खाने को जी न चाहे (मेधा०) अपवित्र पुरुष वा वस्तु के संसर्ग से दूषित और स्वभावतः खाने के अयोग्य (नारा० नन्द०) † ५५-५८ श्लोकों में जो पाप जिस २ के तुल्य कहे हैं, उनके लिये वही प्रायश्चित्त नहीं होता, थोड़ा घट होता है, क्योंकि तुल्यता घट में दीजाती है (टीकाकार)।

व्रात्यताबान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च ।
भृताच्चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः ॥ ६२ ॥

* गोहत्या, यज्ञ के अयोग्य (शूद्रादि, वा दुष्टकर्मी) को यज्ञ कराना, परस्त्री गमन, अपने आपको बेचना, गुरु, माता, पिता का त्याग (सेवा आदि न करना) ब्रह्मयज्ञ का त्याग, अग्नि का त्याग और पुत्र का त्याग†॥५९॥ छोटे (भाई) के पहले विवाहे जाने पर (बड़े के) विवाह का उलांघा जाना, और (छोटे का बड़े को) उलांघ कर विवाह करना, उन दोनों को कन्या देना, और उन दोनों को यज्ञ कराना (विवाह होम कराना)॥६०॥ कन्या पर दोष लगाना, ब्याज लेना, व्रत का भंग, तालाब, बगीचा, स्त्री और सन्तान का बेचना ‡ ॥ ६१ ॥ व्रात्यता, बान्धवों का त्याग, नौकर होकर पढ़ाना, नौकर से विद्या ग्रहण, बेचने के अनुचित (तिल आदि) का बेचना § ॥ ६२ ॥

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारोमूलकर्म च ॥६३॥

---

* अब आठ श्लोकों से उपपातक कहते हैं †यहां अपने आपको बेचना=दास बनना (मेधा०) यह केवल आर्यों के लिये उपपातक है, शूद्र दास होते ही हैं (नारा०) वेद को भुला देना पूर्व० ७५ में महापतक कहा है, यहां ब्रह्मयज्ञ का त्याग उपपातक कहा है ‡ यहां ब्याज लेना वैश्य से भिन्न के लिये उपपातक है, वा शास्त्र प्रतिषिद्ध ब्याज लेना वैश्य के लिये भी। और व्रतभंग ब्रह्मचर्य का तोड़ना (गोवि० कुल्लू० राघ०) किसी भी स्वीकार किये नियम का भंग (मेधा० नारा०) § यहां व्रात्यता=समय पर उपनयन न होना (देखो पूर्व० १०।२०) बान्धव=चाचे, मामे और उनके कन्या पुत्र आदि। इनका त्याग आपदा में इनको रुलने और अनाथ होने देना।

इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥६४॥

सब प्रकार की खानों में अधिकार, महायन्त्रों का जारी करना, ओषधियों की हिंसा, (समय से पूर्व, वा व्यर्थ काटना) स्त्री से जीविका करना, अभिचारकर्म, और मूलकर्म * ॥ ६३ ॥ इन्धन के लिये हरे वृक्षों का काट गिराना, निरा अपने लिये कर्म का आरम्भ, और निन्दित का अन्न खाना † ॥ ६४ ॥

अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥६५॥
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥६६॥

---

* यहां 'महा यन्त्रों का जारी करना' अपनी भूमि के सेचन के लिये दूर जाने वाले जल के प्रतिबन्ध के यन्त्र बनाना (मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ०) सूअर आदि बडे २ प्राणियों के मारने के लिये बड़े २ यन्त्र बनाना (नारा०) स्त्री से जीविका करना=स्त्री धन से अपना और कुटुम्ब का पालन (मेधा०) पर घर में सेवा आदि के लिये स्त्री को भेजकर उससे जीविका (राघ०) स्त्री को वेश्या बनाकर उससे जीविका (कुल्लू०) पर घरों में सेवादि कराके स्त्री से कमाए धन से जीविका (नारा० नन्द०) † यहां 'निरा अपने लिये' देवता, पितर और अतिथियों के उद्देश के बिना केवल अपने लिये पकाना आदि (मेधा० कुल्लू० राघ० नारा० नन्द०) और देखो ३।११८ निन्दित=राजा वा जुआरिया आदि। निन्दित अन्न का खाना पूर्व० ५७ में कहा है, किन्तु मेधा० और कुल्लू० यहां भी ५७ में कहा ही लेते हैं। भेद यह करते हैं, कि लहसन आदि का जान बूझकर बार २ खाना महापातक है, बिन जाने एक बार खालेना उपपातक।

अग्न्याधान करना (सोने चांदी से भिन्न वस्तु की) चोरी, ऋणों का न चुकाना, असत् शास्त्रों की शिक्षा, नाट्य का कर्म* ॥ ६५ ॥ अनाज, (सोने चांदी से भिन्न) धातों और पशुओं का चुराना, शराब पीने वाली स्त्री का सेवन, स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय का वध, और नास्तिकपन (यह सब) उपपातक हैं ॥ ६६ ॥

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ।
जैह्मयंचमैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६७ ॥
खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविक वधस्तथा ।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६८ ॥

ब्राह्मण को पीड़ा देना (चोट लगाना), न सूंघने योग्य (विष्ठा आदि) का और शराब का सूंघना, (सरल पुरुषों से) कुटिलता करना, पुरुष से मैथुन, यह जाति भ्रंशकर (जाति से फिसलाने वाला) पातक कहा है ॥ ६७ ॥ गधे, घोड़े, ऊंट, हरिण, हाथी, बकरी, भेड़, मछली, सांप, भैंसे की हत्या संकरीकरण (वर्णसंकर तुल्य बनाने वाला) कहा है ॥ ६८ ॥

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥ ६९ ॥
कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ।
फलैधः कुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७० ॥

---

* ऋण–ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण देखो मासि० ११।४५ असच्छास्त्र=चार्वाक और निर्ग्रन्थ (मेधा०) पाषण्ड शास्त्र (नारा०)

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानिसम्यङ्निबोधत ॥ ७१ ॥

निन्दितों * से धन (दान) लेना, वणिज, शूद्र की सेवा, और असत्य भाषण यह अपात्रीकरण (दान लेने के अयोग्य बनाने वाला) पातक जानना चाहिये ॥ ६९ ॥ कृमि, कीड़े, और पक्षियों की हत्या, शराब के साथ रक्खी वस्तु का भोजन, फल, लकड़ी और फूलों की चोरी, और धीरज न होना (अत्यन्त कायरपन) यह मलावह (अपवित्र बनाने वाला) पातक है ॥ ७० ॥ यह (ब्रह्महत्यादि) अलग कहे हुए सारे पाप, जिन२ व्रतों से दूर होते हैं, उनको भली भांति जानो॥७१॥

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ।
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥७२॥
लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धेत्रिरवाक्शिराः ॥७३॥

ब्रह्महत्या करने वाला वन में कुटिया बनाकर और मुरदे की खोपरी की झंडी लटकाकर भिक्षा का अन्न खाता हुआ शुद्धि के लिये बारह वर्ष रहे † ॥ ७२ ॥ अथवा जानते हुए शस्त्रधारियों का अपनी इच्छा से निशाना बने, अथवा जलती अग्नि में अपने आपको नीचे सिर करके तीनबार डाले ‡॥७३॥

* निंदित (देखो पूर्व० ४।८४) † ७२–८६ वासि० २०।२१–२८ गौत० २२।२–१० आप० १।२४। १०–२५; २५।११–१२; २८।२१–२९, याज्ञ० ३।२४३–२५०, विष्णु० ३५।६; ५०।१–६, १५; यह ७२ में कहा प्रायश्चित्त कुल्लू०नारा०राघ० के अनुसार इरादे से कीहुई ब्रह्महत्या

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा ।
अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥७४॥
जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः ॥ ७५ ॥
सर्वस्वं वेदविदुष ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
धनं हि जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छेदम् ॥७६॥

अथवा अश्वमेध वा स्वर्जित, वा गोसव, वा अभिजित वा विश्वजित वा त्रिवृत् अग्निष्टुत यज्ञ करे * ॥ ७४ ॥ अथवा ब्रह्महत्या के दूर करने के लिये मिताहारी और संयमी होकर किसी एक वेद का स्वाध्याय करता हुआ सौ योजन यात्रा करे † ॥ ७५ ॥ अथवा किसी विद्वान् ब्राह्मण को सारा धन देदे, जो धन जीवन के लिये पर्याप्त हो, वा सारे सामान समेत घर‡ ७६

का है ‡ जानते हुए=यह ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करने के लिये निशाना बना है, ऐसा जानते हुए (मेधा० गोवि० कुल्लू० राम०) नारा० के अनुसार यह प्रायश्चित्त इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करने वाले को है । कुल्लू० राघ० यह दो प्रायश्चित्त और ७४ में कहा अश्वमेध यह तीन प्रायश्चित्त जब कोई क्षत्रिय जान बूझकर ब्रह्महत्या करे, तो उसके विषय में हैं । पहले दो प्रायश्चित्तों में ज़ख्मी होकर बच रहे, तो भी उसका प्रायश्चित्त होजाता है ।

* गोसव, (देखो कात्या० श्रौ० २२।५।३) अभिजित् (देखो आश्व० श्रौ० ८ । ५ । १३) अग्निष्टुत् (देखो आश्व० ९।७।२२-२५) गोवि० नारा० के अनुसार त्रिवृत् स्तोम वाले अग्निष्टुत् से, † कुल्लू० नारा० राघ० के अनुसार यह प्रायश्चित्त बिना इरादे के निरे नाममात्र (निर्गुण) ब्राह्मण के मारने में है. ‡ मेधा० गोवि० कुल्लू० के अनुसार ' धनं हि ' पाठ रक्खा है, जोकि छपे पुस्तकों में ' धनं वा ' है । कुल्लू० राघ० के अनुसार यह प्रायश्चित्त अज्ञान से जातिमात्र के ब्राह्मण के मारने में है ।

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत् प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ।
जपेद्वानियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७७ ॥
कृतावपनो निवसेद् ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७८ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥७९॥
त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥८०॥

अथवा हविष्य भोजन करता हुआ उलटे प्रवाह सरस्वती के मूलतक जाए, वा अल्पाहारी हुआ तीन वार वेद की संहिता का स्वाध्याय करे * ॥ ७७ ॥ अथवा गोब्राह्मण के हित में रत हुआ सिर मुंडवाकर ग्राम के निकट वा गोशाला, वा आश्रम वा वृक्ष के नीचे निवास करे † ॥ ७८ ॥ गोब्राह्मण के लिये झट प्राणों का त्याग करे, गौ और ब्राह्मण की रक्षा करने वाला ब्रह्महत्या से छूट जाता है ‡ ॥७९॥ तीनवार (चोरी को) रोकने

* कुल्लू० के अनुसार इनमें से पहला प्रायश्चित्त ज्ञानपूर्वक जातिमात्र ब्राह्मण के वध में है, दूसरा अज्ञान से जातिमात्र ब्राह्मण के वध में है † नारा० के अनुसार सारे प्रायश्चित्तों में यह नियम वर्ते, मेधा० गोवि० कुल्लू० के अनुसार ७२ में कहे १२ वर्ष प्रायश्चित्त का यह विकल्प है, अर्थात् चाहे १२ वर्ष उस तरह वन में काटे, चाहे इस तरह ग्राम समीपादि में काटे ‡ बारह वर्ष का व्रत आरम्भ किये को जब गौ ब्राह्मण की रक्षा का अवसर मिले, उस समय प्राणों की परवाह न करके उनको बचाता हुआ मरजाए, तौभी, बच रहे, तौ भी, उसी समय हत्या से छूट जाता है (गोवि० कुल्लू० नारा०)

वाला, वा सर्वस्व जीत देने वाला, अथवा उसके निमित्त ब्राह्मण को जीवन लाभ हो, तो (ब्रह्महत्या से) छूट जाता है * ॥८०॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८१ ॥
शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥ ८२ ॥
धर्मस्य ब्राह्मणोमूलमग्रं राजन्यउच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनोविख्याप्य शुध्यति ॥८३॥
ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम् ।
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥८४॥
तेषां वेदविदोब्रूयुस्त्रयोऽप्येनःसु निष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्राविदुषांहिवाक् ॥८५॥

इसप्रकार सदा पक्के नियमों वाला, ब्रह्मचारी और संयमी हुआ बारहवें वर्ष के समाप्त होने पर ब्रह्महत्या को दूर करता है †॥८१॥ अथवा अश्वमेध में ब्राह्मणों के और राजा के समागम में अपना पाप निवेदन करके अवभृथ स्नान करके (ब्रह्महत्या के पाप से) छूटता है ‡ ॥ ८२ ॥ क्योंकि ब्राह्मण धर्म की जड़

---

* ब्राह्मण का सर्वस्व हरते हुए का तीनवार पूरा मुकाबिला करने वाला न छुड़ासके तो भी, और छुड़ा देसके, तो एकबार ही, अथवा ब्राह्मण जब स्वयं प्राण संकट में पड़जाए, तो उसे बचा लेने से भी पाप से छूट जाता है ।

† यह भिन्न २ प्रायश्चित्त देश, काल और अवस्था के अनुसार हैं। ‡ गोवि० इसको १२ वर्ष के प्रायश्चित्त के अन्दर ही यदि

है, और क्षत्रिय अग्र है, इसलिये उनके समागम में अपना पाप प्रसिद्ध करके शुद्ध होता है ॥ ८३ ॥ ब्राह्मण उत्पत्ति से ही देवताओं का भी देवता है, और जगत के लिये प्रमाण है, क्योंकि इसमें वेद मूल है (उसका उपदेश वेद मूलक है) ॥ ८४ ॥ उन (ब्राह्मणों) में से तीन भी जो वेदवेत्ता हैं, पाप का प्रायश्चित्त बतलासक्ते हैं, वही उन (पापियों) के पवित्र करने के लिये होगा, क्योंकि विद्वानों की वाणी पवित्र करने वाली है ॥ ८५ ॥

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८६ ॥
हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥८७॥
उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुं तथा ।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥८८॥

इनमें से किसी विधि का आश्रय लेकर संयमी ब्राह्मण (आदि) अच्छे मनवाला होने से ब्रह्महत्या से किये पाप को दूर करता है ॥ ८६ ॥ (ब्राह्मण का) गर्भ जो (स्त्री पुरुष नपुंसक रूप से) अज्ञात है, उसकी हत्या करके, यज्ञ करते हुए क्षत्रिय और वैश्य की हत्या करके, और आत्रेयी स्त्री की हत्याकर के यही प्रायश्चित्त करे * ॥ ८७ ॥ गवाही में झूठ बोलकर,

अवभृथ स्नान का अवसर मिलजाए, तो उतने से ही शुद्धि मानता है। कुल्लू० भविष्य पुराण के आश्रय इसका खण्डन करके इसे स्वतन्त्र प्रायश्चित्त मानता है, अर्थात् जबकि गुणवान् ब्राह्मण निर्गुण ब्राह्मण को मारे तो।

* ८७-८८ वासि० २०।३४-३६ गौत० २२।११-१४ आप० १।२४।

गुरु पर मिथ्या दोष लगाकर, अमानत को चुराकर, अपनी स्त्री और मित्र का वध करके भी (यही प्रायश्चित्त करे) *॥८८॥

इयंविशुद्धिरुदिता प्रमाप्याऽकामतोद्विजम् ।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ८९ ॥
सुरां पीत्वा द्विजोमोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत् ।
तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥९०॥

यह शुद्धि विना कामना के ब्राह्मण के वध में कही है, इच्छा से ब्राह्मण के वध में प्रायश्चित्त † नहीं वतलाया है ॥८९॥ द्विज राग से सुरा पीकर अग्नि के तुल्य गर्म सुरा पिये, उससे शरीर के दग्ध होने पर उस पाप से छूटता है ‡ ॥ ९० ॥

६-९, २३ बौधा० २।१।१२ याज्ञ० ३।२५१ विष्णु० ५०।७-१० ; ५२।४ मेधा० और दूसरे कई टीकाकारों के अनुसार आत्रेयी, अत्रिगोत्र की स्त्री, कुल्लू० और कई टीकाकारों के अनुसार रजस्वला ब्राह्मणी। * गवाही में झूठ बोलकर, जहां उस गवाही से किसी का वध हो (मेधा० गोवि० नारा०) सोने भूमि आदि की गवाही में (कुल्लू० राघ०) गुरु पर मिथ्या कलंक (देखो पूर्व० ५५) अमानत, क्षत्रिय वैश्य का सोना, वा ब्राह्मण की चांदी आदि (कुल्लू० नारा० राघ०) अथवा निर्धन ब्राह्मण का चाहे कुछ ही हो (मेधा०) स्त्री=अपनी स्त्री (नारा० नन्द०) अपना मित्र चाहे ब्राह्मण न भी हो (नारा०)

† अर्थात् यह प्रायश्चित्त नहीं, इससे दुगुना होता है (राघ०) ‡ ९०-९७वासि०१०।१९।२२ गौत०२३।१०-१२आप०१।२५।३।१०; २५।१० बौधा० २।१।१८-२२ याज्ञ० ३।२५३-२५२ विष्णु० ५१।१-४ ; । ९०-९१ के प्रायश्चित्त इच्छा से सुरा पीने में हैं देखो आगे १४६ । सुरा आगे ९५ में तीन प्रकार की कहेंगे, ब्राह्मणों को उन तीनों के पीने में यह प्रायश्चित्त है, क्षत्रिय वैश्य को पैष्टी=पीठी की, आटे के रस से निकाली में यह प्रायश्चित्त है देखो आगे ९३-९४

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।
पयोघृतं वाऽऽमरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥ ९१ ॥
कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।
सुरापानापनुत्त्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी ॥९२॥

अथवा अग्नि के तुल्य (गर्म) गोमूत्र वा जल पिये, वा दूध, वा घी वा गोबर का रस मरने तक पिये ॥ ९१ ॥ अथवा बालों के वस्त्र पहने, जटा धारे, (बोतल की) झंडी लगाए वरसभर चावलों के कण, वा खली एकवार रात को खावे*॥९२॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥९३॥
गौडी पैष्टी चमाध्वी च विज्ञेयात्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा नपातव्या द्विजोत्तमैः ॥९४॥
यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥९५॥

सुरा अन्नों की मल है, और पाप मल कहलाता है, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सुरा न पिये †॥९३॥ गुड़की (गौड़ी)

---

* गोवि० कुल्लू० राघ० नन्द० के अनुसार यह प्रायश्चित्त अज्ञान से पैष्टी सुरा के पीने में हैं,नारा० के अनुसार माध्वी से मिले जल के पीने में है, मेधा० राघ० के अनुसार अज्ञान से पैष्टी के पीने में और ज्ञानपूर्वक गौडी माध्वी के पीने में है ।

† यहां अन्न की मल कहने से पैष्टी सुरा से अभिप्राय है, वह सारे द्विजों के लिये महापातक है और ब्राह्मण के लिये दूसरी दो गौड़ी और माध्वी भी महापातक हैं ।

पीठी की (पैष्टी) और महुए की (माध्वी) *यह तीन प्रकार की सुरा जाननी चाहिये, जैसी एक है, वैसी सभी हैं, ब्राह्मणों को नहीं पीनी चाहियें ॥९४॥ यक्ष राक्षस और पिशाचों का अन्न है मद्य, मांस, सुरा और आसव, वह देवताओं की हवि खाने वाले (खाने योग्य) ब्राह्मण को नहीं खाने चाहियें ॥ ९५ ॥

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९६ ॥
यस्यकायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्य व्यपैतिब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥९७॥
एषा विचित्राऽभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥९८॥

मद से मूढ़ हुआ ब्राह्मण अपवित्र स्थान में गिरेगा वा (अनुचित रीति से) वेद का उच्चारण करेगा, वा कोई और अकार्य करेगा ॥ ९६ ॥ जिसके शरीर में स्थित वेद एकबार भी मद्य से डुबो दिया जाता है, उसका ब्राह्मणत्व दूर होजाता है और वह शूद्रता को प्राप्त होता है ॥ ९७ ॥ यह सुरा पीने का नानाप्रकार का प्रायश्चित्त कहा, इससे आगे (ब्राह्मण का) सोना चुराने का प्रायश्चित्त कहूंगा ॥ ९८ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयात् मां भवाननुशास्त्विति ॥९९॥

---

* माध्वी=महुए के फूलों की (कुल्लू०) महुए के फूलों की वा दाख की (नारा०) अंगूरों की (कई)

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।
वधेन शुध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १०० ॥

सोने की चोरी करने वाला ब्राह्मण (आदि) राजा के पास जा अपना कर्म प्रकट करता हुआ कहे, मुझे आप दण्ड दें*॥९९॥ राजा (उसके कन्धे पर से) मूसल को लेकर एकवार उसे स्वयं मारे, वध से चोर शुद्ध होता है, ब्राह्मण निरा तप से ही † ॥ १०० ॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणोव्रतम् ॥१०१॥
एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १०२ ॥

तप से सुवर्ण की चोरी से उत्पन्न हुए पाप को दूर करना चाहता हुआ द्विज चीर पहनकर वन में ब्रह्महत्या करने वाले के व्रत को करे ‡ ॥ १०१ ॥ इन व्रतों से चोरी के पाप को द्विज दूर करे, और गुरुस्त्री गमन के पाप को इन व्रतों से दूर करे॥१०२॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुध्यति।१०३

* ९९-१०० देखो पूर्व० ८।३१४-३१६ † 'तपसैवतु' पाठ मेधा० ने पढ़ा है। यही पाठ हमने स्वीकार किया है। गोवि० कुल्लू०नारा० राघ० ने 'तपसैव वा' पाठ पढ़ा है। वा=पर (नारा० नन्द०) वा= अथवा, वा से अभिप्राय यह है, कि क्षत्रिय वैश्य भी तप से शुद्ध होसके हैं। पर ब्राह्मण के लिये निरा तप है, क्योंकि 'तपसैव' में 'एव' पढ़ा है। (कुल्लू०) वा=अथवा सात लक्ष गायत्री का जप(राघ०)जो प्रायश्चित्त अगले श्लोकों में कहे हैं, उनकी अपेक्षा से 'अथवा' कहा है (गोवि०) ‡ आप० १।२५।१० याज्ञ० ३।२५८ विष्णु० ५२।२

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥१०४॥

गुरुस्त्रीगामी अपने पाप को बतलाकर तपी हुई लोहे की शय्या पर सोवे, और जलती हुई लोहे की प्रतिमा को गले लगाकर मृत्यु से शुद्ध होता है * ॥१०३॥ अथवा आप अपना लिंग और अण्डकोश काटकर और अञ्जलि में रखकर शरीर के गिरने तक दक्षिण पश्चिम कोण को चला जाए ॥ १०४ ॥

खट्वाङ्गी चीरवासी वा श्मश्रुलो विजने वने ।
प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥ १०५ ॥
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः ।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥ १०६ ॥

अथवा खाट का पाया हाथ में लिये चीर पहने दाढ़ी मूंछ धारे एकाग्रमन हो निर्जन वन में एकवर्ष कृच्छ्र प्राजापत्य करे † ॥ १०५ ॥ अथवा गुरु स्त्री गमन (पाप) के दूर करने के लिये इन्द्रियों को रोक कर तीन महीने हविष्य वा यवागू (जौ

---

*१०३-१०६ वासि०२०।१३-१४ गौत०२३।८-१२ आप० १।२५।१-२, १०; २८।१५-१८ याज्ञ० ३।२५९-२६० विष्णु० ३४।२; ५३।१ यहां गुरु का अर्थ्द्वा मेधा० आचार्य और पिता दोनों लेता है, कुल्लू० नारा० राघ० निरा पिता लेते हैं † मेधा० कुल्लू० राघ० के अनुसार यह प्रायश्चित्त गुरु स्त्री को भ्रम से अपनी स्त्री समझकर गमन करने में है, नारा० के अनुसार अपने वर्ण से छोटे वर्ण की गुरुस्त्री के विषय में है । प्राजापत्य कृच्छ्र देखो आगे २११

के दरिद्रिये) के भोजन से चान्द्रायण व्रत करे * ॥ १०६ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः ॥ १०७ ॥
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नोमासं यवान् पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ १०८ ॥

इन व्रतों से महापातकी अपने पाप के दूर करें, † और उपपातकी इसी प्रकार इन (अगले) नाना प्रकार के व्रतों से (पाप को दूर करें) ॥ १०७ ॥ गो हत्या करने वाला उपपातकी (तीन महीने प्रायश्चित्त करे) बाल सारे (सिर, दाढ़ी मूंछ) मुंडाए हुए, उस चमड़े (मारी गौ के चमड़े) से ढका हुआ गोस्थान में रह, एक महीना निरे जौ (पतले करके) पिये ‡ ॥ १०८ ॥

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौमासौ नियतेन्द्रियः ॥१०९॥
दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजःपिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥११०॥

दो महीने संयमी बन कर गोमूत्र से स्नान करे, (भोजन के) चौथे वेळे खार और लवण से बिना परिमित भोजन करे॥१०९॥

---

* मेधा० राघ० के अनुसार यह प्रायश्चित्त गुरुवत् माने गए मामा चाचा आदि की स्त्री के गमन में है। कुल्लू० के अनुसार अपतिव्रता वा असवर्णा गुरुस्त्री के गमन में है। चान्द्रायण देखो आगे २१६। † नारा० यहां महापातकी से तात्पर्य उन से लेता है जो पूर्व ५५ आदि में महा पातकियों के तुल्य कहे हैं ‡ १०८-११६ गौत २२।१८ आप १।२६।१ याज्ञ ३।२६३-२६४ विष्णु ५०।१६-२४।

दिन को उन गौओं के पीछे जाए, खड़ा हुआ ऊपर उठी गोधूलि को पिये, (गौओं के शरीर पर हाथ फेरने, वा हाथ से खुजाने आदि की) सेवा करके और नमस्कार करके रात को वीरासनसे रहे *

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथासीनो नियतोवीतमत्सरः ॥ १११ ॥
आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥११२॥
उष्णेवर्षतिशीते वा मारुते वाति वाभृशम् ।
नकुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥१३॥

गौएं ठहरें, तो उनके साथ ठहरें, चलें, तो उनके साथ चलें, बैठें, तो बैठे, शुद्ध रहे, और (गौओं पर) क्रोध न करे ॥ १११ ॥ रोगिणी, वा चोर बाघ आदि भयों से पीड़ित हुई, गिरी हुई, वा कीचड़ लगी को सारे उपायों से छुड़ाए ॥ ११२ ॥ धूप में, वर्षा में, सर्दी में, वा बहुत वायु चलने में शक्ति अनुसार गौओं की रक्षा किये बिना अपनी रक्षा न करे ॥ ११३ ॥

आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवाखले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥११४॥
अनेनविधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥११५॥

---

* वीरासन से रहे = दीवार शय्या आदि के सहारे बिना ठहरे (रखवाली करे) (कुल्लू०)

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥११६॥
एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ।
अवकीर्णिवर्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा॥११७॥

अपने वा दूसरों के घरमें,खेत में,वा खल्यान में भक्षण करती हुई किसी को न बतलाए, और दूध पीते हुए बछड़े को न बतलाए ॥११४॥इस विधि से जो गो हत्यारा गौओं की सेवा करता (हुआ व्रत करता) है, वह गोहत्या से किये पाप को तीन महीने में दूर करता है ॥ ११५ ॥ भली भांति व्रत पूरा करके दस गौएं और एक बैल, न हो, तो अपना सर्वस्व, वेदज्ञ ब्राह्मणों को देवे* ॥ ११६ ॥ अवकीर्णी के सिवाय दूसरे उपपातकी भी अपनी शुद्धि के लिये यही व्रत अथवा चान्द्रयण करें ॥११७॥

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥ ११८ ॥
हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाऽऽहुतीः ॥११९॥
कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ।
अतिक्रामं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ १२० ॥
मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ।
चतुरोव्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥१२१॥

* याज्ञ ३।२६५ । ११७-१२२ वासि २३।१४ गौत० २५ । १-४ आप १।२६।८ बौधा०२।१।२०-३५ याज्ञ ३ । २८० विष्णु २८ । ४८-५०

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ १२२ ॥
तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुध्यति ॥१२३॥

पर अवकीर्णी रातको चौराहे में पाकयज्ञों की विधि * से, काने गधे से निर्ऋति का यज्ञ करे ॥ ११८ ॥ यथाविधि (निर्ऋति के लिये) अग्नि में होम करके, अन्त में 'समा' इस ऋचा† से, वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि के लिये घी से आहुतियें दे ॥ ११९ ॥ ब्रह्मचारी द्विज का अपनी इच्छा से वीर्य स्खलन व्रत का लोप है, यह वेदवादी धर्मात्मा कहते हैं ॥१२०॥ ब्रह्मचारी अवकीर्णी होजाए, तो उसका ब्राह्मतेज वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि इन चारों को प्राप्त होता है (इसलिये इनको आहुतियें देनी कही हैं) ॥१२१॥ इस पाप के प्राप्त होने पर (निर्ऋतियाग करके) गधे का चमड़ा पहन कर अपना कर्म बतलाता हुआ सात घरों से भिक्षा मांगे ॥ १२२ ॥ उनसे पाई भिक्षा से एक काल भोजन करता हुआ, और (दिन में) तीनवार स्नान करता हुआ वरसमें जाकर शुद्ध होता है ॥ १२३ ॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥१२४॥
संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥१२५॥

* पशु कल्प, जैसा कि आश्व० गृ० (१।११) आदि में कहा है (नारा०) † यह ऋचा तैत्ति० आर० २।१८।४ में है ।

जाति भ्रंश करने वाला कोई कर्म अपनी इच्छा से करे, तो सान्तपन कृच्छ्र करे, विना इच्छा के करे, तो प्राजापत्य करे * ॥ १२४ ॥ संकर करने और अपात्र बनाने वाले कर्मों में शुद्धि के लिये महीना भर चान्द्रायण करे मलीन करने वालों में तीन दिन गर्म यवागू पिये † ॥ १२५ ॥

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ १२६ ॥
अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्याच्छुध्यर्थमात्मनः ॥१२७॥

ब्रह्महत्या का चौथा भाग (=तीन बरस) क्षत्रिय के मारने में (प्रायश्चित्त) कहा है, सदाचारी वैश्य (के मारने) में आठवां भाग (डेढ़ वर्ष) और शूद्र में सोलहवां भाग (९ महीने) जानो † ॥१२६॥ विना इच्छा के क्षत्रिय को मारकर ब्राह्मण अपनी शुद्धि के लिये एक बैल समेत एक सहस्र गौएं दान करे ‡ ॥ १२७ ॥

---

* जाति भ्रंश करने वाले कर्म देखो पूर्व ६७ सान्तपन कृच्छ्र देखो आगे २१२ † संकर, अपात्र और मलिन बनाने वाले कर्म देखो पूर्व ६८-७०। यवागू=जौ का पानी, देखो बौधा ३। ६ † १२६-१३० वासि० २०। ३१-३३ गौत० २२। १४-१६ आप० १।२४।१-४ बौधा० १।१९।१-२; २।८-१० याज्ञ० ३।२६६-२६७ विष्णु० ५०।१२-१४ पूर्व० (६६ में) क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का मारना उपपातक कहा है, उपपातकी को तीन मास का गोहत्या वाला प्रायश्चित्त कह आए हैं, इसलिये यह भारी प्रायश्चित्त सदाचारी क्षत्रिय वैश्य को इच्छा से मारने में है ‡ मेधा० गोवि० कुल्लू० के अनुसार 'शुध्यर्थ मात्मनः' करदिया है, जो छपे पुस्तकों में 'सुचरित व्रतः' है।

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ।
वसन्दूरतरे ग्रामाद् वृक्षमूलनिकेतनः ॥ १२८ ॥
एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥१२९॥
एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासाञ्छूद्रहा चरेत् ।
वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥१३०॥

अथवा संयमी जटाधारी होकर ग्राम से बहुत दूर वृक्षों के नीचे रहता हुआ तीन बरस ब्रह्महत्या करने वाले के व्रत को करे * ॥ १२८ ॥ यही प्रायश्चित्त ब्राह्मण सदाचारी वैश्य को मारकर करे, वा एक सौ गौएं देवे † ॥ १२९ ॥ यही सारा व्रत छः महीने, शूद्र के मारने वाला करे, अथवा (अपनी शुद्धि के लिये ‡) एक बैल सहित दस श्वेत गौएं ब्राह्मण को देवे ॥ १३० ॥

मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च ।
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्या व्रतंचरेत् ॥ १३१ ॥
पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनोव्रजेत् ।
उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥१३२॥

* १२६ में तीन वर्ष का व्रत कहा ही था, फिर यहां कहने का यह तात्पर्य है, कि ब्रह्महत्या के और चिन्ह 'मुरदे की खोपरी का झंडा आदि' न धारे। निरा ग्राम से दूर वृक्षों के नीचे रहे (गोवि० कुल्लू० नारा०) † १२९-१३० इन दोनों में कहे दो २ प्रायश्चित्त विना इच्छा के वैश्य और शूद्र के मारने में है। इच्छा से मारने में पूर्व १२७ में है।

अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥ १३३ ॥
घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ ।
शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायणम् ॥१३४॥
हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥१३५॥

बिल्ला, नेउला, चाष, मेंडक, कुत्ता, गोह, उल्लू, कौआ, इनको मारकर शूद्रहत्या का व्रत करे * ॥ १३१ ॥ अथवा तीन दिन निरा दूध पिये, वा चार कोस चले, वा नदी में स्नान करे, वा जल देवता वाला सूक्त जपे † ॥ १३२ ॥ सर्प को मारकर ब्राह्मण तेज़ अग्रवाले लोहे का दण्ड दान करे, नपुंसक (के मारने) में पलाल का एक भार और एक मासा सिक्का दान करे ‡ ॥ १३३ ॥ सूअर में घी का घड़ा, तित्तिर में एक द्रोण तिल, तोते में दो वर्ष का बछड़ा, और कूंज में तीन वर्ष का (बछड़ा दान करे) § ॥ १३४ ॥ हंस, बलाका, बगले, मोर,

---

* वासि० २१।२४ गौत० २८।१९ आप० १।२५।१३ याज्ञ० ३।२७० विष्णु० ५०।३०-३२ यहां शूद्र हत्या के व्रत से गोवधव्रत चान्द्रायण अभिप्रेत है, न कि १२७ में कहा, वह भी बार २ हत्या करने में है। क्योंकि यह छोटी वस्तुएं हैं (गोवि० कुल्लू० नन्द०) † यह अज्ञान से मारने में प्रायश्चित्त है, इनमें से भी पूर्व २ न होसके, तो परला २ कराए (गोवि० कुल्लू० नारा० राघ०) जल देवता वाला सूक्त ऋग्वेद १०।९ ‡ गौत० २२।२३,२५ याज्ञ० ३।२७३ विष्णु० ५०।३४-३५ § गौत० २२।२४ याज्ञ० ३।२७१, २७३-२७४ विष्णु० ५०।३६-३९ यहां घड़ा=२०० पल (नारा०) द्रोण=चार आढक (मेधा०) १२८ पल (नारा०)

बानर, बाज, और भास को मारकर ब्राह्मण को गौ देवे*॥१३५॥

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम् ।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥ १३६ ॥
क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥१३७॥
जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये ।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः ॥१३८॥

घोड़े को मार कर वस्त्र देवे, हाथी को मार कर पांच नीले बैल, और बकरे मेंढे को मारकर बैल और गधे को मार कर एक वर्ष का बछड़ा देवे † ॥ १३६ ॥ हिंस्र पशुओं को मार कर दूधवाली धेनु देवे, अहिंस्रों को मार कर बड़ी बछड़ी, और ऊंट को मारकर रत्ती भर (देवे) ‡ ॥१३७॥ चारों भी वर्णों की चञ्चल स्त्रियों को मार कर हत्या की शुद्धि के लिये (ब्राह्मणादिक्रम से) ज़ीन, धनुष, बकरी, भेड़ देवे ‡ ॥१३८॥

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ॥ १३९ ॥
अस्थिमतां तु सत्वानां सहस्रस्य प्रमापणे ।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१४०॥

* याज्ञ० ३।२७२ विष्णु० ५०।३३ † याज्ञ० ३।२७१, २७४ विष्णु० ५०। २५-२८ ‡ याज्ञ० ३। २७२-२७३ विष्णु० ५०।२९। ४०-४१ यहां रत्ती भर सोना अभिप्रेत है (मेधा० गोवि० कुल्लू० नारा० नन्द० राघ०) ‡ गौत० २२।२६ याज्ञ० ३।२६८

किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥१४१॥
फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥१४२॥
अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥१४३॥
कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥ १४४ ॥

दान से सर्पादि की हत्या की शुद्धि करने में असमर्थ हो, तो पाप के दूर करने के लिये द्विज (हरएक पाप के लिये) एक २ कृच्छ्र करे * ॥ १३९ ॥ हड्डी वाले (क्षुद्र) जीवों के हज़ार के मारने में, और विना हड्डी वालों का गड्डा भर मारने में शूद्र हत्या का व्रत करे † ॥ १४० ॥ हड्डी वालों के (एक २ के) वध में कुछ ही (कोई एक पण ही) ब्राह्मण को देवे, और विन हड्डी वालों (में से एक २) की हिंसा में प्राणायाम से शुद्ध होता है ‡ ॥ १४१ ॥ फल देने वाले वृक्षों, झाड़ियों, (खरबूजे

* वासि० २१।२६ याज्ञ० ३।२७४

† वासि० २१ । २५ गौत० २२ । २०-२१ आप० १।२६।२ याज्ञ० ३।२६९ विष्णु ५० ४६ हड्डी वाले क्षुद्र जन्तु छिपकिली आदि गोवि० कुल्लू० नारा०) ‡ गौत० २२।२२ याज्ञ० ३ । २७५ विष्णु० ५० । ४७ मेधा० गोवि० कुल्लू० के अनुसार यह प्रायश्चित्त एक २ के मारने में, नारा० के अनुसार पिछले श्लोक में कही संख्या से थोड़ों के मारने में है । कुछ ही=एक पण (नारा०) आठ मुट्ठी दाने (नन्द०)

आदि की) वल्लों, (गिलो आदि) बेलों, और फूले हुए पोदों के काटने में सौ ऋचा जपे * ॥ १४२ ॥ खाने योग्य अन्न में उत्पन्न होने वाले, रसों (गुड़ आदि) में उत्पन्न होने वाले, और फल फूल में उत्पन्न होने वाले जीवों के वध में घी पीना पाप का शोधक है † ॥ १४३ ॥ जोती भूमि में उत्पन्न हुई (धान आदि) और अपने आप वन में उत्पन्न हुई (नीवार आदि) ओषधियों के व्यर्थ काटने में एक दिन दुग्धाहारी हुआ गौ के पीछे जाए ‡ ॥ १४४ ॥

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥ १४५ ॥
अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥१४६॥
आपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा ।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रितं पयः ॥ १४७ ॥
स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वाऽपः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ।१४८।

इन व्रतों से जाने और बिन जाने की हिंसा से उत्पन्न हुआ पाप दूर करना चाहिये, अब अभक्ष्य के भक्षण में प्रायश्चित्त सुनो

* याज्ञ० ३ । २७६ विष्णु० ५० । ४८ पूर्व० ६५ में रस वाले वृक्षों का काटना उपपातक कहा है, उसका प्रायश्चित्त चान्द्रायण होता है, यह छोटासा प्रायश्चित्त बिना जाने एक बार काटने में हैं (कुल्लू०) सौ ऋचा=गायत्री आदि (कुल्लू०) गायत्री (नारा०) † याज्ञ० ३ । २७५ विष्णु० ५० । ४९ रस ॥ गुड़ मट्ठा आदि (मेधा० गोवि० कुल्लू०) ‡ याज्ञ० ३।१४४ विष्णु० ५०,५०

अज्ञान से मदिरा पीकर संस्कार (उपनयन) से ही शुद्ध होजाता है, जानकर पिये, तो भी प्राणान्तिक नहीं बतलाना चाहिये यह मर्यादा है * ॥ १४६ ॥ सुरा के भांडे में वा मद्य के भांडे में स्थित जल को पीकर पांच दिन शंखपुष्पी (लेहली) डालकर उबाले हुए दूध को पिये † ॥ १४७ ॥ मदिरा को छूकर वा दान देकर वा यथा विधि दान लेकर, वा शूद्र का जूठा पानी पीकर तीन दिन कुशा से काढा हुआ पानी पिये ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः ।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥१४९॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मुत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥१५०॥
वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या व्रतानि च ।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥१५१॥

सोम यज्ञ करचुका हुआ ब्राह्मण तो सुरा पिये हुए के (मुख के) गन्ध को भी सूंघले, तो जल में तीन वार प्राणायाम करके घी पीकर शुद्ध होता है ‡ ॥१४९॥ अज्ञान से विष्ठा मूत्र वा सुरा

* वासि० २०।१९ गौत० २३।२ आप० १।२५।१० बौधा० २।१।१९ याज्ञ० ३।२५५ विष्णु० ५१ । १, ४ पूर्व० ९३-९४ द्विजों को सुरापान महापातक है, और सुरा के तीन भेद बतलाए हैं, उनसे भिन्न मद्य के विषय में यह प्रायश्चित्त है । यह उपनयन भी तप्त कृच्छ्र कराकर होना चाहिये, जैसाकि गौत० २१ । ७ में कहा है । जानकर पीने में ९२ में कहा प्रायश्चित्त वा दूसरी स्मृतियों में कहे प्रायश्चित्त कराए
† वासि० २०।२१ बौधा० २।१।२२ विष्णु० ५१।२३-२४ ‡ गौत० २३।६ विष्णु० ५१।२५

से स्पर्श कीहुई वस्तु को खाकर तीन द्विज वर्ण फिर उपनयन के योग्य होते हैं* ॥१५०॥ फिर उपनयन करने में द्विजों के (सिर) मूंडना, तडागी, दण्डधारण, भिक्षा मांगना और व्रत नहीं होते हैं†

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ।
जग्ध्वामांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ १५२ ॥
शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वामेध्यानपिद्विजः ।
तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥ १५३ ॥

जिनका नहीं खाना चाहिये, उनका अन्न खाकर, वा स्त्री और शूद्र का जूठा खाकर, वा अभक्ष्य मांस खाकर सात दिन (पाना बनाकर) जौ पिये ‡ ॥ १५२ ॥ (देर पड़ा रहने से) खट्टे हुए (अन्न) और काढ़े, चाहे मेध्य भी हों,§ उनको पीकर द्विज तब तक अशुद्ध होता है, जब तक वह नीचे नहीं जाता ॥१५३॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१५४॥
शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च ।
अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ १५५ ॥

गाओं का सूअर, गधा, ऊंट, गीदड़, वानर और कौए के

---

* वासि० २०।२० गौत० २३ । ३ याज्ञ० ३।२३५ विष्णु० ५१ । २

† वासि० २०।१८ बौधा० २।१। २० विष्णु० ५१।५ व्रत अग्नि की सेवा और मद्य मांसादि का त्याग गोवि० कुल्लू० राघ०) वेदव्रत (नारा०)

‡ वासि० १४।३३ विष्णु० ५ । ०, ५४, ५६ पूर्व० ४।२२२ में कहे प्रायश्चित्त के साथ इसका विकल्प है § राघ० नन्द० 'अमेध्यानपि' पद च्छेद करके, अमेध्य = लहसन आदिक, अर्थ करते हैं ।

मूत्र वा विष्ठा को खाकर द्विज चान्द्रायण करे ॥ १५४ ॥ सूखे मांस, पृथिवी में उत्पन्न होने वाले कुकरमुत्ते (छत्रियें), अज्ञात, (स्वभाव वाले का मांस) और हत्या घर से लाया मांस, इनको खाकर यही व्रत (चान्द्रायण) करे * ॥ १५५ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे।
नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ १५६ ॥
मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः।
सत्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदकेवसेत् ॥ १५७ ॥
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसंकथञ्चन।
सकृत्वाप्राकृतंकृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥ १५८ ॥
विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेद् ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ १५९ ॥

कच्चा मांस खाने वाले, (गाओं के) सूअर, ऊंट, (गाओं के) कुक्कड़, मनुष्य (का मांस) कौए और गधे के भक्षण में तप्त कृच्छ्र शुद्ध करने वाला है[†]॥१५६॥जो द्विज (ब्रह्मचारी) समावर्तन हुए विना मासिक (श्राद्ध) का अन्न खावे, वह तीन दिन उपवास करे,

---

* विष्णु० ५१।२७, ३४ राघ० 'भौमानि'=भूमि में होने वाले (कुकरमुत्ते) कवकानि=कुकरमुत्ते (वृक्षों पर होने वाले) लेता है। पर मेधा० 'भौमानि' को विशेषण मानकर यह कहता है, कि वृक्ष की खोड़ों में होने वालों का निषेध नहीं। † वासि० २३।३० गौत० २३।४-५ विष्णु० ५१।३-४ पूर्व० ५।१९-२१ में भी प्रायश्चित्त कहा है, वह बार २ करने के विषय में है, यह एकही बार करने के विषय में है (कुल्लू० राघ०) तप्त कृच्छ्र देखो आगे २१५

एक दिन जल में वास करे* ॥१५७॥ जो ब्रह्मचारी शहद वा मांस किसी तरह खाले, वह प्राजापत्य कृच्छ्र करके शेषव्रत को समाप्त करदे † ॥ १५८ ॥ बिल्ली, कौए, चूहे, कुत्ते और नेउळे का झूठा तथा बाल वा कीड़े से दूषित खाकर ब्राह्मी सौंचल का काढ़ा पिये‡

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ।
अज्ञानभुक्तंतूत्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥१६०॥
एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः ।
स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतांविधिः ॥ १६१ ॥
धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुध्यति ॥ १६२ ॥

जो अपनी शुद्धि चाहता है, उसे अभोज्य अन्न नहीं खाना चाहिये, जो भूल से खालिया हो, तो उगल दे, वा प्रायश्चित्तों से जल्दी शोधन करे § ॥ १६० ॥ यह अभक्ष्य भक्षण के व्रतों

---

* विष्णु० ५१ । ४३-४४ टीकाकार यहां मासिक से मासिक श्राद्ध लेते हैं, वह भी सपिण्डी करण से पूर्व एकोद्दिष्ट श्राद्ध, क्योंकि पूर्व० २।१८९ में श्राद्ध भोजन की अनुज्ञा है । मेधा० के अनुसार जलवास चौथे दिन करे, कुल्लू० राघ० के अनुसार तीन दिन में से पहले दिन करे †वासि०२३।१२ याज्ञ०३।२८२ विष्णु० ५१।४५ 'ब्रह्मचारी' के स्थान मेधा० गोवि० नारा० नन्द० 'व्रतचारी' पढ़ते हैं । अर्थ व्रतचारी का भी ब्रह्मचारी ही लेते हैं, किन्तु नारा० ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, विधवा आदि लेता है ‡ वासि० २३।११ विष्णु० ५१ । ४६ बाल वा कीड़े से दूषित=बाल वा कीड़े के संसर्ग से दुष्ट (गोवि० कुल्लू० राघ०) § गौत० २३ । २६ शोधनैः= प्रायश्चित्तों से (मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ०) शोधक वस्तुओं से (नारा० नन्द०)

की नाना विधियें कही हैं, अब (महापातक से भिन्न) चोरी के दोष दूर करने वाले व्रतों की विधि सुनो ॥ १६१ ॥ ब्राह्मण अपने जाति वालों के घर से ही इच्छा पूर्वक धान, अन्न, धन की चोरी करके वर्ष भर कृच्छ्र से शुद्ध होता है * ॥ १६२ ॥

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥१६३॥
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥१६४॥
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥१६५॥

मनुष्य, स्त्री, क्षेत्र और घर तथा कुंएं और बावड़ी के जल के सारा हर लेने में प्रायश्चित्त चान्द्रायण बतलाया है† ॥१६३॥ थोड़े मूल्य वाले द्रव्यों की दूसरे के घर से चोरी करके, वह (चुराया धन स्वामी को) चुकाकर अपनी शुद्धि के लिये सांतपन कृच्छ्र करे‡ ॥१६४॥ भक्ष्य भोज्य, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलों के चुराने में पञ्चगव्य शुद्धि करने वाला है§ १६५

---

*विष्णु० ५२।५ यह हद्द का प्रायश्चित्त बतला दिया है, देशकाल द्रव्य के परिमाण आदि की अपेक्षा से घट होसक्ता है (मेधा० गोवि० कुल्लू० नारा० नन्द०) † विष्णु० ५२ । ६ मनुष्य, स्त्री=दास, दासी (मेधा०) 'जलानां' के स्थान ' तडागानां=तालाबों के ' पाठान्तर है (राघ०) ‡ विष्णु० ५२।७ थोड़े मूल्य वाले=मट्टी के वर्तन बटलोई आदि, लकड़ी के द्रोण आढक आदि, लोहे के कुदाल आदि (मेधा०) रांगा सिक्का आदि(गोवि०कुल्लू०राघ०) पलाल आदि(नारा०)§१६५-१६६विष्णु०५२।८-९यहऔर अगला नियम अज्ञानसे करने मेंहैं(नारा०)

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥१६६॥
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता॥१६७॥
कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥१६८॥

घास, काठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा और मांस के चुराने में तीन दिन उपवास हो ॥ १६६ ॥ मणि, मोती, मूंगे, तांबा, चान्दी, लोहा, कांसी और पत्थर के चुराने में बारह दिन (चावलों के) कण खाए ॥ १६७ ॥ सूती, रेशमी, ऊनी कपड़ों के, दो खुर वाले (गौ आदि) एक खुर वाले (घोड़े आदि) के, पक्षियों, गन्धों (चन्दन आदि), ओषधियों के और रस्सी के चुराने में तीन दिन दूध पिये * ॥ १६८ ॥

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ १६९ ॥
गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च॥१७०॥

इन व्रतों से द्विज चोरी के पाप को दूर करे, और गमन न करने योग्य स्त्री से गमन करना इन व्रतों से दूर करे ॥१६९॥ सगी बहिन, मित्र वा पुत्र की स्त्री, कंवारी और चण्डाली में

* विष्णु० ५२।१० रस्सी कूप की (मेधा०)

वीर्य सेचन करके गुरु स्त्री गमन का प्रायश्चित्त करे * ॥१७०॥

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च ।
मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१७१॥
एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् ।
ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥ १७२ ॥

पिता की बहिन, तथा माता की बहिन की कन्या और माता के सगे† भाई की कन्या जो बहिन के तुल्य हैं, इनका गमन करके चान्द्रायण करे ॥१७१॥ इन तीनों को बुद्धिमान् पत्नी के अर्थ न विवाहे, क्योंकि यह (सपिण्ड) सम्बन्ध वाली होने से विवाह के योग्य नहीं इनको विवाहता हुआ नीचे गिरता है ‡ ॥१७२॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥१७३॥

---

* वासि० २० । १५-१६ गौत० २३ १२-१३, ३२ बौधा० २।१।१३ याज्ञ० ३ । २३३ विष्णु० ३४।२ ; ३६।७ ; ५३।१ और देखो पूर्व० ५९ । मेधा० गोवि० कुल्लू० राघ० के अनुसार जानकर बार २ ऐसा पाप करे तो मरण प्रायश्चित्त, इतरथा १०४ में कहा प्रायश्चित्त करे, नारा० के अनुसार १२ वर्ष का करे ।

† सब टीकाकारों के अनुसार 'भ्रातुराप्तस्य' पाठ चाहिये जो छपे पुस्तकों में 'भ्रातुस्तनयां' है । नन्द० के अनुसार 'भ्रातुराप्ताम' है ‡ पूर्व० ३।५ में माता की सपिण्डा को विवाहने का निषेध कहा ही है, किन्तु दाक्षिणात्यों में मामा की कन्या के विवाहने का आचार देखकर निषेध की दृढ़ता के लिये फिर कहा है (कुल्लू०) नीचे गिरता है=नरक में पड़ता है (कुल्लू०) जाति से गिर जाता है (नारा०)

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाःस्नानमाचरेत्॥१७४॥
चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति॥१७५॥
विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥१७६॥

मनुष्य से भिन्न जाति की नारियों (भेड़ आदि) में, रजस्वला (स्त्री में), योनि से भिन्न स्थान में, और जल में वीर्य सेचन करके कृच्छ्र सांतपन करे * ॥१७३॥ द्विज किसी पुरुष से, वा अपनी स्त्री से छकड़े में, पानी में, वा दिन में मैथुन करे, तो वस्त्रों समेत स्नान करे † ॥१७४॥ ब्राह्मण चण्डाल वा अन्त्यजों की स्त्रियों का गमन करके, उनका भोजन खाकर वा दान लेकर, यह सब भूल से करे तो पतित होता है, ज्ञान से तुल्यता को प्राप्त होता है ‡ ॥१७५॥ व्यभिचारिणी स्त्री को पति एक घर में रोके और जो व्रत पुरुष को परस्त्री गमन में है, वह इससे करवाए§१७६

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपमन्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥१७७॥

---

* गौत० २२ । ३६; २३।३४ याज्ञ० ३ । २८८ विष्णु० ५३ । ४, ७
† याज्ञ० ३।२९१ विष्णु० ५३।४ बिना इच्छा के करने में यह प्रायश्चित्त है (नारा०) ‡ वासि० २३ । ४१ बौधा० २।४।१३-१४ विष्णु० ५३।५-६ अन्त्यज=म्लेच्छ भील आदि (मेधा० गो वि० कुल्लू०) सूत आदि (नारा०) यवन आदि (राघ०) § वासि० २१ । ८ । १२-१३ विष्णु०५३।८पर स्त्री गमन को ५९ में उपपातक कहा है,और ११७ में उसका प्रायश्चित्त चान्द्रायण कहा है ।

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः ।
तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ १७८ ॥

वह सजातीय पुरुष से प्रार्थना कीहुई यदि फिर दूषित हो, तो कृच्छ्र चान्द्रायण इसका पवित्र करने वाला कहा है * ॥ १७७ ॥ द्विज एकरात वृषली के सेवन से जो पाप करता है, उसको भीख मांगकर खाता हुआ, नित्य (गायत्री का) जप करता हुआ तीन वर्षों में दूर करता है † ॥ १७८ ॥

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः ॥१७९॥
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥१८०॥

यह स्वयं पाप करने वाले चारों (हत्यारे, चोर, अभक्ष्य भक्षक और अगम्यागामियों) की भी शुद्धि कही है, अब पतितों के साथ संसर्ग वालों के प्रायश्चित्त सुनो ॥ १७९ ॥ पतित के साथ बरस भर के लगातार संसर्ग से पतित होजाता है, पर यज्ञ कराने, पढ़ाने वा रिश्तेदारी से, न कि साथ चलने बैठने वा खाने से ‡

* छपे पुस्तकों में 'उपयन्त्रिता' पाठ है। टीकाओं के अनुसार 'उपमन्त्रिता' चाहिये, सो कर दिया है † आप० १।२७।११ बौधा० २।२।११ विष्णु० ५३।९ वृषली=चण्डाली (मेधा० कुल्लू० राघ०) शूद्रा (मेधा० गोवि० नारा०)

‡ वासि० १।२२ गौत० २१।३ बौधा० २।२।३५ याज्ञ० ३।२६१ विष्णु ३५।३-५ गोवि० नारा० यज्ञ कराने आदि से दोनों अभिप्राय लेते हैं, उसको यज्ञ करवाना वा उससे यज्ञ करवाना, इसी प्रकार उससे पढ़ना वा उसको पढ़ाना, और यह भी कि साथ चलने बैठने खाने से चार बरस में पतित होता है।

योयेन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ १८१ ॥
पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ १८२ ॥

जो मनुष्य इनमें से जिस पतित के साथ संसर्ग को प्राप्त हो, वह उसके संसर्ग (दोष) की शुद्धि के लिये उसी का प्रायश्चित्त करे * ॥ १८१ ॥ (पतित के) सपिण्ड और बान्धव (समानोदक) निन्दित दिन में सायं समय ग्राम से बाहर निकलकर ज्ञाति, ऋत्विज् गुरुओं के सामने पतित की उदक क्रिया (जलाञ्जलि) करें (मानों वह मर गया है) † ॥ १८२ ॥

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा ।
अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥ १८३ ॥
निवर्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥ १८४ ॥
ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यद्धनम् ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ १८५ ॥

और दासी जल भरे घड़े को प्रेतवत् ‡ पाओं से उलटे, और बान्धवों के साथ एक दिन रात आशौच करें ॥ १८३ ॥

* विष्णु० ५४.१ † १८२-१८५ वासि० १५।१२-१६ गौत० २०.४-७ बौधा० २।१।३६ याज्ञ० ३।२९५

‡ प्रेतवत्=यह अमुक के लिये है, ऐसा कहती हुई (मेधा०) दक्षिण मुख होकर (गोवि० कुल्लू० राघ० नारा० नन्द०)

उस पतित से संभाषण, इकट्ठे बैठना, जायदाद का देना, और लोक व्यवहार (उत्सवादि में निमन्त्रण आदि) छोड़ देवें ॥ १८४॥ उसका बड़प्पन (आगे से बठना आदि) और बड़े को मिलने योग्य उद्धार हटा दिया जाए, और उसका भाग उससे छोटा जो गुणों में अधिक हो, वह लेवे ॥ १८५ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् ।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये॥१८६॥
स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् ।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥१८७॥
एतमेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥१८८॥

जब प्रायश्चित्त पूरा होजाए, तब उसके साथ किसी पवित्र जलाशय में स्नान करके, जल का भरा एक नया घड़ा (उसी जलाशय में) फेंकदें (मानों पानी सांझा करदें) * ॥ १८६ ॥ उस घड़े को जल में फेंककर अपने भवन में प्रवेश करके पूर्ववत् सारे ज्ञाति कार्यों को करे ॥ १८७ ॥ पतित हुई स्त्रियों के विषय में भी यही विधि बर्तें, पर उनको खान पान और वस्त्र (घर से) देना चाहिये, और वह (अपने) घर के समीप रहें † ॥१८८॥

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥१८९॥

* १८६-१८७ वासि० १५।१७-२१ गौत० २।१०-१४ बौधा० २।१।३६ याज्ञ० ३। २९६ † याज्ञ० ३। २९७

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ।
शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥ १९० ॥

प्रायश्चित्त पूरा न किये पापियों के साथ कोई व्यवहार न करे, पर प्रायश्चित्त कर चुकों को कभी न निन्दे (पूर्ववत् वर्ते)* ॥ १८९ ॥ बालहत्या करने वाले, कृतघ्न (भलाई के बदले बुराई करने वाले) और शरणागत के मारने वालों के साथ न रहे, चाहे वह धर्ममर्यादा से शुद्ध भी होचुके हों ॥ १९० ॥

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि ।
तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥१९१॥
प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥१९२॥

जिन द्विजों को विधि अनुसार सावित्री का उपदेश न हो, उनको तीन कृच्छ्र कराकर यथाविधि उपनयन कराए† ।१९१। जो द्विज (शास्त्र) विरुद्ध आजीविका वाले हैं, वा (उपनीत होकर भी) वेद नहीं पढ़े हैं, वह यदि प्रायश्चित्त करना चाहें, तो उनको भी यही (तीन कृच्छ्र) उपदेश करे ‡ ॥ १९२ ॥

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जपेन तपसैव च ॥१९३॥
जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥१९४॥

---

* १८९-१९०याज्ञ०३।२९९ विष्णु० ५४।३२-३३ वासि० ११।७६-७९ आप० १।१।२३; २।१० † विष्णु० ५४।२६ उपनयन का समय देखो पूर्व० २।३८ ‡ विष्णु० ५४।२७

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ।
प्रणतं प्रतिपृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम्॥१९५॥
सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ।
गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥ १९६ ॥
व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥१९७॥
शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ।
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥ १९८ ॥
श्वशृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च ।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति ॥ १९९ ॥

यदि ब्राह्मण निषिद्ध कर्म से धन कमाते हैं, तो उसके त्याग से, स्वाध्याय से और तप से शुद्ध होते हैं * ॥ १९३ ॥ एकाग्रचित्त हो तीन हजार गायत्री जपकर, महीना भर गोष्ठ में दूध पीकर, दुष्ट प्रतिग्रह से छूटता है † ॥१९४॥ उपवासों से दुर्बल हुए, गोष्ठ से फिर आए, नम्र हुए उसको (ब्राह्मण) पूछें, हे सौम्य ! क्या तू हमारे साथ समता चाहता है (अर्थात फिर दुष्ट प्रतिग्रह नहीं करेगा) ‡ ॥ १९५ ॥ ब्राह्मणों के सामने सत्य कहकर (सत्य कहता हूं, फिर ऐसा नहीं करूंगा, कहकर) गौओं के लिये चारा डाले, गौओं से बनाए तीर्थ § (जहां

* याज्ञ० ३ । २९० विष्णु० ५४ । २७, २८ निषिद्ध कर्म=दुष्ट प्रतिग्रह आदि † मेधा० गायत्री जप में दो मत दिखलाता है, कई कहते हैं, प्रति दिन तीन हजार गायत्री जपे, दूसरे कहते हैं महीने में तीन हजार जपे अर्थात् प्रति दिन १०० गायत्री जपे । ‡ १९५-१९६ याज्ञ० ३ । ३०० § गौओं के पानी पीने के घाट (मेधा०),

गौओं ने चारा खाया है) पर (ब्राह्मण व्यवहार में) उसका स्वीकार करें ॥ १९६ ॥ व्रात्यों को यज्ञ कराके, बेगानों की अन्त्येष्टि करके, अभिचार करके और अहीन यज्ञ करके तीन कृच्छ्रों से शुद्ध होता है * ॥१९७॥ शरणागत को त्याग कर, वेद को बिगाड़ कर, द्विज बरस भर निरे जौ खाता हुआ उस पाप को दूर करता है † ॥ १९८ ॥ कुत्ते, गीदड़, गधे, ग्रामीण कच्चा मांस खाने वाले (बिल्ली आदि), मनुष्य, घोड़े, ऊंट, और सूअर से काटा हुआ पुरुष प्राणायाम से शुद्ध होता है ‡ ॥१९९॥

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजपएव वा ।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम् २००

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ।
स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुध्यति २०१

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च ।
सचैलोबहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ॥२०२॥

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥२०३॥

---

* आप० १।२६।७ याज्ञ०३।२८९ विष्णु० ५४।२५ व्रात्य देखो पूर्व० १०।२० अभिचार=किसी के मारने के लिये यज्ञ-श्येन आदि † याज्ञ० ३।२८९ वेद को बिगाड़ कर=न पढ़ाने योग्य को पढ़ाकर (मेधा० गोवि० कुल्लू० नन्द०) मिथ्या अर्थ करके (नारा०) अनभ्यास से भूलकर (राघ०) ‡ वासि० २३।३१ गौत० २३।७ याज्ञ० ३।२७७ विष्णु० ५४।१२ नारा० 'अग्रास्यैः' पद च्छेद कर 'अग्रास्यैः क्रव्याद्भिः=जंगली दरिन्दे=भेड़िया आदि' अर्थ लेता है।

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ।
स्नात्वाऽनश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥२०४॥

महीना भर छटे समय (तीसरे दिन रात को) भोजन, प्रति दिन संहिता का स्वाध्याय और शाकल होम यह पंक्ति-दूषकों का शोधक है * ॥ २०० ॥ ऊंट के यान, वा गधे के यान पर चढ़कर, वा इच्छा से नंगा हुआ स्नान करके प्राणायाम से शुद्ध होता है † ॥ २०१ ॥ पीड़ित होकर मल मूत्रादि का त्याग जल (-प्रयोग) के विना, वा जलों के अन्दर करे, तो वस्त्रों समेत (गाओं से) बाहर (नदी आदि में) स्नान कर गौ को स्पर्श करके शुद्ध होता है‡॥२०२॥ वेदविहित नित्य कर्मों के लोप में और स्नातक के व्रतों के लोप में (एक दिन) भोजन न करना प्रायश्चित्त है § ॥ २०३ ॥ ब्राह्मण को 'हुं' कहकर और बड़े को 'तूं' कहकर, स्नान करके बाकी दिन कुछ न खाए, और (उसको) नमस्कार करके प्रसन्न करे ‖ ॥ २०४ ॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे बाबध्य वाससा ।
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥२०५॥

---

* पंक्ति दूषक ३ । १५१ आदि में कहे हैं, शाकल होम देखो यजुर्वे० ८ । १३ नारा० कहता है, जिन पंक्ति-दूषकों का अलग प्रायश्चित्त नहीं कहा, उनका यह प्रायश्चित्त है † याज्ञ० ३।२९१ विष्णु० ५४।२३ मेधा० कुल्लू० कहते हैं, जो ऊंट वा गधे की सीधा पीठ पर (न कि यान पर) चढ़े वह एक से अधिक प्राणायाम करे ‡ विष्णु० ५४।१० § विष्णु० ५४।२९ स्नातक व्रत अध्याय ४ में कहे हैं ‖ याज्ञ० ३। ९२ 'हुं' रोकने के लिये, हुं, ऐसा मत कहे, इत्यादि । 'तूं' विना आदर के एकवचन से बुलाकर 'तूं ऐसा कह कर' इत्यादि ।

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ।
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥ २०६ ॥

(ब्राह्मण को) तिनके से भी ताड़कर, वा गले में कपड़ा बांधकर वा विवाद में जीतकर, प्रणायाम करके प्रसन्न करे * ॥ २०५ ॥ (ब्राह्मण को) मारने की इच्छा से दण्ड उठाकर सौ बरस, और मारकर हजार बरस नरक को प्राप्त होता है † २०६

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति द्विजन्मनः ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥ २०७ ॥
अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥ २०८ ॥
अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये ।
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २०९ ॥
यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ २१० ॥

(ब्राह्मण का) लहू जितने धूलिकणों को लपेटता है, उतने हजार बरस लहू निकालने वाला नरक में रहता है ‡ ॥ २०७ ॥ ब्राणह्म को (मारने की इच्छा से) दण्ड उठाकर कृच्छ्र करे, प्रहार करके अतिकृच्छ्र, लहू उत्पन्न करके कृच्छ्र और अति-

---

* याज्ञ० ३। २९२ देखो पूर्व० ४। १६६ † २०६-२०७ मिलाओ पूर्व० ४।१६५, १६७-१६९ ‡ छपे पुस्तकों में 'संगृह्णाति महीतले' पाठ है। पर टीकाकारों के सब के अनुसार 'संगृह्णातिद्विजन्मनः' चाहिये वैसा कर दिया है।

कृच्छ्र दोनों करे * ॥ २०८ ॥ जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं कहा है, उनके दूर करने के लिये शक्ति और पाप को देखकर प्रायश्चित्त की कल्पना करे † ॥२०९॥ जिन उपायों से मनुष्य पापों को दूर करता है, उन उपायों को तुम्हें बतलाऊंगा, जो देव ऋषि और पितरों ने सेवन किये हैं ॥ २१० ॥

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥२११॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥२१२॥
एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥ २१३ ॥

प्राजापत्य (कृच्छ्रव्रत) करता हुआ द्विज तीन दिन प्रातः काल ही खाए, तीन दिन सायंकाल ही खाए, तीन दिन बिन मांगा खाए और फिर तीन दिन कुछ न खाए ‡ ॥ २११ ॥ गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशा का उबला हुआ पानी, यह सब इकट्ठा करके एक दिन खाए, और एक दिन उपवास करे, यह कृच्छ्र सांतपन कहा है § ॥ २१२ ॥ अतिकृच्छ्र करता

* याज्ञ० ३।२९३ विष्णु० ५४।३०पूर्व० ६७में ब्राह्मण को पीड़ा देना और १२४ में उसका प्रायश्चित्त कहा है। † याज्ञ० ३।२९४ विष्णु० ५४।३४
‡ वासि० २१।२० गौत० २६।२-५ आप० १ । २७ । ७ बौधा० २ । २ । ३८; ४।५।६-७ याज्ञ० ३।३२० विष्णु०४६।१० मेधा० के अनुसार बिन मांगे अपनी स्त्री वा नौकरों से दिया भी अयाचित है § बौधा० ४।५।१३ याज्ञ० ३।३१३ विष्णु० ४६।१९

हुआ तीन २ दिन तीन वार करके पूर्व कहे की तरह एक २ ग्रास खाए, अन्त्य में तीन दिन उपवास करे * ॥ २१३ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।
प्रति त्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥२१४॥
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नामकृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥ २१५ ॥
एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २१६ ॥
एतमेवविधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१७॥

तप्त कृच्छ्र करता हुआ ब्राह्मण तीन २ दिन गर्म किया जल, दूध, घी और वायु पिये और एकवार स्नान करे और संयमी रहे † ॥ २१४ ॥ मन को वश में रखकर, अप्रमत्त हो, बारह दिन कुछ न खाना, पराक कृच्छ्र होता है, जो सारे पापों का मिटाने वाला है‡॥२१५॥तीन समय स्नान करता हुआ कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास घटाता जाए, और शुक्ल में बढ़ाता

---

* वासि० २४।१-२ गौत० २५।१८-१९ बौधा० २।२।४०;४।५।८ याज्ञ० ३।३२० पूर्व कहे की तरह=२११ में कहे की तरह, एक २ ग्रास तीन दिन प्रातः, तीन दिन सायं, तीन दिन बिन मांगा। †वासि० २१।१८ बौधा० २। २। ३७; ४।५।१० याज्ञ० ३।३१८ विष्णु० ४६।११ ‡ बौधा० ४।५।१५ याज्ञ० ३।२२१ विष्णु० ४६।१८ अप्रमत्त हो= व्रत के अंगों में भूल न करता हुआ, (मेधा० नारा०) कृच्छ्र के अंग देखो वासि० २४।५

जाए, यह चान्द्रायण कहा है * ॥ २१६ ॥ यही सारी विधि (=ग्रास का बढ़ाना घटाना और तीन समय स्नान) शुक्लपक्ष से आरम्भ करके यव मध्यम चान्द्रायण करता हुआ करे§॥२१७॥

अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणंचरन् ॥२१८॥
चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः ।
चतुरोऽस्तमितेसूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥२१९॥
यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥१२०॥
एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् ।
सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥ २२१ ॥

* २१६–२२१ वासि० २४।४५–४७; २७।२१ गौत० २७ बौधा० ३।८; ४।५।१७–२१ याज्ञ०३।३२४–३२७ विष्णु० ४७ पूर्णमासी को १५ ग्रास खाकर कृष्ण प्रतिपदा से एक २ घटाता जाए, इस प्रकार चतुर्दशी को एक ग्रास रह जाएगा, फिर अमावस्या को उपवास करके प्रतिपदा से एक २ बढ़ाए, पूर्णमासी को फिर १५ ग्रास खाए। यह पिपीलिकामध्य चांद्रायण है। चंद्र की गति वाला होने से, एक २ कला की तरह, एक २ ग्रास घटने बढ़ने से चान्द्रायण और पिपीलिकामध्य=चींटी की कमर वाला है। जैसे चींटी दोनों ओर मोटी, मध्य में पतली होती है, इस प्रकार इसके दोनों ओर अधिक ग्रास और मध्य में उपवास आता है § शुक्ल प्रतिपदा से एक २ ग्रास बढ़ाता हुआ पूर्णमासी को १५ग्रास खाकर, कृष्णपक्ष में एक २ घटाता जाए। जौ की तरह इसका मध्य मोटा और किनारे पतले होने से 'यवमध्य चान्द्रायण' है।

यतिचान्द्रायणं करने लगा संयमी हुआ, हविष्य भोजन करता हुआ (शुक्ल वा कृष्ण पक्ष से आरम्भ करके) दुपहर के समय आठ २ ग्रास खाए ॥ २१८ ॥ सावधान हुआ प्रातःकाल चार ग्रास खाए, चार सायं काल को खाए, यह शिशु चान्द्रायण कहा है ॥ २१९ ॥ सावधान हुआ जिस किस रीति से हविष्य अन्न के २४० ग्रास जिस किस तरह खाता हुआ चन्द्र की सलोकता को प्राप्त होता है * ॥ २२० ॥ इस व्रत को रुद्र, आदित्य, वसु, मरुत और महर्षियों ने सम्पूर्ण पापों से छूटने के लिये किया है

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम् ।
अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥२२२॥
त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥ २२३ ॥
स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ।
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद् गुरुदेवद्विजार्चकः ॥२२४॥
सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमाहृतः ॥ २२५ ॥
एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः ।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥२२६॥

महाव्याहृतियों से प्रति दिन स्वयं (व्रती) होकर होम करे,

---

* जिस किसी तरह अर्थात् एक २ दिन में इतने २ ग्रास इस नियम के बिना जिस दिन जितने चाहे, खाए। महीने में २४० ग्रास ही खाए, यह नियम रहे (नारा०)

अहिंसा, सत्य, अक्रोध और सरलता का आचरण करे॥२२२॥ तीन बार दिन को और तीन बार रात को वस्त्रों समेत जल में प्रवेश करे, और (व्रत करता हुआ) स्त्री, शूद्र और पतितों के साथ कभी संभाषण न करे * ॥ २२३ ॥ (दिन) खड़ा रहने और (रात) बैठने से लंघाए, ब्रह्मचारी और व्रती † हो, गुरु देवता और ब्राह्मणों का पूजक हो ॥ २२४ ॥ गायत्री का और पावन मन्त्रों ‡ का शक्ति अनुसार नित्य जप करे, सभी व्रतों में प्रायश्चित्त के लिये इस प्रकार श्रद्धा से करे ॥२२५॥ जिन्होंने अपने पाप प्रकट किये हैं, वह द्विज इन व्रतों से शोधनीय हैं, पर जिन्हों ने पाप प्रकट नहीं किये, उनको मन्त्रों से और होमों से शुद्ध करे §

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ।
पापकृन्मुच्यतेपापात्तथा दानेन चापदि ॥ २२७ ॥
यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयंकृत्वाऽनु भाषते ।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २२८ ॥

प्रकट करने से, पश्चात्ताप से, तप से, वेदाध्ययन से, तथा

---

* स्त्रियों से संभाषण का निषेध माता और बड़ी बहिन आदि के सिवाय है, और पत्नी से किसी कार्य के उपयोगी संभाषण में निषेध नहीं (मेधा०) † व्रती=तडागी बांधना आदि, ब्रह्मचारी के के व्रतों से व्रती हो (गोवि० कुल्लू० नारा०) ‡ पावनमन्त्र=अघमर्षण और पावमानी ऋचा आदि देखो विष्णु० ५६ § वासि० २५।३ रहस्य पापों का प्रायश्चित्त पूछा इस तरह जासक्ता है, कि अमुक पाप कोई करे, तो क्या प्रायश्चित्त होना चाहिये (कुल्लू० राघ०) जैसे पापों के प्रकाश में निरी अपनी ही बदनामी नहीं, किन्तु दूसरे की भी बदनामी और हानि है, ऐसे पाप रहस्य होते हैं (नारा०)

आपत्काल में * दान से पाप करने वाला पाप से छूटता है ॥ २२७ ॥ जैसे २ मनुष्य अधर्म करके स्वयं कहता है, तैसे २ केंचुली से सांप की तरह उस पाप से छूटता है ॥ २२८ ॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति ।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाऽधर्मेण मुच्यते ॥ २२९ ॥
कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात् प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ २३० ॥

जैसे २ उसका मन पाप-कर्म की निन्दा करता है, वैसे २ उसका वह शरीर उस पाप से छूटता है † ॥२२९॥ पाप करके पश्चात्ताप करने से उस पाप से छूटता है, फिर ऐसा नहीं करूंगा, (ऐसे दृढ़ संकल्प द्वारा) निवृत्ति से वह पवित्र होजाता है ॥२३०॥

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् ।
मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥२३१॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥२३२॥
यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ २३३ ॥

इस प्रकार परलोक में कर्म के फल का परिणाम मन से सोचकर मन वाणी और शरीर से सदा शुभ कर्म करे ॥२३१॥

---

* आपत्काल में अर्थात् जब प्रायश्चित्ती प्रायश्चित्त करने के वा वेद पाठ करने के असमर्थ हो ।

† शरीर=आत्मा (मेधा० गोवि० कुल्लू० नंद०) सूक्ष्म शरीर (नारा०)

भूल से वा जानकर निन्दित कर्म करके उससे छूटना चाहता हुआ दुबारा न करे ॥ २३२ ॥ (तप कहते हैं) जिस कर्मके करने पर मन हलका न रहे (मन पर बोझ पड़जाए) उसमें उतना तप करे, जितना संन्तोष देने वाला हो ॥ २३३ ॥

तपोमूलमिदंसर्वं दैवमानुषिकं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥२३४॥
ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥२३५॥

सारा सुख जो देवताओं और मनुष्यों का है, वेद के द्रष्टा ऋषि बतलाते हैं, इसका आदि तप, मध्य तप और अन्त तप * ॥ २३४ ॥ ब्राह्मण का तप ज्ञान है, क्षत्रिय का तप रक्षा करना है, वैश्य का तप व्यापार है,और शूद्र का तप सेवा है२३५

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २३६ ॥
औषधान्यगदोविद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥२३७॥
यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥२३८॥

अपने ऊपर वश रखने वाले, फल मूल और वायु के खाने

---

* सुख की तप से उत्पत्ति, तप से स्थिति, और तप से पूर्णता होती है ।

वाले ऋषि केवल तप से ही चर-अचर समेत त्रिलोकी को देखते हैं ॥ २३६ ॥ औषध, अरोगता, विद्या, और अनेक प्रकार की दैवी स्थिति, तप से प्राप्त होते हैं, क्योंकि तप इन सब का साधन है*॥२३७॥ जिससे पार होना कठिन है, जिसको पाना कठिन है, जिस पर चढ़ना कठिन है, जिसको करना कठिन है, वह सब तप से होजाता है, तप की शक्ति को कोई नहीं उलांघ सक्ता ॥ २३८ ॥

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ २३९ ॥
कीटाश्चाहिपतंगाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात्॥२४०॥
यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ २४१ ॥

महापातकी और दूसरे भी अकार्य करने वाले, भली भांति तपे तप द्वारा उस पाप से छूटजाते हैं ॥ २३९ ॥ कीड़े, पतंगे, सांप, पशु, पक्षी और स्थावर जीव (वृक्ष बेल आदि) तप के बल से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं † ॥ २४० ॥ जो कुछ पाप

* मेधा० गोवि० नारा० 'अगदो' के स्थान 'अगदाः'। औषध=रसायन, अगद=रोग-नाशक औषध (मेधा०) विष-नाशक मन्त्र रूप औषध(नारा०)दैवी स्थिति इन्द्रादि देवता रूप से स्थिति। (कुल्लू०)

† नारा० 'कीटाश्च' के स्थान 'श्वानश्च=कुत्ते' पढ़ता है। पक्षी आदि का तप देखो कपोताख्यान (महाभा० १२) राघ० कहता है, कीड़े आदि का दुःख भोगना ही तप है, जो अपने खोटे कर्मों का फल भोग रहे हैं।

मन वाणी वा शरीर से मनुष्य करते हैं, उस सारे पाप को तपोधनी पुरुष तप से ही जल्दी जला देते हैं ॥ २४१ ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥२४२॥
प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैववेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ २४३ ॥
इत्येतत्तपसो देवा माहाभाग्यं प्रचक्षते ।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुद्भवम् ॥२४४॥

तप से ही शुद्ध हुए ब्राह्मण के यज्ञों को देवता स्वीकार करते हैं, और उसकी कामनाएं पूरी करते हैं ॥ २४४ ॥ तप से ही प्रजापति प्रभु ने इस शास्त्र को रचा, वैसे ही ऋषि तप से ही वेदों को प्राप्त हुए॥२४३॥देवता इस सब(जगत)की तप से पवित्र उत्पत्ति देखते हुए,इसप्रकार यह तप का माहात्म्य कहते हैं*२४४

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥२४५॥
यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥२४६॥

यथाशक्ति प्रतिदिन वेदाभ्यास, महायज्ञों का करना, (अपराध को) क्षमा करना, यह कर्म महापातकों से उत्पन्न हुए

---

* छपे पुस्तकों 'पुण्यमुत्तमं' पाठ है, पर टीकाकारों के सब के अनुसार 'पुण्यमुद्भवं' पाठ होना चाहिये, सो ठीक कर दिया है ।

पापों को भी, जल्दी नष्ट कर देते हैं * ॥ २४५ ॥ जैसे अग्नि प्राप्त हुई लकड़ी को अपने तेज से झट दग्ध कर देता है, वैसे वेदवेत्ता पुरुष ज्ञान की अग्नि से सारे पापों को दग्ध करदेता है †

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ।
अतऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ २४७ ॥
सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपिभ्रूणहणंमासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ २४८ ॥

यह (ब्रह्महत्यादि) पापों का यथाविधि प्रायश्चित्त कहा है, इससे आगे रहस्यों का प्रायश्चित्त जानो ॥ २४७ ॥ ओंकार, और व्याहृतियों सहित प्रति दिन किये सोलह प्राणायाम, महीने में गर्भ हत्यारे को भी पवित्र कर देते हैं ↑ ॥ २४८ ॥

कौत्संजप्त्वापइत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ।
माहित्रंशुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुध्यति ॥२४९॥
सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवतिनिर्मलः ॥ २५० ॥

कौत्स (कुत्स ऋषि से देखा) 'अपः' यह सूक्त (ऋग्वेद १।९७), वासिष्ठ (वसिष्ठ से देखा) 'प्रति' यह तृच (ऋग्० ७।८०) माहित्र (महित्रीणामवो, इत्यादि सूक्त) (ऋग्० १०। १८५) और शुद्धवती ऋचाओं (ऋग्०८।८।७-९) का स्वाध्याय

---

* वासि० २७।७ याज्ञ० ३।३११ † वासि० २७।१-२
↑ वासि० २६।४ बौधा० ४।१।२९ विष्णु० ५५।५

करके सुरा पीने वाला भी शुद्ध होता है *॥२४९॥ अस्यवामीय (सूक्त) (ऋग्० १।१६४) को वा शिव संकल्प (यजु० ३४।१-६) को एक बार जपकर सोना चुराने वाला क्षण से निर्मल होता है†

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंहइतीति च ।
जपित्वापौरुषंसूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ २५१ ॥
एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चेदमितीति वा ॥२५२॥

हविष्पान्तीय (सूक्त–ऋग्० १०।८८) और 'नतमंहः' (ऋग्० ८।२३।२) का अभ्यास करके, और पुरुष सूक्त (ऋग्० १०।९०) का जप करके गुरुस्त्रीगामी (पाप से) छूटता है ‡ ॥ २५१ ॥ छोटे बड़े पापों को दूर करना चाहता हुआ 'अव' (ऋग्० १।२४।१४) इस ऋचा का, अथवा 'यत्किञ्चेदं' (ऋग्० ७।८९।५) इस ऋचा का वर्ष भर जप करे ॥ २५२ ॥

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥ २५३ ॥
सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुध्यति ।
स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च तृचम् ॥२५४॥

दान के अयोग्य का दान लेकर, और निन्दित अन्न खाकर मनुष्य तरत्समन्दीय (९।५८।१-४) जपता हुआ तीन दिन से

---

* वासि० २६।५ † वासि०२६।६ 'यहां एक बार' से पूरा महीना प्रति दिन एक २ बार अभिप्रेत है (गोवि० कुल्लू० नारा०) ‡ वासि० २६।७ याज्ञ० ३।३०५

पवित्र होता है * ॥ २५३ ॥ नदी में स्नान करके महीना भर सोम और रुद्र देवता वाला सूक्त (६।७४।१–४) और 'अर्यम्णम्' (इत्यादि) तीन ऋचा (ऋग्० ४।२।४–६) का स्वाध्याय करता हुआ बहुत पापों वाला शुद्ध होता है ॥ २५४ ॥

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥२५५॥
मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नमइत्यृचम् ॥२५६॥
महापातकसंयुक्तोऽनु गच्छेद्गाः समाहितः ।
अभ्यस्याब्दंपावमानीर्भैक्षाहारो विशुध्यति ॥२५७॥
अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः॥२५८॥
त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।
मुच्यते पातकैः सर्वै स्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणम् ॥२५९॥
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥ २६० ॥
हत्वालोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किञ्चन ॥२६१॥

(किसी तरह का भी) पापी 'इन्द्रम्' इत्यादि (ऋग्वेद १।१०६।१–७) सात ऋचाएं छः महीने जपे, वा जल में

* गौत० २४।२–३ बौधा० ४।२।४–५

निन्दित बात (मैथुन वा मलमूत्र त्याग) करके महीना भर भीख मांग कर खाए ॥ २५५ ॥ शाकल होम के मन्त्रों (यजु० ८।१३) से वर्ष भर घी का होम करे, वा 'नमः' (ऋग्० ६।५१।८) इस ऋचा को जप करे, तो द्विज बड़े भारी पाप को भी दूर करता है * ॥ २५६ ॥ महापातकों से युक्त हुआ सावधान होकर गौओं के पीछे जाए, और भिक्षा के अन्न का आहार करता हुआ वर्ष भर पावमानी ऋचाओं (ऋग्वेद मण्डल ९) को जप करके शुद्ध होता है ॥ २५७ ॥ तीन पराकों से पवित्र हुआ शुद्ध हो जंगल में तीनवार वेदसंहिता का अभ्यास करके सारे पापों से छूट जाता है † ॥ २५८ ॥ सावधान हो तीन दिन उपवास करे, दिन में तीन वार स्नान करे, और तीन वार अघमर्षण सूक्त (१०।१९०) का जप करे, तो सारे पातकों से छूट जाता है ‡ ॥ २५९ ॥ जैसे यज्ञों का राजा अश्वमेध सारे पापों का दूर करने वाला है, वैसे अघमर्षण सूक्त सारे पापों को दूर करने वाला है ॥ २६० ॥ इन तीनों लोकों को भी मार कर, और जहां तहां से भी खाता हुआ ऋग्वेद को धारण करता हुआ ब्राह्मण (आदि) किसी पाप को नहीं प्राप्त होता§॥२६१॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २६२ ॥

---

* नारा० कहता है 'नमः' इस ऋचा को प्रति दिन १०८ वार पढ़े † पराक देखो पूर्व० २१५ । वेदसंहिता=मन्त्र ब्राह्मण दोनों (कुल्लू० राघ०) केवल मन्त्र संहिता (नारा०) यह श्लोक 'अनश्नत्पारायण' का वर्णन करता है, जिसका पूरा वर्णन बोधा० ३।९ में है, ‡२५९-२६० वासि० २६।८ गौत० २४।१०-१२ बौधा० ३।५;३।२।११ याज्ञ० ३।३०२ विष्णु० ५५।७ § वासि० २७।२

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्रं लोष्टं विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥२६३॥
ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च ।
एषज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥ २६४ ॥
आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयो यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।
सगुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥२६५॥

ऋचाओं की संहिता वा यजुओं की संहिता, वा उपनिषद् समेत सामों की संहिता को एकाग्र हो तीन बार अभ्यास करके सारे पापों से छूट जाता है * ॥ २६२ ॥ जैसे मट्टी का ढेला बड़ी झील में प्रवेश करके जल्दी † बे पता होजाता है, वैसे हरएक दुष्कर्म तीन लड़ वाले (ऋचा, यजु, साम मन्त्रों वाले) वेद में डूब जाता है ॥ २६३ ॥ ऋचाएं, यजु, और अनेक प्रकार के (बृहद्रथन्तर आदि) साम और अन्य ‡ यह तीन लड़ वाला वेद जानना चाहिये, जो इसको जानता है, वह वेद का जानने वाला है ॥२६४॥ (सारे वेदों के) आदि में होने वाला,

---

* बौधा० ४ । ५ । २९ † गोवि० के अनुसार 'क्षिप्रं' पाठ कर दिया है, जो छपे पुस्तकों में 'क्षिप्तं' है ‡ अन्य से इन तीनों के ब्राह्मण अभिप्रेत है (कुल्लू०) अन्यानि के स्थान 'मेधा० गोवि० आद्यानि पढ़ते हैं अर्थ मुख्य । इस मुख्य का साम से अन्वय करके मेधा० दो तात्पर्य्य लेता है, मुख्य साम, जो संहिता में आए हैं, न कि वह जो ब्राह्मण में आए हैं, अथवा जो संहिता पाठ से पढ़े गए हैं, न कि पद पाठ, वा क्रम पाठ से । गोवि० इनमें से पहला तात्पर्य्य ही मानता है ।

तीन अक्षरों वाला ब्रह्म (ओम्) है, जिस पर वेद की बुनियाद है, वह एक दूसरा तीन लड़ का गुह्य वेद है, जो उसको जानता है, वह वेद का जानने वाला है ॥ २६५ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तोधर्मस्त्वयानघ ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस न स्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥
सतानुवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवो भृगुः ।
अस्यसर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्यनिर्णयम् ॥ २ ॥
शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाऽधममध्यमाः ॥ ३ ॥

हे निष्पाप तूने चारों वर्णों का धर्म सम्पूर्ण कह दिया है, अब हमें कर्मों की परली (मरने के पीछे) फल सिद्धि ठीक २ बतलाएं * ॥ १ ॥ वह मनु का पुत्र धर्मात्मा भृगु उन महर्षियों से बोला, इस सारे कर्मयोग का निर्णय सुनो ॥ २ ॥ शुभ-अशुभ फल वाला कर्म मनवाणी और शरीर से उत्पन्न होता है, और मनुष्यों की उत्तम अधम मध्यम गतियें कर्म से उत्पन्न होती हैं॥३॥

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

---

* 'तत्त्वतः पराम्' मुक्ति को ठीक २ बतलाएं (राघ०)

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥
मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ ८ ॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ ९ ॥

उस देही का जो तीन प्रकार का तीन (मन, वाणी, शरीर) के आश्रित दस लक्षण से युक्त कर्म है, उसका प्रेरक मन को जाने * ॥ ४ ॥ (वह दस लक्षण यह हैं) दूसरे के धन का चिन्तन (किस तरह मेरे हाथ आजाए), मन से अनिष्ट का चिन्तन, और मिथ्या दृढ़ विश्वास (परलोक कुछ नहीं, सब लूटने का ढकोसला बनाया हुआ है इत्यादि) यह तीन प्रकार का मानस कर्म है † ॥ ५ ॥ कठोर, झूठ, सब प्रकार की चुगली, और निष्प्रयोजन बकवास, यह चार प्रकार का वाणी का (पाप) है ॥ ६ ॥ बिना दिये (किसी का धन) लेना,

* तीन प्रकार का उत्तम, मध्यम, निकृष्ट। दस लक्षण, जो आगे ५-७ में कहे हैं † अनिष्ट चिन्तन=दूसरे के बध आदि का चिन्तन, या निषिद्ध ब्रह्महत्यादि का चिन्तन। ५-९ याज्ञ०३।३१; १३४-१३६

(शास्त्र) आज्ञा से बिना हिंसा, परस्त्री का सेवन यह तीन प्रकार का शारीर माना है ॥ ७ ॥ मन से किये शुभ-अशुभ कर्म को मन से, वाणी से किये को वाणी से, और शरीर से किये को शरीर से भोगता है ॥ ८ ॥ शरीर से किये कर्म दोषों से मनुष्य स्थावर योनि (वृक्षादि योनि) को, वाणी से किये कर्मों से पक्षी और पशु योनि को और मन से किये पापों से नीच योनि (चण्डालादि जन्म) को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

वाग्दण्डोऽथमनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥१०॥
त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥११॥

वाणी का दण्ड, मन का दण्ड, शरीर का दण्ड, जिसकी बुद्धि में यह तीन दण्ड स्थित हैं, वह त्रिदण्डी कहलाता है * ॥ १० ॥ मनुष्य इन तीनों दण्डों को सब जीवों के विषय में लगाकर, काम और क्रोध को रोक कर सिद्धि को प्राप्त होता है

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥१२॥
जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥

* दण्डी संन्यासी तीन दण्डों को इकट्ठा बांधकर हाथ में रखते हैं। यह श्लोक बतलाता है, कि वह तीन दण्ड इसलिये हैं, कि मनुष्य को अपने मन, वाणी और शरीर को अपने वस में रखना चाहिये, उनको दमन करना चाहिये।

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥
असंख्या मूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥

इस शरीर का जो प्रवर्तक (काम में लगाने वाला) है, उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जो कर्म करता है, उसको बुद्धिमान् भूतात्मा (भूतों का बना-शरीर) कहते हैं ॥ १२ ॥ एक और अन्तरात्मा*जीव नामवाला है, जो सब देहधारियों का स्वभाविक साथी है, जिससे हरएक जन्म में सारे सुख दुःख को जानता है ॥ १३ ॥ वह दोनों महान् और क्षेत्रज्ञ (पृथिवी आदि-) भूतों के साथ मिले हुए ऊंच नीच सब भूतों में स्थित उस (परमात्मा) के आश्रय रहते हैं ॥ १४ ॥ उस (परमात्मा) के शरीर से असंख्य मूर्तियें निकली हैं, जो ऊंचे नीचे भूतों को सदा चेष्टा कराती हैं†

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥
तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः ।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥१७॥
सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान् ।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥१८॥

मरने के पीछे पापियों के लिये (नरक की) यातना (भोगने)

---

* जीव से यहां महत् तत्त्व-बुद्धि, लिंग शरीर अभिप्रेत है, जैसाकि अगले श्लोक में महान् कहा है † मूर्तियें=भिन्न देह।

के लिये (भूतों की) पांच मात्राओं से एक और दृढ़ * शरीर उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥ उस शरीर से यम से दी उन यातनाओं को भोगकर उन्हीं भूत मात्राओं में वह अलग २ फिर लीन होजाते हैं ॥ १७ ॥ वह विषयासक्ति से उत्पन्न हुए दुःख फल वाले पापों को भोगकर, पाप से छूटा हुआ फिर उन दोनों बड़े पराक्रम वालों (महान् और परमात्मा) को प्राप्त होता है।१८।

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥१९॥
यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥ २० ॥

वह सावधान हो इसके पुण्य पाप दोनों को इकट्ठा देखते हैं, जिनसे युक्त हुआ यह जीव परलोक और इस लोक में सुख दुःख को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ यदि वह धर्म अधिक और पाप थोड़ा करता है, तब वह उन्हीं भूतों (स्थूल देह से खींच कर साथ लिये भूतों) से लपेटा हुआ स्वर्ग में सुख भोगता है॥२०॥

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥२१॥
यामीस्ता यातनाः प्राप्य सजीवो वीतकल्मषः ।
तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥

यदि अधिक अधर्म और थोड़ा धर्म सेवन करता है, तब

* ध्रुव का अर्थ दृढ़ है । गोवि० और नारा० ने 'ध्रुवं' के स्थान 'दृढं' पढ़ा है ।

वह इन भूतों से त्यागा हुआ (मरा हुआ) यम की दी यातनाओं को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ यम की यातनाएं पाकर दूर हुए पाप वाला वह जीव फिर उन्हीं पांचों भूतों को प्राप्त होता है २२

एता दृष्ट्वाऽस्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥ २३ ॥
सत्त्वंरजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान्स्थितोभावान्महान्सर्वान शेषतः ॥२४॥

इस जीव की धर्म और अधर्म से यह गतियें अपने चित्त से देखकर मन को सदा धर्म में लगाए ॥ २३ ॥ सत्त्व, रज, तम यह, तीन आत्मा (=महान् आत्मा) के गुण जाने, जिन से वह महान् आत्मा इन सारे भावों को पूरा २ व्याप कर स्थित है॥२४॥

यो यदेषां गुणोदेहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥ २५ ॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजःस्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥ २६ ॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥२७॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २८ ॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत ॥ २९ ॥

त्रयाणामपिं चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्योमध्योजघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥ ३०॥

(यद्यपि सारे देह इन तीनों गुणों वाले हैं तथापि) इनमें से जो गुण जब देह * में पूरा २ बढ़ता है, वह तब उस देही को उस गुण की अधिकता वाला (उस गुण के अधिक लक्षणों वाला) बना देता है ॥ २५ ॥ सत्त्व (का लक्षण) ज्ञान है, तम का अज्ञान, रागद्वेष रजस् कहे हैं। इन (गुणों) का यह लक्षण सब प्राणिशरीरों का व्यापक है (सब शरीरों में पाया जाता है) ॥२६॥ सो मनुष्य जब अपने अन्दर सुख से भरा हुआ गहरी शान्ति वाला, मानों शुद्ध प्रकाश वाला जो कुछ (संवेदन) प्रतीत करे, उसे सत्त्व निश्चय करे ॥२७॥ और जो (संवेदन) दुःख से युक्त, और आत्मा का सन्तोषकारी नहो, उसको रजस् जाने, जिसका रोकना कठिन † और देहधारियों को सदा (विषयों की ओर) खींचता है ॥ २८ ॥ जो (संवेदन) भूल से युक्त है, जिसका विषय स्फुट नहीं। जो तर्क से निश्चित न हो, (बाह्य इन्द्रियों और अन्तरिन्द्रियों से) निश्चित न हो, उसको तम निश्चय करे‡ ॥ २९ ॥ इन तीनों गुण के यथा क्रम उत्तम, मध्यम और निकृष्ट फल की जो उत्पत्ति है, उसको पूरा २ कहूंगा

* लिंग देह में (राघ०) पूर्व कर्म की प्रबलता के वश इस देह में कोई गुण प्रबल होता है (मेधा० गोवि०) † मेधा० 'अप्रतिघं' के स्थान 'अप्रतिपं' पढ़कर 'अप्रत्यक्ष' अर्थ लेता है। छपे पुस्तकों में भी यही पाठ है। पर दूसरी टीकाओं का पाठ 'अप्रतिघं' है अर्थ भी स्पष्ट है सो कर दिया है ‡'अव्यक्तं विषयात्मकं' पाठ है। गोवि० कुल्लू० नारा० राघ० के अनुसार 'अव्यक्त विषयात्मकं' है।

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥३१॥
आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, शौच, इन्द्रिय-संयम, (दान-) धर्म का अनुष्ठान, आत्म-विचार यह सत्त्व गुण के चिन्ह हैं॥३१॥ (कामना से) कर्मों में रुचि, धीरज न होना, निषिद्ध कर्मों का स्वीकार, लगातार विषयों की सेवा यह रजो-गुण के चिन्ह हैं३२

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् ।
इदं सामासिकंज्ञेयं क्रमशोगुणलक्षणम् ॥ ३४ ॥

लोभ, निद्रा, कायरपन, क्रूरपन, नास्तिकपन, आचार का त्याग, मांगना और प्रमाद यह तमो-गुण के लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ तीन (कालों) में * रहने वाले इन तीनों गुणों का क्रमशः यह संक्षिप्त अपने २ गुण का चिन्ह जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥३५॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ ३६ ॥

* नन्द० 'त्रिषु' के स्थान 'नृषु'=मनुष्यों में, पढ़ता है।

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्माऽस्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥३७॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

जिस कर्म को करने के पीछे, करते हुए, वा करने लगे, लज्जा आती है, वह सब, बुद्धिमान् को तमो-गुण का चिन्ह जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ जिस कर्म से इस लोक में बड़ी प्रसिद्धि चाहता है, और अप्रसिद्धि में शोक नहीं करता है,* वह रजो-गुण का चिन्ह जानना चाहिये ॥३६॥ जब (किसी विषय को) पूरे तौर से जानना चाहता है, जिसका आचरण करता हुआ लज्जा नहीं करता है, जिससे इसका आत्मा प्रसन्न होता है, वह सत्त्व गुण का चिन्ह है ॥ ३७ ॥ तम का लक्षण काम है, रज का अर्थ है, सत्त्व का लक्षण धर्म है, इनमें से अगला २ श्रेष्ठ है॥३८॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥३९॥
देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥४०॥
त्रिविधात्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ।
अधमा मध्यमाऽग्र्या च कर्मविद्याविशेषतः ॥४१॥

---

* यदि उस काम में सफलता न हो, तो दूसरा काम आरम्भ करता है, शोक से छोड़ नहीं देता है ।

इनमें से जिस गुण से जो पुरुष जिन २ गतियों को प्राप्त होता है, वह इस सारे जगत् की संक्षेप से यथा क्रम कहूंगा॥३९॥ सत्त्व-गुणी देवता भाव को प्राप्त होते हैं, रजो-गुणी मनुष्य भाव को, तमो-गुणी तिर्यक्-योनि को प्राप्त होते हैं, यह तीन प्रकार की गति हैं ॥४०॥ गुणों की गति कर्म और उपासना के भेद से उत्तम मध्यम और अधम तीन २ प्रकार की जाननी चाहिये ॥४१॥

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपः ।
पशवश्चमृगाश्चैव जघन्या तामसीगतिः ॥ ४२ ॥
हस्तिनश्चतुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्चगर्हिताः ।
सिंहाव्याघ्रावराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥४३॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४४॥

पौदे, कृमि, कीड़े, मछलियें, सांप, कछुए *, पशु और मृग यह तमो-गुणी अधम गति है ॥ ४२ ॥ हाथी, घोड़े, शूद्र, निन्दित म्लेच्छ †, सिंह, बाघ, और सूअर, यह तमो-गुणी मध्यम गति है ॥ ४३ ॥ चारण, सुपर्ण ‡, दम्भी पुरुष, राक्षस और पिशाच यह तमो-गुणी उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

* 'सकच्छपाः' पाठ (गोवि० कुल्लू० राघ०) के अनुसार है। पर मेधा० नारा० नन्द० के अनुसार 'सरीसृपाः'=रींगन वाले, पाठ है † म्लेच्छ=शबर आदि (नारा०) ‡ चारण=कथक गायक आदि (मेधा०) रस्सी आदि पर नाचने वाले (नारा०) नट (गोवि० कुल्लू०) देवयोनि विशेष (राघ०) सुपर्ण=पक्षिराज।

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाश्च कुवृत्तयः ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥४५॥
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधाऽनुचराश्चये ।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ४७ ॥
तापसा यतयो विप्रा येच वैमानिका गणाः ।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः॥४८॥

झल्ल, मल्ल, नट और खोटी जीविकाओं वाले पुरुष, जुए और मद्यपान के व्यसनी, यह रजो-गुणी अधम गति है*॥४५॥ राजे, क्षत्रिय, राजाओं के पुरोहित, और वाद-युद्ध के प्यारे† यह रजो-गुणी मध्यम गति है ॥४६॥ गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, और जो देवता के अनुचर हैं (विद्याधर आदि) तथा सारी अप्सराएं यह रजो-गुणी उत्तम गति है ‡ ॥४७॥ तपस्वी, यति, ब्राह्मण, विमानों पर विचरने वाले, नक्षत्र और दैत्य यह सत्त्व-गुणी अधमगति है।

---

* झल्ल, मल्ल, जो पूर्व (१०।२२ में) कहे हैं (कुल्लू० नारा०) झल्ल=गतकेबाज़, मल्ल=पहलवान (मेधा० कुल्लू०) मेधा० गोवि० नारा० के अनुसार 'पुरुषाश्चकुवृत्तयः' पाठ हमने स्वीकार किया है, जोकि कुल्लू० और छपे पुस्तकों के अनुसार 'पुरुषाः शस्त्र वृत्तयः' है । † वादयुद्ध=शास्त्रार्थ, अथवा वाद=विवाद और युद्ध लड़ाई । नन्द० 'दान युद्ध प्रधानाश्च' दान देने के प्यारे और युद्ध के प्यारे पढ़ता है ‡ गुह्यक=बच्चों को हानि पहुंचाने वाले यक्ष=धन के रखवाले (नारा०)

यज्वानऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकीगतिः॥४९॥
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥
एषसर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ।
त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥५१॥

यज्ञ करने वाले, ऋषि, देवता, वेद, ज्योति, वत्सर, पितर और साध्य यह दूसरी सत्त्व-गुणी गति है ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा, विश्व के रचने वाले (मरीचि आदि), धर्म, महान्, अव्यक्त, इनको बुद्धिमान् सत्त्व-गुणी उत्तमगति कहते हैं ॥ ५० ॥ यह तीन प्रकार के कर्म (मानस-वाचिक, कायिक) की सब जीवों से सम्बन्ध रखने वाली तीन २ प्रकार की सारी गति पूरी २ कह दी है।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्याऽसेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानऽविद्वांसोनराधमाः ॥५२॥
यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ।
क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥५३॥
बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।
संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥५४॥

इन्द्रियों में लगाव से, धर्म पर न चलने से, मूर्ख अधम पुरुष पाप गतियों को प्राप्त होते हैं * ॥ ५२ ॥ जिस २ कर्म से

*याज्ञ०३।२१९मूर्ख=जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया(गोवि०कुल्लू०)

यह जीव जिस २ योनि को इस लोक में क्रमशः प्राप्त होता है, उस सारे को जानो ॥ ५३ ॥ महापातकी पुरुष बहुत वर्ष समूह घोर नरकों में पड़कर, उसके क्षय से इन जन्मों को प्राप्त होते हैं।

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ ५५ ॥
कृमिकीटपतंगानां विडभुजां चैव पक्षिणाम् ।
हिंस्रानां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥५६॥

ब्रह्महत्या करने वाला कुत्ते, सूअर, गधे, ऊंट, गौ, बकरी, मृग, पक्षी, चण्डाल, और पुक्कस की योनि को प्राप्त होता है * ॥५५॥ सुरा पीने वाला ब्राह्मण कृमि, कीड़े, पतंग, मैला खाने वाले पक्षियों और हिंस्र जीवों की योनि को प्राप्त होता है॥५६॥

लूताहिसरटानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः॥५७॥
तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

(सोना) चुराने वाला ब्राह्मण मकड़ी, सांप, गिरगिट, जलचर तिर्य-योनियों (मकर आदि) हिंस्र (राक्षसों) और पिशाचों के जन्मको हज़ार बार प्राप्त होता है॥५७॥गुरुस्त्रीगामी पुरुष घास, झाड़ी, बेल, कच्चे मांस खाने वाले (गिद्ध आदि),दाढ़ों वाले और क्रूर कर्म करने वालों की योनि को सैंकड़े बार प्राप्त होता है॥५८॥

* ५५-५६ याज्ञ० ३।२०७। ५७—५८ याज्ञ ३।२०८

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ।
परस्परादिनः स्तेनाः प्रेत्यान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥५९॥
संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ।
आहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

हिंसकजन कच्चा मांस खाने वाले बनते हैं, अभक्ष्य के खाने वाले कृमि बनते हैं. चोर आपस में एक दूसरे के खाने वाले जन्तु बनते हैं. अन्त्यज स्त्रियों के सेवने वाले प्रेत बनते हैं।५९। (जितना समय पतितों के साथ संयोग से पतित होता है, उतना समय) पतितों के साथ संयोग को प्राप्त होकर, वा दूसरे की स्त्री से संयोग करके तथा ब्राह्मण का धन चुराकर ब्रह्म राक्षस होता है* ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥
धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥६२॥

लोभ से मणि मोती मूंगे और अनेक प्रकार के रत्न चुराकर मनुष्य हेमकारों † में जन्म लेता है ॥६१॥ अनाज को चुराकर चूहा, कांसे को हंस, जल को जल कुक्कड़, शहद को, डांस, दूध को कौआ, रस को कुत्ता, और घी चुराकर नेउला होता है ‡॥

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥ ६३ ॥

* ६०-६१ याज्ञ०३।२१२-२१३ † हेमकार=पक्षी विशेष। ‡ याज्ञ०३।२१४-२१५ विष्णु०४४,१५-२० रस=ईख आदि का रस, कुल्लू०) पारा नारा०)

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥६४॥

मांस को चुराकर गिद्ध, चर्बी को चुराकर मद्गु, तेल को चुराकर तैलपायिक पक्षी, लवण को चुराकर झींगर (चींड़ा) दही को चुराकर बलाका पक्षी होता है* ॥६३॥ रेशमी कपड़ा चुराकर तित्तर, अलसी को चुराकर मेंडक, कपास का कपड़ा चुराकर क्रौञ्च, गौ को चुराकर गोह, गुड़ को चुराकर चमगादड़ होता है† ॥६४॥

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकंतुबर्हिणः ।
श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥६५॥

बको भवति हृत्वाऽग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६ ॥

उत्तम गन्धों को चुराकर छुछून्दर, पत्तों के शाक को चुराकर मोर, सब प्रकार का पका अन्न चुराकर सेह, और कच्चे अन्न को चुराकर शल्यक होता है ‡ ॥ ६५ ॥ अग्नि को चुराकर बगला होता है, (घर का) सामान (छाज, मूसल आदि) चुराकर गृहकारी, लाल वस्त्र चुराकर चकोर होता है § ॥६६॥

वृकोमृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ।
स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥६७॥

---

* याज्ञ० ३।२११, २१५ विष्णु० ४४।२१-२१ वपा के स्थान मेधा० गोवि० नन्द० वसा० पढते हैं † याज्ञ० ३।२१५ विष्णु० ४४।२५-३० ‡ याज्ञ० ३ । २१४ विष्णु० ४४। ३१-३४ § याज्ञ० ३।२१४-२१५ विष्णु० ४४।३५-३७

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ६८ ॥

मृग और हाथी को चुराकर भेड़िया, घोड़े को चुराकर बाघ, फल-मूल को चुराकर बन्दर, स्त्री को चुराकर रीछ, पानी को चुराकर पिपीहा, यान को चुराकर ऊंट और पशुओं को चुराकर बकरा होता है * ॥ ६७ ॥ चाहे कुछ ही (असार भी) दूसरे की वस्तु चुराकर बलवान् मनुष्य अवश्य तिर्यग्योनि को प्राप्त होता है, और होम से पहिले हवि को खाकर भी †॥६८॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥
स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ।
पापान्संसृत्य संसारान् प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥ ७० ॥
वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ।
अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥ ७१ ॥
मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥७२॥
यथा यथा निषवन्ते विषयान्विषयात्मकाः ।
तथातथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥ ७३ ॥

स्त्रियें भी चुराकर इसी प्रकार दोष को प्राप्त होती हैं,

---

*याज्ञ ३।२१४ विष्णु०४४।३८-४३ † याज्ञ० ३।२१७ विष्णु०४४।४५

इन्हीं जन्तुओं की वह स्त्रियें बनती हैं * ॥ ६९ ॥ (इस प्रकार निषिद्ध के अनुष्ठान का फल कहा, अब विहित के न करने का फल कहते हैं-) बिना आपत्काल के अपने २ कर्मों से च्युत हुए वर्ण निन्दित योनियों को पाकर, फिर दस्युओं के दास बनते हैं † ॥ ७० ॥ अपने धर्म से च्युत हुआ ब्राह्मण वमन खाने वाला ज्वाला-मुख प्रेत होता है, क्षत्रिय अमेध्य, और मुरदों के खाने वाला कटपूतन होता है ‡ ॥ ७१ ॥ वैश्य अपने धर्म से च्युत हुआ पीब खाने वाला मैत्राक्ष-ज्योतिक प्रेत होता है, शूद्र चैलाशक होता है ॥ ७२ ॥ विषयों के लालची ज्यों २ विषयों का सेवन करते हैं, वैसे २ उनमें उनकी कुशलता होती है

तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ।
संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥ ७४ ॥
तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ।
असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥
विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥ ७६ ॥

०विष्णु०४४-४५ † मेधा०गोवि० नारा० नन्द० राघ० के अनुसार 'दस्युषु' पाठ रक्खा है, जो कि छपे पुस्तकों में 'शत्रुषु' है । गोवि०ने 'दस्युषु' का अर्थ 'शत्रुषु' किया है, और कुल्लू० ने भी 'शत्रुषु' लिया है । मेधा० का अर्थ 'चोर, डाकू' है । नारा० के अनुसार जंगली जातियें शबर आदि । नन्द० 'प्रेष्यतां' के स्थान 'प्रेततां' पढ़ता है । अर्थात् दस्यु देशों में प्रेत बनता है और यह अगले श्लोक के अनुसारी है ‡ ज्वालामुख=जिसके मुख से ज्वाला निकलती है । कटपूतन=दुर्गन्धित नाक वाला (कुल्लू० नारा० राघ० नन्द०)

वह थोड़ी बुद्धि वाले उन कर्मों के अभ्यास में उन २ योनियों में दुःखों को प्राप्त होते हैं ॥ ७४ ॥ तामिस्र आदि घोर नरकों में घूमते हैं, और बांधने छेदने वाले असिपत्रवन आदि नरकों को प्राप्त होते हैं * ॥७५॥ अनेक प्रकार से पीड़ा जाना, कौए, उल्लुओं से खाया जाना, अत्यन्त तपी वालु के सन्ताप को और दारुण कुम्भीपाकों को प्राप्त होते हैं † ॥ ७६ ॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥ ७७ ॥
असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ।
बन्धनानि च काष्ठानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

अधिक दुःख वाली तिर्यग्योनियों में नित्य २ जन्म पाते हैं, सरदी गर्मी की चोटों और अनेक प्रकार के भयों को प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥ बार २ गर्भ स्थान में वास, दुःख देने वाला जन्म, काठ की बेड़ियों और लोगों के दासपन को प्राप्त होते हैं॥७८॥

बन्धुप्रियावियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्यचार्जनम् ॥ ७९ ॥
जरांचैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥ ८० ॥

---

* ७५-७६ देखो पूर्व० ४ । ८८-८९ याज्ञ० ३ । २०६ । २२१-२२५

† मेधा० 'करम्भवालुकातप्तः' पढता है । अर्थ-कीचड़ और रेत से तपा हुआ 'च दारुणान्' के स्थान मेधा० गोवि० राघ० नन्द० 'सुदुःसहान्' न सहारे जाने वाले, पढ़ते हैं ।

याद्दशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ।
ताद्दशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ८१ ॥
एष सर्वःसमुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः ।
नैःश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥ ८२ ॥

बन्धुओं और प्यारों से वियोग, दुर्जनों के साथ संवास, धन कमाने का परिश्रम और धन का नाश, (कष्ट से) मित्र का मिलना, (विना कारण) शत्रुओं का प्रकट होना, इन सारे दुःखों को प्राप्त होते हैं ॥७९॥ न हटाई जाने वाली वृद्धावस्था, रोगों से पीड़ा, भांति २ के क्लेश,और न जीती जाने वाली मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥८०॥ जैसे २ भाव (सात्विक,राजस वा तामस) से जिस २ कर्म का सेवन करता है, वैसे शरीर से उस २ फल को भोगता है ॥ ८१ ॥ यह तुम्हें (विहित निषिद्ध) सारा कर्मों का फलोदय कहा है,अब यह मोक्ष देने वाला ब्राह्मण का कर्म जानो

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरंपरम् ॥ ८३ ॥
सर्वेषामपि चेतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ।
किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥
सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतंततः ॥ ८५ ॥
षण्णां मेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेहच ।
श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, और गुरु-सेवा यह उत्तम मोक्ष साधन है * ॥ ८३ ॥ इन सारे शुभ कर्मों में से भी कोई कर्म पुरुष के लिये बहुत ही कल्याणकारी कहा है ॥ ८४ ॥ इन सब में से आत्म-ज्ञान सब से उत्तम माना गया है, यह सब विद्याओं में मुख्य है, इसमे अमृत प्राप्त होता है † ॥ ८५ ॥ इन सारे छः कर्मों में से वैदिक कर्म सदा इस लोक और परलोक में कल्याणकारी जानना चाहिये ‡ ॥८६॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ।
अन्तर्भवन्ति क्रम शस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ॥८७॥
सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च ।
प्रवृत्तंच निवृत्तंच द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

वैदिक कर्म-योग में यह सारे क्रमशः अलग २ उन २ क्रिया विधि में अन्तर्गत होते हैं § ॥८७॥ वैदिक कर्म दो प्रकार का है। प्रवृत्ति रूप और निवृत्ति रूप (इनमें से प्रवृत्ति-कर्म) सुख और स्वर्ग का साधन और (निवृत्ति-कर्म) मोक्ष का साधन है ॥ ८८ ॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तंकर्म कीर्त्यते ।
निष्कामं ज्ञानपूर्वन्तु निवृत्तमुपादिश्यते ॥ ८९ ॥
प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानाप्नोति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति यञ्च वै ॥ ९० ॥

* याज्ञ० ३।१९० † याज्ञ० १। १९९ आत्म-ज्ञान=परमात्मा का ज्ञान (मेधा० गोवि० कुल्लू० नन्द०) 'सर्वेषां' षष्ठी पञ्चमी के अर्थ में है। सब से बढकर (नन्द०) ‡ छः कर्म जो ८३ में कहे हैं।

§ वेदाभ्यासादि आत्म-ज्ञान के साधन होने से आत्म-ज्ञान में ही आजाते हैं देखो बृह० ४।४।२२

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥९१॥
यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः ।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्॥९२॥
एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥९३॥

यहां वा परलोक की कामना के लिये किया कर्म प्रवृत्त कर्म कहलाता है. और ज्ञानपूर्वक निष्काम-कर्म निवृत्त कहा है ॥८९॥ प्रवृत्त-कर्म को सेवन करके देवताओं की समता को प्राप्त होता है, निवृत्त को सेवन करता हुआ पांच भूतों को उलांघ जाता है (मुक्त होजाता है) ॥ ९० ॥ सब भूतों में आत्मा को और सब भूतों को आत्मा में सम देखता हुआ आत्मा का पुजारी स्वाराज्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है * ॥ ९१ ॥ शास्त्रोक्त भी (अन्य) कर्म † त्याग कर ब्राह्मण आत्म-ज्ञान में, शम में और वेदाभ्यास में यत्न वाला हो ॥ ९२ ॥ यही जन्म की सफलता है, विशेष करके ब्राह्मण की, इसको पाकर द्विज कृत-कृत्य होता है अन्यथा नहीं

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यंचाप्रमेयंच वेदशास्त्रमितिस्थितिः ॥९४॥
यावेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्चकुदृष्टयः ।
सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहि ताःस्मृताः ॥९५॥

* आत्मा का पुजारी, सब कर्म ईश्वरार्पण बुद्धि से करने वाला

† अन्य कर्म=अग्निहोत्रादि (मेधा० गोवि० कुल्लू०)

उत्पद्यन्तेच्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानिच ॥९६॥
चातुर्वर्ण्यंत्रयोलोका श्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतंभव्यंभविष्यंच सर्ववेदात्प्रसिध्यति ॥९७॥

वेद मनुष्यों का, देवताओं का और पितरों का सनातन नेत्र है (वेद सब को सीधा रस्ता दिखलाता है) वेद शास्त्र अशक्य है और अप्रमेय (जिसके प्रमेय की थाह नहीं) है, यह मर्यादा है * ॥ ९४ ॥ जो स्मृतियें वेद-मूलक नहीं, और जो कुदर्शन (कुतर्कों वाले दर्शन) हैं, वह सब परलोक में निष्फल हैं, वह अन्धकार से प्रकट हैं ॥ ९५ ॥ वेद से भिन्न (परलोक सम्बन्धी) जो कोई (शास्त्र) हैं, वह उत्पन्न होते हैं, और गिरते हैं, वह अब के किसी पुरुष से किये हुए होने से निष्फल हैं क्योंकि झूठे हैं ॥ ९६ ॥ अलग २ चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, भविष्यत और वर्तमान सब वेद से जाना जाता है ॥ ९७ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपंच रसो गन्धश्चपञ्चमः ।
वेदादेवप्रसिध्यन्ति प्रसूतिगुणकर्मतः ॥९८॥
बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परंमन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥९९॥
सैनापत्यंच राज्यंच दण्डनेतृत्वमेवच ।
सर्वलोकाधिपत्यंच वेदशास्त्रविदर्हति ॥१००॥

* अशक्य = मनुष्य से बनाए जाने के अशक्य है, अर्थात् अपौरुषेय है (गोवि० कुल्लू०)

यथाजातबलो वन्हिर्दहत्यार्द्रानपिद्रुमान् ।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजंदोषमात्मनः ॥१०१॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पांचवां गन्ध यह अपनी उत्पत्ति, गुण और कर्म द्वारा वेद से ही जाने जाते हैं * ॥९८॥ सनातन वेदशास्त्र सारे भूतों का पालन-पोषण करता है, इसलिये मैं इसको उत्तम मानता हूं, जोकि इस मनुष्य के (लोक परलोक) का साधन है ॥ ९९ ॥ सेनापति होने के, राजा होने के, दण्ड का नेता होने के, और सब लोकों का अधिपति होने के योग्य वेद-शास्त्र का जानने वाला होता है ॥१००॥ जैसे बढ़ी हुई अग्नि गीले वृक्षों को भी जला देती है, वैसे वेद का जानने वाला अपने कर्म जन्य दोषों को (ज्ञानाग्नि से) जला देता है † ॥ १०१ ॥

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१०२॥
अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाग्रन्थिभ्यो धारिणोवराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठाज्ञानिभ्योऽव्यवसायिनः॥१०३॥
तपो विद्या च विप्रस्य निः श्रेयसकरं परम् ।
तपसाकिल्बिषंहान्तिविद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १०४ ॥

वेद और शास्त्र के अर्थ का तत्त्व जानने वाला जिस किसी

---

* छपे पुस्तकों में ' प्रसूयन्ते ' पाठ है । टीकाकारों के अनुसार ' प्रसिध्यन्ति ' चाहिये, सो वैसा कर दिया है । 'उत्पत्ति, गुण और कर्म द्वारा' उत्पत्ति-शब्दादि की मूल-प्रकृति में कई एक परिणामों के अनन्तर आकाशादि से, गुण-आकाशादि के शब्दादि, कर्म-अवकाश देना आदि । यह सब भी वेद से ही जाने जाते हैं । † वासि० २७।२

आश्रम में रहता हुआ, यहां पृथिवी में रहता हुआ ही मुक्त होने के योग्य होता है ॥१०२॥ (वेद के सर्वथा) न जानने वालों से ग्रन्थी (ग्रन्थ का पाठ मात्र करने वाले) श्रेष्ठ हैं, ग्रन्थियों से धारने वाले (स्मरण रखने वाले) श्रेष्ठ हैं, धारने वालों से ज्ञानी (तात्पर्य को जानने वाले) श्रेष्ठ हैं, ज्ञानियों से अनुष्ठानी श्रेष्ठ हैं॥१०३॥ तप और विद्या ब्राह्मण के लिये सर्वोत्तम मोक्ष-साधन है, तप से पाप को दूर करता है, विद्या से मोक्ष लाभ करता है *॥१०४॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं चविविधागमम् ।
त्रयंसुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥१०५॥
आर्षंधर्मोपदेशंच वेदशस्त्राऽविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते सधर्मं वेद नेतरः ॥ १०६ ॥

धर्म की शुद्धि चाहने वाले को प्रत्यक्ष, अनुमान अनेक प्रकार का शास्त्र यह तीनों भली भान्ति जानने चाहियें॥१०५॥ वेद और धर्मोपदेश को जो वेद और शास्त्र के अविरोधी तर्क से जानता है, वह धर्म को जानता है, दूसरा नहीं † ॥ १०६ ॥

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ।
मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥१०७॥
अनाम्नातेषु धर्मेषु कथंस्यादितिचेद्भवेत् ।
यं शिष्टाब्राह्मणाब्रूयुः सधर्मःस्यादशङ्कितः ॥१०८॥

---

* याज्ञ० ३।२०० तप=अपने २ आश्रम का कर्म, और विद्या= ब्रह्मज्ञान †धर्मोपदेश=धर्मशास्त्र। अविरोधी तर्क=जिस लौकिक वा अलौकिक फल को लक्ष्य रख कर जिसकी प्रवृत्ति हुई है, उस तक पहुंचाने वाला तर्क।

यह मोक्ष-साधन कर्म यथावत् समग्र कहा है, अब इस मानव शास्त्र का रहस्य उपदेश करते हैं ॥ १०७ ॥ न बतलाए धर्मों में कैसे (मर्यादा) हो, यदि यह (संशय) हो, तो जो शिष्ट ब्राह्मण कहें, वह निश्चित (मर्यादा) होनी चाहिये * ॥ १०८ ॥

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः॥१०९॥
दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥११०॥
त्रैविद्योहैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥१११॥

जिन्हों ने मर्यादाऽनुसार परिबृंहण समेत वेद को पढ़ा है, और जो श्रुति के प्रत्यक्ष के हेतु हैं (वेदार्थ में प्रत्यक्ष तुल्य निश्चय करासक्ते हैं) वह शिष्ट ब्राह्मण जानने चाहियें † ॥१०९॥ घट से घट दस की परिषद्, जो सदाचार में स्थित है—वह, जो धर्म नियत करे, उस धर्म को न हिलाए ॥ ११० ॥ ऋचा, यजु, साम के जानने वाले (तीन पुरुष), एक नैयायिक, एक मीमांसक, एक नैरुक्त, एक धर्म-शास्त्री, और तीन पहले आश्रमी (ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और गृहस्थ) यह दशावरा परिषद् है ॥१११॥

ऋग्वेद विद्यजुर्विच्च सामवेदविदेवच ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ११२ ॥

---

* १०८-११५ वासि० ३।२० गौत० २८। ८-११ आप० २।२९। १३-१४ बौधा० १।१।५-१३, १६ याज्ञ० १९-१० † परिबृंहण = जिन से वेदार्थ-रूप बीज का फैलाव होता है। अर्थात् अंग-उपांग।

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यंव्यवस्येद्द्विजोत्तमः ।
सविज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥११३॥
अव्रतानाममन्त्राणां जाति मात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥११४॥
यंवदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधाभूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥११५॥
एतद्वोऽभिहितंसर्वंनिः श्रेयसकरं परम् ।
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोतिपरमांगतिम् ॥११६॥
एवंसभगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मस्य परमंगुह्यं ममेदंसर्वमुक्तवान् ॥ ११७ ॥
सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चा सच्चमसमाहितः ।
सर्वंह्यात्मनिसंपश्यन्ना धर्मे कुरुते मनः ॥ ११८ ॥

धर्म-विषयक संशय मिटाने में एक ऋग्वेद का जानने वाला, एक यजुर्वेद का जानने वाला, एक सामवेद का जानने वाला यह त्र्यवरा परिषद् जाननी चाहिये ॥ ११२ ॥ (चारों) वेदों का जानने वाला एक भी ब्राह्मण जिस धर्म का निश्चय करे, वह उत्तम धर्म जानना चाहिये, न कि दस सहस्र अविद्वानों से कहा हुआ ॥११३॥ (ब्रह्मचर्य) व्रत से हीन, वेद के न जानने वाले, जाति-मात्रधारी ब्राह्मणों के सहस्रों के मिलने से भी परिषद् नहीं होती है ॥ ११४ ॥ जो धर्म उसके (धर्म के) न जानने वाले तमो-गुणी मूर्ख बतलाते हैं, वह सौ गुणा पाप बनकर उस (धर्म) के बतलाने वालों को प्राप्त होता है ॥ ११५ ॥ यह उत्तम मोक्ष

साधन तुम्हें सारा बतला दिया है, इनसे न फिसला हुआ ब्राह्मण परम-गति को प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥ इस प्रकार वह भगवान् देव (मनु राजा) लोकों के हित की कामना से धर्म का यह सारा गुह्य भेद मुझे बतलाता भया ॥ ११७ ॥ एकाग्र-मन होकर सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म को परमात्मा में देखे, क्योंकि सब को परमात्मा में देखता हुआ मन को अधर्म में नहीं लगाता है * ॥ ११८ ॥

आत्मैव देवताःसर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगंशरीरिणाम् ॥११९॥
खंसन्निवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ।
पक्तिदृष्ट्योःपरंतेजः स्नेहेऽपोगांचमूर्तिषु ॥ १२० ॥
मनसीन्दुंदिशः श्रोत्रेक्रान्तेविष्णुं बले हरम् ।
वाच्यग्निंमित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥१२१॥
प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषंपरम् ॥ १२२ ॥
एनमेकेवदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेपरेप्राणम परे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १२३ ॥

परमात्मा ही (इन्द्रादि) सारे देवता है, सब परमात्मा में स्थित हैं, परमात्मा ही उन देहधारियों के लिये कर्म-योग को उत्पन्न करता है (जिस पर चलने से मोक्ष मिलता है) ॥११९॥

* कुल्लूकभट्ट ने आत्मा से परमात्मा अभिप्राय लिया है। गोविन्द ने आत्मा से अपना आत्मा लिया है। पर अगले श्लोक में उसने भी आत्मा से परमात्मा अभिप्राय लिया है।

आकाश को (शरीर के) छिद्रों में मिलाए (बाह्य) चेष्टा और स्पर्श में वायु को, पाक और दृष्टि (जठराग्नि और नेत्र की दृष्टि) में बड़े तेज को (बाह्य अग्नि और सूर्य को) (शरीर के) स्नेह में जल को, शरीर में पृथिवी को ॥ १२० ॥ मन में चन्द्र को, श्रोत्र में दिशाओं को, गति में विष्णु को, बल में शिव को, वाणी में अग्नि को, पायु (गुदा) में मित्र को और उपस्थ में प्रजापति को (मिलाए) ॥ १२१ ॥ सब का शासन करने वाला, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सोने की आभा वाला, केवल समाधि ज्ञान से जानने योग्य उस परमपुरुष को जाने॥१२२॥इसको कई अग्नि कहते हैं, दूसरे प्रजापति, कई इन्द्र दूसरे प्राण, कई सनातन ब्रह्म कहते हैं

एषसर्वाणिभूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२४ ॥
एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
ससर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येतिपरंपदम् ॥१२५॥
इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तंपठन्द्विजः।
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥१२६॥

यह सब प्राणियों को पाचों भूतों के साथ लपेट कर जन्म वृद्धि और नाश के द्वारा सदा चक्रवत् घुमाता है ॥१२४॥ इस प्रकार जो आत्मा से परमात्मा को सब भूतों में देखता है, वह सब की समता को प्राप्त होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है; जो सब से ऊंचा पद है * ॥ १२६ ॥ भृगु से कहे इस मानव-शास्त्र को [illegible] सदाचारी होता है, और मनमानी गति पाता है

* मनुस्मृति समाप्त हुई *

* 'परं पदं' के स्थान नन्द० 'सनातनं' पढ़ता है।

१—ईश उपनिषद्	=)	८—ऐतरेय उपनिषद्	≡)
२—केन उपनिषद्	=)	९—छान्दोग्य उपनिषद्	१॥=)
३—कठ उपनिषद्	।—)	१०—बृहदारण्यक उपनिषद्	१॥=)
४—प्रश्न उपनिषद्	।)	११—श्वेताश्वतर उपनिषद्	।)॥
५,६—मुण्डक और माण्डूक्य	।—)	ग्यारह इकट्ठी लेने में	५।=)
७—तैत्तिरीय उपनिषद्	।≡)		

[घ] उपनिषदों पर बड़े उत्तम २ विचार के ग्रन्थ ।

(१) उपनिषदों की भूमिका—उपनिषदों के सभी विषय और उपनिषदों पर विचार करने वाले पुराने सभी आचार्यों के सिद्धान्त इस में दिखलाए गए हैं ।)॥

(२) उपनिषदों की शिक्षा—इस में सारी उपनिषदों के वाक्य देकर एक २ विषय ऐसा पूर्ण बना दिया गया है कि पढ़ने वाला गद्गद् हो जाता है । इसके चार भाग हैं । (१) पहला भाग निरा परमात्मा के वर्णन में—परमात्मा के सम्बन्ध में बड़े २ अद्भुत ३७ प्रकार के विचार हैं ॥=) (२) दूसरा भाग—आत्मा और पुनर्जन्म के सम्बन्ध में ६८ प्रकार के विचार ॥) (३) तीसरा भाग—मरने के पीछे की अवस्थाओं, कर्म, चरित और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में ५५ प्रकार के विचार ॥) (४) चौथा भाग, उपासना, उपासना का फल, और मुक्ति के सम्बन्ध में ८१ प्रकार के विचार ॥=)

(ङ) मनुस्मृति—भाषा अर्थ बड़ा सरल, गूढ बातों का तात्पर्य खोला हुआ, मनुस्मृति पर संस्कृत में जो पुरानी सात टीका हैं, उनके तात्पर्य भी नीचे साथ २ । हरएक विषय पर दूसरी स्मृतियों के हवाले भी साथ २ । आदि में विषय सूची और सारे श्लोकों का अकारादि सूची भी दे दिया है । ३)

(च) वेदों के उपदेश—(१) वेदोपदेश पहला भाग-भगवान्

की महिमा वेद मन्त्रों से ।॥) (२) स्वाध्याय—नित्य पाठ के लिये वेद के उपदेश ।॥) (३) आर्य-पञ्चमहा यज्ञपद्धति—पांचमहायज्ञों के सारे मन्त्रों के पूरे अर्थ और उन पर विचार ।)॥

(छ) दर्शन शास्त्र (१) वेदान्त दर्शन—दो भागों में पहला भाग १॥=) दूसरा भाग १॥=) दोनों इकट्ठे ३॥) (२) योग दर्शन—बड़ा खोल कर समझाया हुआ ।॥) नव दर्शन संग्रह चार्वाक, बौद्ध, जैन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त इन नौ दर्शनों के सिद्धान्तों का पूरा वर्णन १)

(४) सांख्य शास्त्र—के तीन प्राचीन ग्रन्थ ॥=)

(ज) पारस्कर गृह्यसूत्र—संस्कारों की पद्धतियां, मन्त्रों के अर्थ और हवाले सब कुछ इसमें है, हरएक गृहस्थ के पास रहने योग्य है १॥)

(झ) स्वामी शङ्कराचार्य का जीवन चरित्र—इसी में कुमारिल भट्टाचार्य, और मण्डन मिश्र का जीवन चरित्र भी है ॥)

(ञ) धर्म के उपदेश—(१) उपदेश मसक ।–) (२) वसिष्ठ धर्म सूत्र ।)॥ (३) प्रार्थना पुस्तक –) (४) ओङ्कार की उपासना और माहात्म्य –) (५) वेद और रामायण के उपदेश –) (६) वेद और महाभारत के उपदेश –) (७) वेद, मनु और गीता के उपदेश –)। (८) सामाजिक स्तुति प्रार्थना –)। सजिल्द ≡)

(ट) स्कूल पुस्तकें—(१) बाल-व्याकरण—संस्कृत भाषा का हिन्दी में बड़ा सरल व्याकरण । इस पर २००) इनाम मिला है ॥) (२) संस्कृत की प्रथम पुस्तक –)। (३) हिन्दी की पहली)॥ (४) हिन्दी गुरुमुखी)॥

पता—मैनेजर आर्ष-ग्रन्थावलि, लाहौर